यह ग्रंथ १४ नवम्बर १६४८ को

श्री देवीप्र

विनोद पुस्तक

प्रथमावृत्ति * १४ न

पण्डित नेहरू

यह ग्रंथ १४ नवम्बर १६४८ को पंडित जी के जन्म दिवस पर भेंट किया गया]

श्री देवीप्रसाद धवन 'विकल'

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.

प्रथमावृत्ति

* १४ नवम्बर १६४८ *

मूल्य १५)

प्रकाशक :
(वास्ते राजकिशोर अग्रवाल
अध्यक्ष, विनोद पुस्तक-मंदिर, आगरा के)
सिटी बुक हाउस, कानपुर

मुद्रक :
[illegible]नारायण टंडन
अध्यक्ष :
सिटी प्रेस, मेस्टन रोड, कानपुर

पंडित जवाहरलाल नेहरू

(भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री)

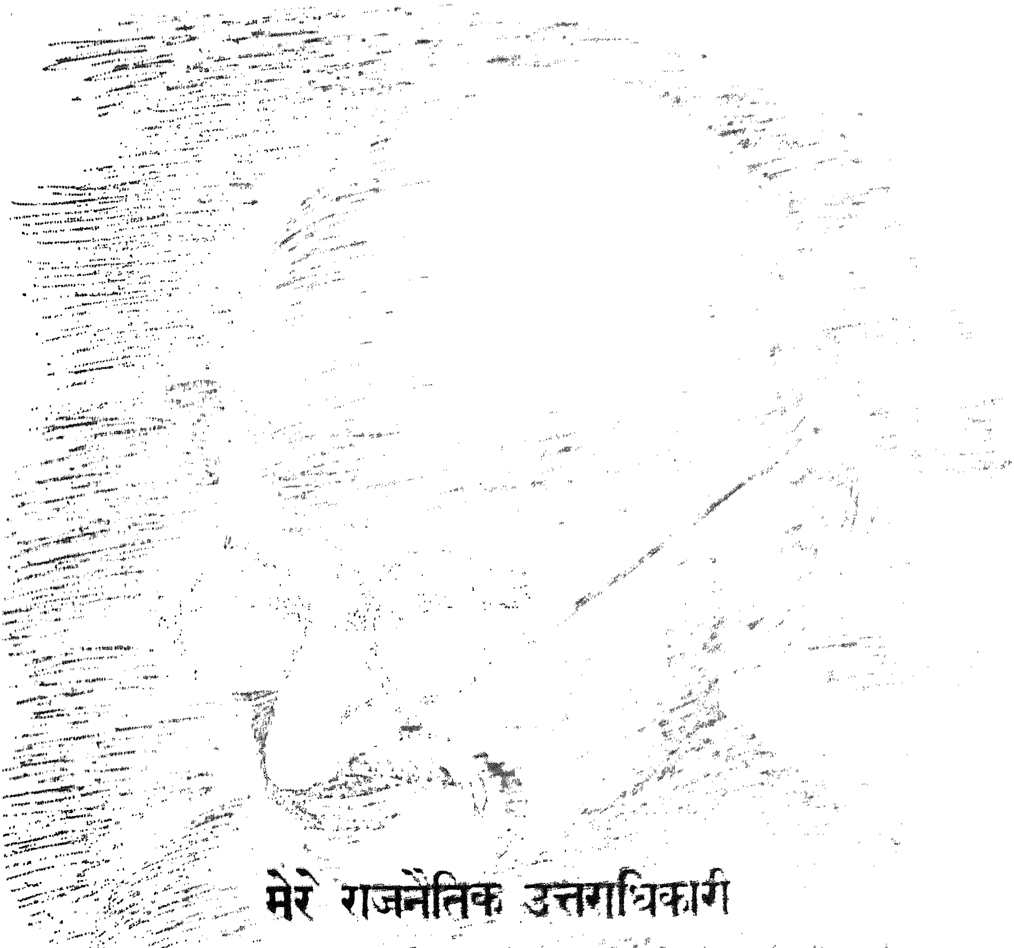

मेरे राजनैतिक उत्तराधिकारी

.........पंडित नेहरू ने अपने देश और उसकी वेदी पर अपने जीवन की समस्त अभिलाषाओं तथा ममताओं का बलिदान किया है। सब में बड़ी विशेषता की बात यह है कि उन्होंने किसी दूसरे देश की सहायता से मिलने वाली अपने देश की आज़ादी को कभी सम्मान पूर्ण नहीं समझा।

मो॰ क॰ गांधी

कृष्णा-प्रेस, प्रयाग।

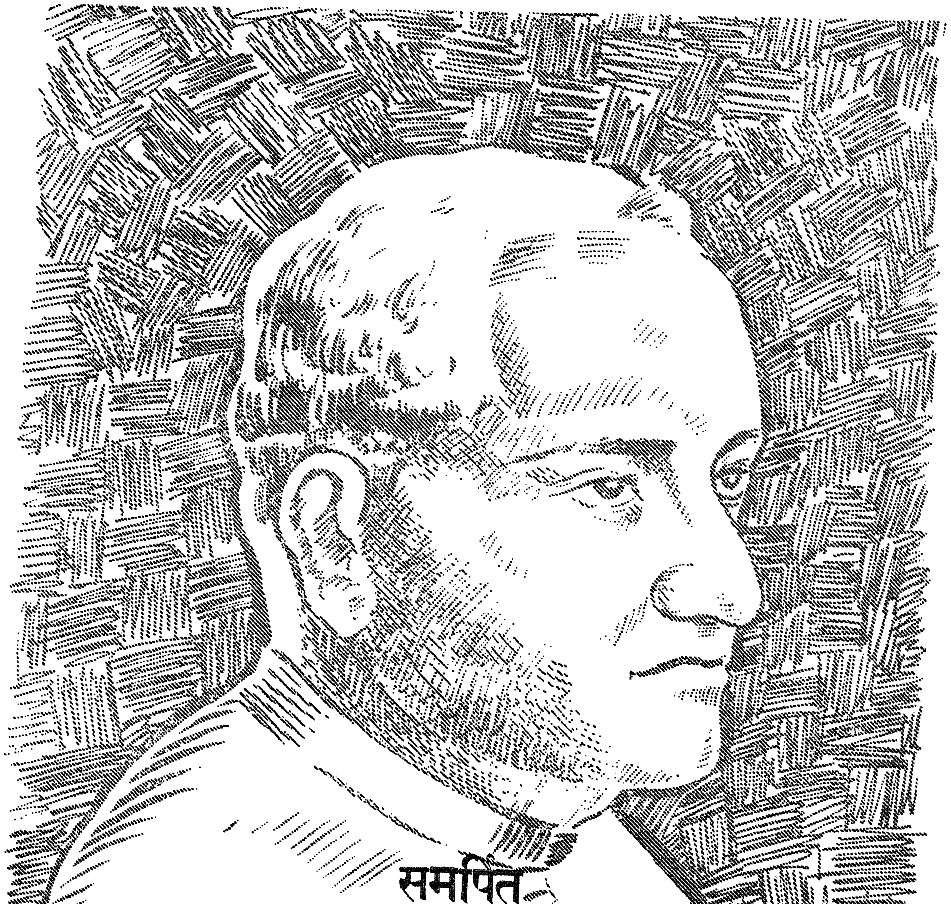

समर्पित

त्याग मूर्ति स्वर्गीय पंडित मोतीलाल जी नेहरू

को

आदरणीय,

इस समय देश को आप जैसे महान एवं वैधानिक नेता की जितनी आवश्यकता थी उतनी कदाचित कभी न थी। आप ही द्वारा राष्ट्र को प्रदत्त पंडित जवाहर लाल नेहरू के संबंध में लिखे गये ये चार अक्षर आप ही को समर्पित।

सम्पादक

'सत्य कहौं लिख कागद कोरे'

जैसा जो कुछ बन पड़ा आपके सामने है। यद्यपि राष्ट्र-प्राण पंडित नेहरू के विषय में जो भी लिखा जाय वह थोड़ा है किन्तु जीवन की इस पुनीत अभिलाषा को पूरी करके मुझे जो आत्म-संतोष हुआ है वह अवर्णनीय है। आज की रचना में लेखक के लिए आत्म-संतोष ही तो सर्वोपरि है—उसे कोई भी आलोचक छीन नहीं सकता।

पंडित नेहरू के चरित्र की मेरे जीवन पर अमिट छाप है। मैंने अपने जीवन के प्रथम प्रहर ही में उन्हें अपना आदर्श मान लिया था। सन् १९२५ के कानपुर में होने वाले आल इण्डिया नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में मुझे पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रथम बार दर्शन हुए थे। उस समय मेरी अवस्था ११–१२ वर्ष की थी। उस अधिवेशन में मैं एक साधारण स्वयंसेवक की भाँति काम करता था। पंडित नेहरू के दर्शन ने मुझे उस राजनीति की ओर आकृष्ट किया जिसका अर्थ भी मैं उस समय ठीक से न समझ सकता था।

सन् १९२९ में मैं बी० ए० का छात्र था। सक्रिय राजनीति में भाग लेना मेरे लिए कठिन था। समाचार-पत्रों में पंडित नेहरू के लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन में सभापति होने की बात पढ़ी, हृदय उमड़ उठा। सोचा अधिवेशन में चलूँ, किन्तु एक विद्यार्थी के लिए इतनी आर्थिक सुविधा कहाँ ? मन मार कर रह गया। पंडित नेहरू ने रण का बिगुल बजाया तो जी तड़प उठा। सभी प्रकार की कठिनाइयों और बाधाओं के रहते हुए भी शिक्षा और कालेज को तिलाञ्जलि दे जलती आग में कूद ही तो पड़ा, और फिर वही हुआ—गिरफ्तारी, जेल, मुकदमा और सपरिश्रम कारावास। जुर्माने में पुलिस होस्टल के कमरे से पुस्तकें और सामान कुर्क कर ले गई। मैं जीवन भर के लिए अधूरा ग्रेजुएट रह गया किन्तु उसमें संतोष ही था। जवाहर की पुकार पर बड़ा से बड़ा त्याग कोई महत्व नहीं रखता।

दूसरी बार मुझको कानपुर में तिलक-भवन के शिलान्यास के समय जवाहरलाल के अधिक निकट आने का अवसर मिला। उस समय मैं स्थानीय दैनिक 'वर्तमान' का सहकारी संपादक था। अपने लेखों और वक्तव्यों द्वारा पंडित जी मेरे अधिक निकट आ चुके थे।

उसके बाद जवाहरलाल के सबध में जो कुछ मुझे मिला मैंने उसका अध्ययन किया। मुझे इस अध्ययन में जो कुछ मिला उसे मैंने हृदय में दाब कर रखने की चेष्टा की। हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर जवाहरलाल जी को और भी निकट से देखा और कई दिन तक लगातार। कई बार उन पर एक लेख लिखने की इच्छा हुई, किन्तु जिस व्यक्तित्व पर पुस्तकें और ग्रन्थ लिखने पर भी संतोष प्राप्त न हो उस पर लेख लिखने का अर्थ ही क्या हो सकता है ? सोचा आगे चलकर कुछ लिखूँगा अवश्य उनके विषय में।

आगरा के विनोद-पुस्तक-मंदिर के अध्यक्ष श्री राजकिशोर अग्रवाल से इस सम्बन्ध में अचानक बात हुई। वे उत्साही प्रकाशक हैं; उन्होंने जवाहरलाल जी के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ तैयार करने का मेरे आगे प्रस्ताव

रक्खा। मेरे लिए 'हाँ' करना कठिन हो गया। मेरा निज का व्यवसाय तो उपन्यास और कहानियाँ लिखना है। भला बिना समझे-बूझे इतना गुरुतर भार मैं अपने ऊपर कैसे ले सकता था ? श्री अग्रवाल जी को मैंने टालने का प्रयत्न किया, किन्तु वे तो इस बात पर अड़ ही गये। उनका उत्साह देख कर मैं भी उत्साहित हुआ। मैंने उन्हें यह कह कर टाल दिया 'कि इस विषय में विचार करूँगा'।

अब मैं अपनी शक्ति तौलने लगा। इतने महान् व्यक्ति पर लेखनी उठाना अपनी क्षमता की पोल खोल कर रख देना है। बहुत कुछ टटोलने पर भी मैंने अपने को नितान्त अशक्त और अनुपयुक्त पाया पंडित नेहरू के सम्बन्ध में कुछ लिखने के लिए। सागर को गागर में भरने की कला मैं नहीं जानता, और न जानता हूँ इस प्रकार के ग्रन्थों को सजाने की शैली ही। जब दूसरी बार अग्रवाल जी मुझसे मिले तो मैंने अपनी सारी कठिना-इयाँ, और कमज़ोरियाँ बतला दीं।

किन्तु इस बार तो अग्रवाल जी घर से संकल्प करके ही चले थे। उन्होंने मुझे विवश कर दिया और अंत में मैंने भी डरते डरते इस भार को अपने ऊपर ले लिया। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रयास का परिणाम है।

इस पुस्तक के लिखने और सजाने में मेरे कतिपय मित्रों ने मेरा आवश्यकता से अधिक हाथ बटाया है। सब से अधिक अनुगृहीत मैं अपने प्रिय मित्र कविवर पं० सोहनलाल जी द्विवेदी का हूँ जिनसे मैंने इस प्रकार के ग्रन्थ तैयार करने की प्रेरणा प्राप्त की। वे इस कला में दक्ष हैं और मैंने इस ग्रन्थ के तैयार करने में उनकी इस विशेषता से पर्याप्त लाभ उठाया है। वे मेरे अपने हैं अतएव उनको सार्वजनिकरूप से धन्यवाद देना अपने ही को धन्यवाद देना होगा।

आप के अतिरिक्त कविवर 'नीरज' जी तथा श्रीकेशवकुमार ठाकुर तो इस कार्य में मेरे दाहिने हाथ रहे हैं। जितनी सहायता सच्चे सहयोगी दे सकते हैं उतनी आप लोगों से मुझे प्राप्त हुई है। चित्र-स्टुडियो के अध्यक्ष श्री कैलाशचन्द्र जी कपूर की इस ग्रन्थ से खास दिलचस्पी रही है, तथा समय समय पर वे मुझे आवश्यक सलाहें देते रहे हैं। 'सुमित्रा' के संचालक श्री कमलकुमार चट्टोपाध्याय बी० ए०, सिटी-प्रेस के अध्यक्ष श्री सत्यनारायण जी टण्डन तथा इस ग्रन्थ के चित्र-कार श्री राय चौधरी को बिना धन्यवाद दिये नहीं रह सकता. जिनके प्रयत्न से ही यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग सुन्दर बन सका।

इस संकलन में कुछ ग्रंथों से मुझे सहायता लेने की आवश्यकता पड़ी है। पंडित नेहरू की आत्म-कथा, हिन्दुस्तान की कहानी, नेहरू योर नेबर, जे० ब्राइट द्वारा प्रणीत जे० एल० नेहरू, विद नो रीग्रेट तथा नेहरू जी की वाणी इनमें प्रमुख हैं।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में 'सत्य कहौं लिख कागद कोरे' वाली पंक्ति याद कर के ही मुझे सन्तोष मिलता है। यदि पाठकों को यह पुस्तक कुछ भी पसंद आई तो मेरा सौभाग्य—

गयाप्रसाद पुस्तकालय
मेस्टन रोड, कानपुर
१४-११-४८ ई०

देवीप्रसाद धवन 'विकल'

विश्वकवि श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर
(चित्रकार—श्री राय चौधरी)

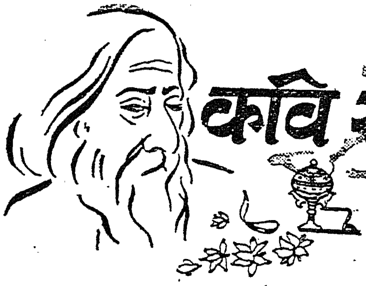

कवि सम्राट श्री रविन्द्र नाथ ठाकुर

निस्संदेह नवभारत के सिंहासन पर जवाहरलाल का स्वत्वाधिकार है। नैतिक सत्य के प्रति उनका अचल धैर्य्य और बौद्धिक चरित्र उनके उन्नति के शिखर पर पहुँचने का कारण है। उनका निश्चय अटल एवं साहस अजेय है। राजनीति के उस वातावरण में जहां सत्यता प्रायः विचलित रहती है, उन्होंने पवित्रता के आदर्श को ऊँचा रक्खा है। अनेक संकटों के समय भी उन्होंने सत्य से मुँह नहीं मोड़ा और न उन्होंने अनुकूलता प्राप्त करने के लिए असत्य का आश्रय ही लिया। राजनीति के उस मार्ग की, जिसमें सफलता और पतन में किसी प्रकार का अंतर नहीं रहता, उनकी तीव्र बुद्धि ने सदा स्पष्ट घृणा के साथ उसकी अवहेलना की है। उद्देश्य की यह पवित्रता और सत्य के प्रति अटूट अध्यवसाय, स्वातंत्र्य-संग्राम में पण्डित जवाहरलाल की सब से बड़ी देन है।

यौवन के नव संचार एवं विजयोल्लास, अन्याय के प्रति दुर्जय संग्राम एवं स्वतंत्रता के प्रति अक्षुण्ण आस्था का प्रतिनिधित्व करने वाले जवाहरलाल भारत के ऋतुराज हैं।

मेडम चॉंग काई शेक

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में सार्वजनिक किन्तु विवादपूर्ण कार्यों में भाग लिया हो, उनके समकालीन विद्वानों के साथ उनके मूल्य और प्रभुत्व का ठीक ठीक निर्णय करना कठिन होता है। यह बात उस व्यक्ति पर विशेषरूप से लागू होती है जो सिद्धान्तों के युद्ध में एक पराक्रमी योद्धा होता है और जिनके सम्बन्ध में सन्धि को वह असम्भव समझता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सामने दो प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। एक ओर उसके प्रशंसक उसे मनुष्य से ऊँचे उठाने का प्रयत्न करते हैं और दूसरी ओर उसके राजनीतिक विरोधी अनेक प्रकार की आलोचनाओं के साथ, त्रुटियों के साथ खोज कर तथा दोषारोपण करके उसकी ख्याति को नष्ट करने की चेष्टा करते हैं।

इस प्रकार की परिस्थितियां ज्ञान तथा अनजान अवस्था में उस व्यक्ति की रचना में प्रभाव डालती रहती हैं जो एक राजनीतिज्ञ अथवा राजनीतिक नेता के रूप में नेहरू का चित्र उपस्थित करता है। यदि कोई राजनीतिक विरोधी उनके सम्बन्ध में कुछ लिखता है तो संभव है कि उसके शब्दों में नेहरू एक विजयगामी अशुभचिंतक नेता के रूप में चित्रित हैं और यदि कोई उनका प्रशंसक उनके सम्बन्ध में लिखता है तो वह भारतीय स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर, जीवन का सर्वस्व बलिदान करने वाले महान नेता के रूप में उनका चित्र खींचता है।

इस अवस्था में नेहरू के जीवन में ऐसा सामान्य स्थान है, जहां उनके मित्र और शत्रु दोनों ही उनसे मिल सकते हैं। अँग्रेजी में लेखकों की श्रेणी में उनका स्थान है। निर्विवादरूप से, नेहरू अँग्रेजी के उन चुने हुए पूर्वीय लेखकों में एक हैं, जो अँग्रेजी भाषा का प्रयोग अपनी मातृ-भाषा की सुविधा और अनुकूलता के साथ करते हैं। इसके सम्बन्ध में उन्होंने ख्याति भी प्राप्त की है। यहां पर उदाहरण देकर स्पष्ट करना उचित न होगा कि पूर्वीय लोगों में से अँग्रेजी पर प्रभुत्व कायम करने के लिए कितने लोगों ने चेष्टा की है, और उनमें बहुतों को सफलता भी प्राप्त हुई है। वास्तव में जिनकी मातृ-भाषा भारत अथवा चीन की भाषाओं में से है और जिन्होंने एक लेखक के रूप में सफलता पाई है उनकी संख्या उँगलियों पर गिनी जाने योग्य है।

साहित्य में ख्याति पाने की अभिलाषा रखने वाले वे सभी लेखक सहज ही अयोग्य सिद्ध होंगे जो अपनी प्रत्येक पंक्ति में यह नहीं प्रकट करते कि उनको शब्दों का व्यापक ज्ञान है और उनको वाक्यों में इस प्रकार रखने अथवा गढ़ने की योग्यता उनमें है जिससे पाठकों को वास्तविक आनन्द मिलता है।

नेहरू में केवल इतना ही गुण नहीं है; किसी को अपराधी ठहराने अथवा अपनाने के लिए लिखे हुए शब्दों पर उनका अद्वितीय अधिकार है। इसके लिए वे कुछ जुपिटर की भांति गरज सकते हैं और कानों में संगीत-देवी का मधुर स्वर भी पहुँचा सकते हैं।

नेहरू के राजनीतिक विचार जिनके लिए शाप के तुल्य हैं उनमें भी कितने ही, जो खरी तबियत के हैं, स्वीकार करते हैं कि अँग्रेजी साहित्य के मंदिर में एक आले के रूप में नेहरू अपना स्वत्व रखते हैं।

मेरा अनुमान है कि लेखक के रूप में नेहरू के प्रति मेरे विचारों से वे सभी लोग सहमत होंगे, जिन्हें अच्छी अँग्रजी पढ़ने में सुख प्राप्त होता है। प्रसन्नता की बात है कि मुझे इस ओर ध्यान देने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मेरा विश्वास है कि उनका चरित्र अत्यन्त शक्तिवान है और उसके द्वारा अनेक दृष्टिकोण सामने आते हैं। बहुत समय के बाद जब राजनीतिक संघर्ष समाप्त हो जायगा और वह अतीत काल की स्मृति के रूप में ही रह जायगा उस समय केवल साहित्यिक कीर्ति जीवित होगी। भविष्य के सम्बन्ध में यह कहना मूर्खता न होगी कि अँग्रेजी साहित्याकाश में नेहरू एक तारे के रूप में उस समय तक जगमगाते रहेंगे जब तक अँग्रेजी भाषा का अस्तित्व रहेगा।

अनेक कठिनाइयों और विपत्तियों के समय भी उनकी अजेय और प्रसन्न आत्मा, उपहास का आनन्दपूर्ण विवेक और विशेष कर आत्म-परायणता का अभाव देखने योग्य होता है जब वे किसी समय बात करते हैं।

वे ठीक वैसा ही लिखते हैं जैसे वे स्वयं हैं। अत्यन्त शिष्ट और सभ्य होने के साथ साथ ही अपने मित्रों के प्रति उनके हृदय में असीम स्नेह रहता है। वे मनुष्य की और घटित घटनाओं की उसी रूप में आलोचना करते हैं जिस रूप में वे उनको पाते हैं। अन्याय और दुराचरण के विरोधी होने के कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उज्ज्वल भविष्य की आशा से वे कभी एक क्षण के लिए भी निराश नहीं होते। वे संदिग्धावस्था से सर्वथा परे हैं। वे जो कुछ कहना चाहते हैं, सुन्दर भाषा में उसे वे चित्रित करते हैं। सीमित रहना उन्हें प्रिय है। वही उनका पथ-प्रदर्शन करता है। उनका यह गुण प्रभावशाली है। इसलिए कि उसमें तर्क का पुट और शुभेच्छा की भावना रहती है।

अपने विश्वास के अनुसार, स्पष्टरूप से मैंने लिखा है कि अँग्रेजी लेखकों की श्रेणी में नेहरू का स्थान है। वे इतनी ख्याति पा चुके हैं कि 'नेहरू' से ही उनका पूर्ण परिचय मिल जाता है। महान व्यक्तियों के नाम के किसी सम्मानसूचक शब्द की आवश्यकता नहीं होती। भारतीय स्वतंत्रता के प्रति नेहरू ने जो कुछ किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी रचनायें देश और संसार के लिए स्थायी देन है। राजनीतिज्ञों के प्रभाव समय के साथ साथ चला करते हैं। उनके महल में स्थायित्व नहीं होता। नेहरू जी से विचारशील व्यक्ति की अनुभूतियां, आकांक्षायें और सफलतायें न केवल समकालीन लोगों के विचारों को प्रभावित करेंगी, वरन मानव इतिहास के मार्ग पर अपनी अमिट छाप छोड़ जायेंगी। उनकी लेखनी से निकली रचनाओं को देख कर नवीन संतति उनकी देन और मनुष्य के रूप में उनके चरित्र का सम्मान करेगी।

जीवन की झांकी

पंडित जवाहरलाल नेहरू संसार के उन महान पुरुषों में से हैं जिनके जीवन की प्रत्येक श्वास लाखों-करोड़ों नर-नारियों के जीवन में प्राणों का संचार करती है। भारत का राष्ट्रीय-जीवन पंडित नेहरू को पाकर जितना महान बना है, पंडित नेहरू देश के वातावरण में रह कर उससे भी अधिक महान बन गये हैं। राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने के पूर्व के जवाहरलाल नेहरू में और आज के प्रधान-मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू में बहुत बड़ा अंतर है। उस समय वे परिवार के प्राण थे और आज वे राष्ट्र के प्राण हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में जवाहरलाल नेहरू के वीरोचित कार्यों ने जीवन के प्रत्येक पहलू के उनके विचारों को गुरुतर और गहन बना दिया है। वे आज जो कुछ सोचते हैं उसके प्रतिबिम्ब का आभास हमको उस समय से मिलता है जब उन्होंने सोचना प्रारंभ किया था। इसीलिए उनके जीवन का प्रत्येक कार्य और काल सर्व साधारण की दृष्टि में अत्यन्त आराध्य बन गया है। जीवन को महान कार्यों ने शेष जीवन को महानता और श्रेष्ठता प्रदान की है। इसीलिए उनके जीवन की छोटी छोटी कहानियां भी जन-साधरण के मनोभावों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। हुआ यह है कि उनके जीवन की—अतीत और वर्तमान—सभी घटनायें और विचार-धारायें समाज को परिप्लावित करने की क्षमताशालिनी हो गई हैं। उनका उठना, बैठना, जागना, सोना, खाना, पीना, देखना, सुनना, हँसना और रोना सभी कुछ तो लोगों के निकट रहस्यपूर्ण हो गया है।

जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी हैं। उनके पूर्वज काश्मीर में ही रहते थे। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, जब मुगल-साम्राज्य का पतन हो रहा था, उनके पूर्वज काश्मीर छोड़ कर इस ओर आये। सब से पहिले यहां पर अपने परिवार को लेकर जो पूर्वज आये थे उनका नाम था राजकौल। अपनी संस्कृत और फ़ारसी की योग्यता के लिए वे काश्मीर में प्रसिद्ध थे। वे सपरिवार दिल्ली में आकर बस गये। राजकौल को रहने के लिए मकान तथा कुछ जागीर मिली हुई थी। यह मकान एक नहर के किनारे था, अतएव राजकौल कौल-नेहरू के नाम से परिचित हुए। आगे चल कर कौल लुप्त हो गया और केवल 'नेहरू' इस परिवार के साथ चलने लगा।

जवाहरलाल धनी-मानी पिता के एकलौते लड़के थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था तक उनके कोई बहिन भी

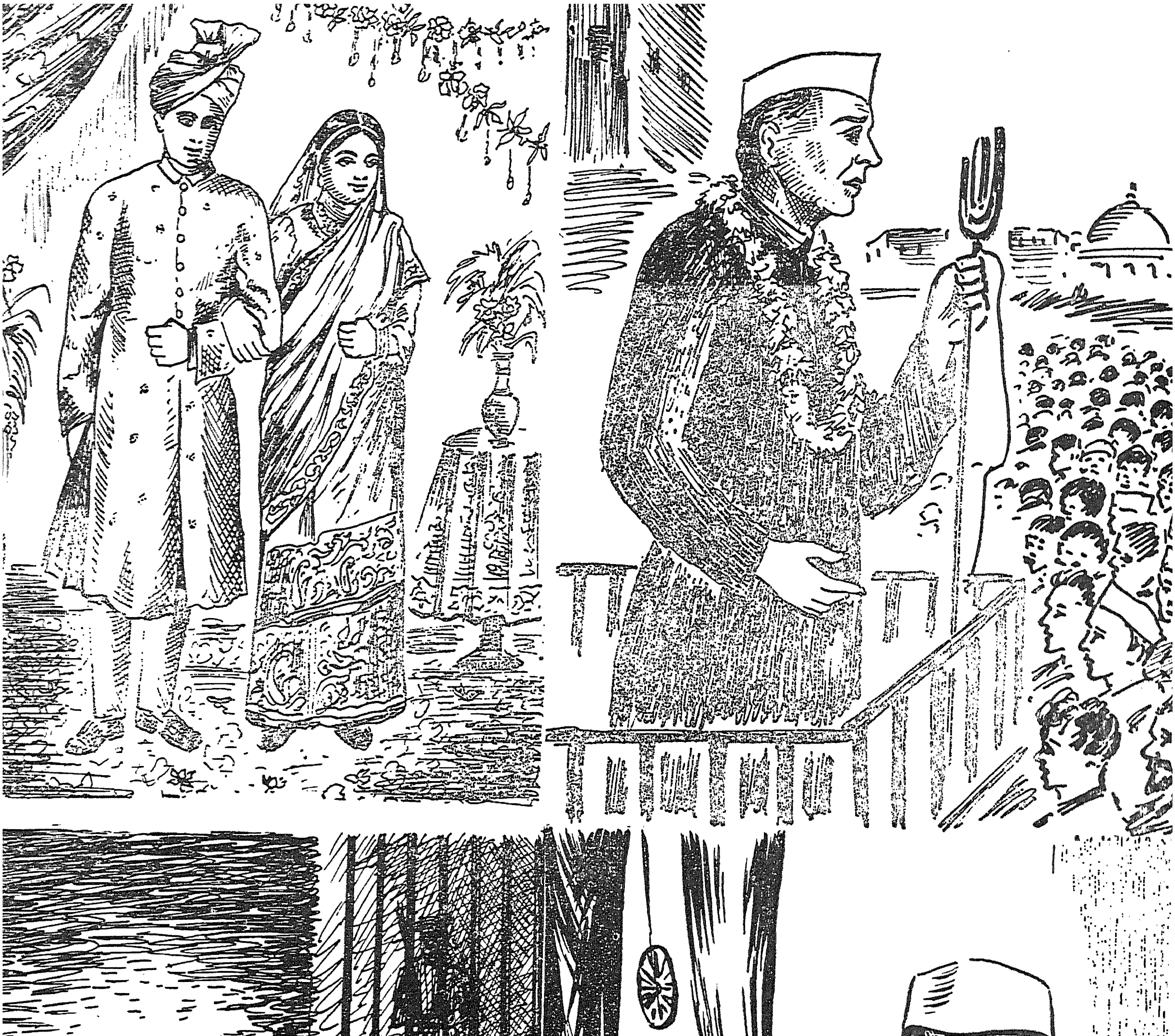

न थी। इसलिये माता-पिता के निकट इनको जो प्यार और सम्मान मिला है उसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्यार के कारण ही उनको अपनी छोटी अवस्था में बाहरी लड़कों का संसर्ग प्राप्त नहीं हुआ। शिक्षा-कार्य भी मास्टरों और अध्यापिकाओं द्वारा घर ही में प्रारंभ हुआ।

हाईकोर्ट के साथ पंडित नेहरू के परिवार का पुराना संबंध है। हाईकोर्ट के इलाहाबाद चले आने पर इनके परिवार को दिल्ली छोड़नी पड़ी और सबके साथ ही प्रयाग आ गये। उस समय से अब तक नेहरू-परिवार इलाहाबाद के प्रमुख परिवारों में समझा जाता है।

पंडित नेहरू का जन्म प्रयाग ही में हुआ। उस समय उनके चाचा हाईकोर्ट में वकालत करते थे तथा वहां के प्रसिद्ध वकीलों में से थे। नेहरू-परिवार शिक्षित परिवार था और उसमें उस समय भी राजनीतिक आलोचनायें हुआ करती थीं। पंडित नेहरू उस समय बहुत छोटे थे। भारतीयों के प्रति यहां के अंग्रेजों का जो व्यवहार था उसकी कटु मीमांसा उन्हें बाल्य काल ही से सुनने को मिली थी। नेहरू-परिवार सदा से ही स्वाभिमानी रहा है और उसने विदेशियों द्वारा होने वाले अपमान को कभी भी सहन नहीं किया; घर के इसी स्वाभिमानी वातावरण में बचपन प्रारंभ हुआ और बीता।

छोटी अवस्था में जवाहरलाल की बातों में जितना मनोरंजन मालूम होता है उससे भी अधिक उनमें जीवन की श्रेष्ठता का सम्मिश्रण दिखाई देता है। जवाहरलाल ने स्वयं लिखा है 'नित्य शाम को पिता जी के मित्र पिता जी से मिलने आया करते थे; पिता जी आराम से लेट जाते और दिन भर की थकन को मिटाते हुए बातें किया करते। पिताजी हँसते बहुत थे। जब हँसते थे तो उनकी हँसी से सारा मकान गूँज जाता था। उनकी हँसी घर ही तक सीमित न थी; वे अपनी हँसी के लिए इलाहाबाद भर में प्रसिद्ध थे। जब वे अपने मित्रों के साथ बातें करते और हँसते थे तो मैं छिप कर उनको देखने और उनकी बातों को सुनने की कोशिश करता। मैं चोरी से ऐसा किया करता था। अपने इस कार्य में अक्सर मैं पकड़ जाता था और उसके बाद मैं पिता जी के पास लाया जाता था। वे मुझे अपनी गोद में बिठा लेते थे।'

जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है 'मैं पिता जी की बहुत इज़्ज़त करता था; मैं जानता था कि उनमें बल, साहस और बुद्धि की अद्भुत शक्ति है। अपनी इन बातों में उनका स्थान दूसरों से बहुत ऊँचा है। उनके सम्बन्ध में इस प्रकार सोच कर मैं बहुत प्रसन्न होता और सोचा करता कि बड़े होने पर मैं भी ऐसा बनूँगा। मैं उनकी इज़्ज़त तो करता ही था, उनसे डरता भी बहुत था। जिस समय नौकरों पर पिता जी क्रोध करते थे, उस समय वे मुझको बहुत भयंकर मालूम होते थे। वे नौकरों पर क्रोध करते और डर के मारे मैं कांपने लगता। उनका यह क्रोध मुझे अच्छा न लगता, यहां तक कि पिता जी पर मुझे कभी कभी क्रोध आजाया करता था। उनमें क्रोध अधिक था और जीवन के अंतिम दिनों तक उनका सा क्रोध मुझे दूसरे में देखने को नहीं मिला। इतने क्रोध के साथ साथ अच्छाई यह थी कि उनमें हँसी-मजाक की आदत भी बहुत थी। वे हँसी-मजाक भी करते थे और हँसते भी बहुत थे।

अपने पिता पंडित मोतीलाल नेहरू की सख्ती और तेज मिजाजी पर प्रकाश डालते हुए जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है 'लगभग ६ वर्ष की मेरी उम्र होगी, एक दिन मैंने पिताजी की मेज पर दो फाउनटेन पेन देखे। वे देखने में मुझे बहुत अच्छे मालूम हुए। मैंने सोचा पिताजी दो फाउनटेन पेन क्या करेंगे? लिखने के लिए एक काफी होता है। मैंने एक फाउनटेन पेन उठाया और अपनी जेब में डाल कर गायब कर दिया। मेज से एक पेन गायब हो जाने पर तहक़ीक़ात शुरू होगई। लोगों में पूछ-ताछ होने लगी। उस समय मैं घबड़ाया, किन्तु मैंने बतलाया नहीं। अन्त में वह पेन पकड़ा गया और मेरा अपराध खुल गया। पिता जी बहुत नाराज हुए और उन्होंने मेरी मरम्मत भी खूब की। उससे मुझे जो चोट पहुँची, उससे भी अधिक पीड़ा मुझे अपमानित होने के कारण हुई। मेरी चोट पर कई दिनों तक क्रीम और मरहम लगाया गया।

जवाहरलाल की वर्षगांठ का सालाना उत्सव हुआ करता था। उस उत्सव के दिन उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। वर्षगांठ के दिन वे गेहूँ अथवा दूसरी चीजों के साथ तौले जाते। तौलने के बाद उस चीज को, जिससे वे तौले जाते थे, गरीबों में बांट दी जाती थी। उस दिन उनको क़ीमती से क़ीमती वस्त्र पहिनाये जाते और शाम को लोगों को दावत दी जाती।

जवाहरलाल नेहरू का बचपन बड़े सुख के साथ व्यतीत हुआ। उनके जीवन में किसी प्रकार का अभाव न था। सभी प्रकार के आनन्द उन्हें प्राप्त थे। घर में कभी कभी झगड़े होजाया करते थे, उनकी चर्चा करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'जब ये झगड़े बढ़ जाते तो पिताजी के कानों तक पहुँचते। वे भयानकरूप से क्रुद्ध हो पड़ते तथा कहने लगते कि ये सब बातें औरतों की बेवकूफ़ी के कारण होती हैं। मैं अपनी छोटी अवस्था में यह न समझ पाता कि झगड़े की घटना का कारण क्या है। मैं इतना ही जानता कि किसी से बड़ी गलती हुई है। उस झगड़े में घर के लोग एक दूसरे से नाराज हो जाते, कम बोलते और एक दूसरे से दूर दूर रहने की चेष्टा करते। यह सब देख कर मुझे बड़ा दुःख होता। इन झगड़ों को सुन कर जब पिताजी बीच में पड़ते तो हम लोगों के देवता कूच कर जाते।

पं० मोतीलाल नेहरू ने अपने रहने के लिए जो मकान बनवाया था वह बहुत बड़ा था। उसका नाम रक्खा गया था आनन्द-भवन। उस समय पं० नेहरू की अवस्था दस वर्ष की थी। आनन्द-भवन में एक बड़ा बाग और नहाने के लिए गहरा और बड़ा हौज़ था। जवाहरलाल को तैरने का शौक था, वे पानी से, गहरे जल से डरते न थे। अपने उस हौज में वे खूब नहाते और तैरा करते थे। गर्मी के दिनों में नेहरू-परिवार से सम्बन्धित कितने ही लोग उसमें नहाने आया करते थे। उस समय के दृश्य खींचते हुए जवाहरलाल ने लिखा है 'नहाने वालों के झुण्ड में मुझे सम्मिलित होकर बड़ा आनन्द आता था। जो लोग नहाने आते उनमें सभी लोग तैराक न थे। जो लोग तैरना न जानते थे उनको गहरे पानी में ढकेल देने और उनके घबराने पर बड़ा आनन्द आता था। उन नहाने वालों में सर तेजबहादुर सप्रू भी थे, उनको तैरना न आता था। वे गहरे पानी से बहुत डरते थे। नहाने के समय वे

हौज की उस पहिली सीढ़ी पर ही नहाने के लिए बैठ जाते थे जिसके ऊपर पंद्रह इंच से अधिक पानी न होता था। वे वहीं नहा लेते। दूसरी सीढ़ी पर उतरने की वे हिम्मत न करते। अगर कोई उनको पानी की ओर खींचने का प्रयत्न करता तो वे जोर से चिल्ला उठते थे। पिताजी भी तैराक न थे, लेकिन अपने हाथ-पैरों को पानी पर पटकना जानते थे। वे हिम्मत करके किसी प्रकार हौज के एक किनारे से दूसरे किनारे तक चले जाते थे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में जवाहरलाल को शिक्षा देने के लिए एफ० टी० ब्रुक्स रक्खे गये। उनके पिता आयरिश थे और उनकी माता फ्रांसीसी या बेलजियम थीं। वे स्वयं पक्के थियोसोफिस्ट थे। वे जवाहरलाल के साथ ही रहा करते थे। वे तीन वर्ष तक बराबर रहे। संस्कृत और हिन्दी पढ़ाने के लिए एक बूढ़े पंडित भी आया करते थे। कई साल मेहनत करने के बाद भी वे पंडित जी से कुछ अधिक न सीख सके। पंडित जवाहरलाल ने स्वयं लिखा है कि 'संस्कृत पढ़ने और विशेषकर उसकी व्याकरण के याद करने में मेरी तबियत न लगती थी'।

थियोसफी पर मिसेज़ बेसेन्ट के भाषणों का जवाहरलाल पर बहुत प्रभाव पड़ा। भाषणों से प्रभावित होकर उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी का सदस्य होने का इरादा किया किन्तु पं० मोतीलाल नेहरू ने टाल दिया। जवाहरलाल को यह बात अच्छी न लगी। फिर भी तेरह वर्ष की अवस्था होते होते वे उक्त सोसायटी के सदस्य हो ही गये।

रूस-जापान की लड़ाई में जवाहरलाल की सहानुभूति पूर्णरूप से जापान की ओर थी। वे जापान की विजय चाहते थे। उनकी छोटी अवस्था ही में उन्हें न केवल भारत की राष्ट्रीयता से प्रेम था, बल्कि योरोप के हाथों से एशिया को भी वे अलग देखना चाहते थे। इसी कारण जापान के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ गई थी और जापान की वीरोचित कहानियां वे बड़े शौक से पढ़ा करते थे।

जवाहरलाल जब छोटे थे तभी से उनके हृदय में राष्ट्रीयता के भाव लहर मारने लगे थे। वे भारत के पराधीनता की बात सोच कर विह्वल हो उठते थे। वे प्रायः सोचा करते कि भारत को स्वतंत्र करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्न काम में लाये जा सकते हैं। इस प्रकार की भावना बहुत पहिले ही उनके दिल में उठा करती थी। चौदह वर्ष की अवस्था में उनकी विचार-शक्ति अधिक काम करने लगी थी। उस समय की मानसिक परिस्थिति पर उन्होंने लिखा है 'मेरे मन में नये नये विचार उठा करते थे। स्त्री-जाति के प्रति मेरी सहानुभूति बढ़ने लगी थी। लेकिन अब भी मैं लड़कियों की अपेक्षा लड़कों के संसर्ग में रहना ही अधिक पसंद करता था। लड़कियों से मिलना-जुलना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता था। फिर भी किसी दावत के समय या अन्य मौक़ों पर किसी सुन्दर लड़की के शरीर स्पर्श हो जाने पर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते थे'।

सन् १६०५ में पंडित जवाहरलाल इंगलैंड गये और हैरो-विद्यालय में भरती हो गये। वहां उनको छोटे दरजे में लिया गया, क्योंकि उन्हें लेटिन की आवश्यक जानकारी न थी। किन्तु थोड़े ही दिनों में उन्हें तरक्की मिल गई। उन दिनों उस विद्यालय में हिन्दुस्तान के केवल चार या पांच लड़के पढ़ते थे। उनमें महाराजा बड़ौदा के एक

मात्र पुत्र भी पढ़ते थे। वे पंडित नेहरू से आगे थे और क्रीकेट के खेल में सुयोग्य होने के कारण विद्यालय में लोक-प्रिय हो रहे थे। वे थोड़े ही दिनों में चले आये। उसी समय महाराज कपूरथला के बड़े लड़के परमजीत सिंह उस विद्यालय में पढ़ने गये। उनका किसी के साथ मेल न खाता था।

हैरो-विद्यालय में जवाहरलाल जब पढ़ते थे, उसी समय उनका आकर्षण भारत की राजनीतिक अवस्था की ओर था। सन् १६०६ और १६०७ में नौकरशाही के जो उत्पात हो रहे थे, उन समाचारों को अँग्रेज़ी अखबारों में पढ़ कर जवाहरलाल के हृदय में एक अमिट पीड़ा उठती थी। उन्हें विद्यालय में राजनीतिक प्रगति में कुछ बाधा सी मालूम पड़ने लगी, अतएव प्रयत्न करके वे दो साल बाद ही विश्वविद्यालय में चले गये। अठारहवीं वर्ष की आयु में वे कैम्ब्रिज ट्रिनटी कालेज के विद्यार्थी हो गये। यहां का वातावरण विद्यालय की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत था और सभी प्रकार की स्वतंत्रता भी थी। यहां पर तीन वर्ष तक शान्तिपूर्वक उन्होंने कालेज की शिक्षा प्राप्त की।

कैम्ब्रिज में पढ़ने वाले हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की एक समिति थी। उसमें राजनीतिक विषयों पर बहस हुआ करती थी। जवाहरलाल उस समिति में जाया करते थे। झिझक और हिचकिचाहट उनमें स्वाभाविक रूप से थी। इसीलिए अपने शिक्षा-काल के तीन वर्षों में शायद ही कभी वे उसमें बोले हों। वाद-विवाद की वहां पर एक दूसरी समिति थी। जवाहरलाल उसके सभासद थे। सभासदों का उसमें बोलना अनिवार्य था। प्रत्येक विद्यार्थी के बोलने के लिए एक निश्चित समय होता था। पूरे समय तक न बोल सकने के कारण, समिति के नियमानुसार जवाहरलाल को प्रायः जुर्माना देना पड़ता था।

सन् १६१० में जवाहरलाल को कैम्ब्रिज की डिग्री मिली थी। उस समय वे अपनी अवस्था के बीस वर्ष बिता चुके थे। सन् १६१२ में उन्होंने बैरिस्टरी पास की। इसी के बाद वे लौट कर भारत आ गये। इलाहाबाद ही में उन्होंने अपनी वकालत प्रारम्भ की और हाईकोर्ट जाने लगे। अपने इस व्यवसाय में बहुत थोड़े दिनों तक उनकी तबियत लगी। उसके बाद उनके अन्तःकरण में असंतोष का जन्म हुआ। इस असंतोष का एक यह भी कारण था कि उनके अनेक वर्ष इंगलैंड में बीते थे। भारतवर्ष और विशेष कर इलाहाबाद में उस प्रकार के जीवन का अभाव था। वकालत का पेशा भी उन्हें अधिक रुचिकर न मालूम हुआ ; उनकी दृष्टि तो गुलामी में जकड़ी हुई भारत-माता की हथकड़ियों की ओर जा चुकी थी। वे प्रायः देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर ही विचार करते रहते थे। उनके हृदय में क्षोभ था, विषाद था और था भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की रूप-रेखा तैयार करने का उत्साह। विदेशी शासन के प्रति वे ज़ोरदार आन्दोलन की बात सोचा करते। वे चारों ओर दृष्टि दौड़ाते थे किन्तु कहीं किनारा नजर न आता था। उनकी दृष्टि अपने विचार के से व्यक्ति की खोज में थी—किन्तु गुञ्जाइश न दिखाई पड़ती थी।

पंडित नेहरू प्रायः शिकार खेलने जाया करते थे किन्तु इन दिनों उनकी तबियत शिकार से भी उचाट

पिता-पुत्र
पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू

महान पिता और त्यागी पुत्र

हो रही थी ; जङ्गलों में जाना उन्हें प्रिय था, किन्तु अब उनका चित्त इस बात के लिए तैयार न होता था कि वे किसी असहाय पशु को मारें।

महात्मा गांधी के साथ पंडित नेहरू की प्रथम भेंट १९१६ में लखनऊ-कांग्रेस के अवसर पर हुई। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी अपने सत्याग्रह-आंदोलन के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे, किन्तु फिर भी अन्य नवयुवकों की भांति पंडित नेहरू ने उनकी परिभाषा और कुछ समझ राखी थी। किसी समय गांधीजी ने भारतीय कांग्रेस में भाग लेने से इन्कार कर दिया था। उनकी इस इंकारी के देश में अनेक अर्थ लगाये जा रहे थे।

सन् १९१९ के प्रारम्भ में गांधीजी एक सख़्त बीमारी से उठे थे। उस समय प्रथम योरोपीय युद्ध का अन्त हो चुका था और युद्ध में सहायता देने के पुरस्कारस्वरूप भारत पर रौलट बिल लादा जा रहा था। गांधी जी ने वायसराय को लिखा और प्रार्थना की कि वे इस बिल को कार्यान्वित न होने दें, किन्तु वायसराय के कान में जूँ तक न रेंगी। गांधी जी ने इसके विरोध में आन्दोलन की आवाज़ उठाई।

उक्त आन्दोलन-सम्बन्धी समाचारों को पढ़ कर पंडित जवाहरलाल नेहरू को बड़ा संतोष हुआ। जवाहरलाल ने गांधी जी के आन्दोलन में भाग लेने की बात मन ही मन सोच डाली। पं० मोतीलाल नेहरू ऐसा न चाहते थे, अतएव इलाहाबाद आने पर इन्होंने गांधीजी से बात की। इस वार्तालाप के फलस्वरूप गांधीजी ने जवाहरलाल नेहरू को स्वयं आन्दोलन में भाग लेने से रोका। उन्होंने कहा कि 'आपको ऐसा कोई कार्य न करना चाहिए जिससे आपके पिता को कष्ट पहुँचे'। गांधी जी की इस सलाह से जवाहरलाल नेहरू को बहुत क्षोभ हुआ।

जवाहरलाल नेहरू के हृदय में देश की राजनीतिक पराधीनता की पीड़ा तो थी ही, उनके मनोभावों का आकर्षण सार्वजनिक जीवन की ओर बढ़ने लगा। उनका बहुत कुछ ध्यान देहात में रहने वाले किसानों की ओर गया। उनमें जागृति उत्पन्न करने के विचार से वे गांवों में घूमे। किसानों के संसर्ग में आकर वे उनमें घुल-मिल गये। किसानों के साथ बैठ कर उन्होंने उनसे बातचीत की, उनके घरों का बना हुआ खाना प्रेमपूर्वक खाया तथा उनके घरों में सोये। इस प्रकार उन्होंने किसानों से सम्पर्क स्थापित किया।

उनके हृदय में प्रारम्भ ही से धार्मिकता और साम्प्रदायिकता के लिए कभी स्थान नहीं रहा ; सार्वजनिक जीवन में काम करते हुए उन्होंने सदा इस बात पर जोर दिया कि साम्प्रदायिकता को लेकर मौलवी, मुल्ला, मौलाना, पंडित, स्वामी तथा गुरुजी जो भाषण देते हैं उनसे देश की परिस्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही जाती है। साम्प्रदायिक वातावरण से सदैव उनको क्षोभ ही उत्पन्न हुआ है। यहां तक कि गांधीजी के मुँह से जब वे 'राम-राज्य' जैसे शब्दों का प्रयोग सुना करते तो वे चौंक पड़ते और आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखने लगते।

इसमें संदेह नहीं कि जवाहरलाल नेहरू पर गांधी जी का बहुत प्रभाव पड़ा है, किन्तु फिर भी उन्होंने अपना व्यक्तित्व क़ायम रक्खा है। अपने विचारों और सिद्धान्तों को उन्होंने कभी कुचल जाने नहीं दिया। गांधीजी

के प्रति अपनी भावनाओं को स्पष्ट करते हुये उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'मैंने गांधीजी का सदा आदर किया है। उनके आन्दोलन का नैतिक पहलू मुझे पसन्द आया है और उनके सत्याग्रह को मैंने शक्तिशाली अनुभव किया है, लेकिन अहिंसा के सिद्धांत को मैंने सोलहो आने स्वीकार नहीं किया। मैंने कभी इस चीज़ को नहीं माना कि उसकी उपयोगिता समानरूप से हमेशा काम कर सकती है। मैंने यह विश्वास किया है कि देश की वर्तमान परिस्थिति में अहिंसा का सिद्धान्त अधिक मूल्यवान साबित होगा'।

किसानों, मजदूरों और ग़रीबों के हितों को लेकर जवाहरलाल नेहरू ने देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया और अब तक राजनीतिक संस्था कांग्रेस में काम किया है। उन्होंने देश के हित में अपना सब कुछ बलिदान करने में संकोच नहीं किया। उनके कामों में और भावों में गांधीजी की स्पष्ट छाप मालूम पड़ती है; फिर भी उनके व्यक्तित्व का एक अद्भुत और 'अलौकिक महत्व है। साधारणतया तो जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व को गांधीजी से पृथक करना एक कठिन कार्य है। सिद्धान्तों की बात और है।

पंडित नेहरू ने राजनीतिक परतंत्रता से देश को मुक्त करने के लिए अपने जीवन की प्रिय से प्रिय वस्तु की आहुति दी है। नेहरू और त्याग पर्यायवाची शब्द हो गये हैं; देश के लिए अपना सब कुछ सर्वस्व त्याग करने के लिए नेहरू परिवार बेमिसाल है। संसार में ऐसा उदाहरण ढूँढ़े न मिलेगा।

जवाहरलाल ने देश की प्रायः समस्त समस्याओं पर अपने स्वतंत्र विचार प्रकट किये हैं। आधुनिक जीवन के प्रकाश को विस्तार देने में उनको एक महान सफलता प्राप्त हुई है। उनके स्वतंत्र विचारों से उनकी विशेषता और महानता का पता चलता है। वे ज़मीदारों तथा पूँजीपतियों के विरोधी हैं और दीन, दरिद्र, श्रमिकों तथा कृषकों के परम हितैषी और 'क्रियात्मकरूप से सहायक हैं। दुखियों, दरिद्रों और पीड़ितों के प्रति उनके हृदय में जितनी ही कोमलता है, सत्य, अहिंसा और सिद्धान्त के नाम पर उनमें उतनी ही सत्यता और कट्टरता है। धार्मिक एवं सांप्रदायिक भावनाओं की संकीर्णता का जवाहरलाल ने सदा विरोध किया है, और उनके भावों की इस पवित्रता का सारे संसार ने आदर किया है। इसके विपरीत सार्वजनिक सद्भावनाओं को उन्होंने सदैव प्रोत्साहन दिया है। बार बार राष्ट्रीय-महासभा (इंडियन नेशनल कांग्रेस) का सभापतित्व स्वीकार करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे वास्तव में राजनीतिक परिस्थिति के वास्तविक ज्ञाता तथा कर्णधार हैं। वे समाजवाद के प्रबल प्रवर्तक हैं। राष्ट्रीय-जीवन में अंतर्राष्ट्रीयता का प्रकाश उन्हीं के द्वारा देश को मिला है।

पंडित नेहरू का हृदय भावों से पूर्ण रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें कुछ सोचना नहीं पड़ता। जब वे किसी विषय पर बोलने के लिए खड़े होते हैं तो ऐसा मालूम पड़ता है उनके हृदय में भावों का संघर्ष इतना अधिक है कि मुँह से निकलने में उनमें काफ़ी होड़ हो जाती है। उस समय पंडितजी की वाक्य-शक्ति पीछे रह जाती है और भाव आगे दौड़ने लगते हैं। जिसने भी उन्हें बोलते सुना है वह साधारणरूप से इस बात को समझ सकता है।

वाणी के साथ ही साथ भाव उनके चेहरे पर खिल उठते हैं और इसी समस्या में पड़कर कभी कभी वे कुछ हकलाने से लगते हैं। उस समय पंडितजी की आकृति बहुत ही आकर्षक और भली सी मालूम पड़ती है।

पंडित नेहरू ने देश को स्वतंत्रता के दर्शन कराये हैं। उनका त्याग और बलिदान सफल हुआ और आज वे स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री हैं। ऐसे समय पर जो भयानक कठिनाइयां उपस्थित हो जाया करती हैं वे नग्न-रूप से देश के सामने मुहँ बा कर खड़ी होगई हैं। स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने से अभी जन साधारण की मनोवृत्तियां तो बदली नहीं हैं; हां, कुछ बौखलाहट सी अवश्य आगई है। यहां की जनता युगों के कष्टों का निवारण क्षण में चाहती है। उसे नहीं मालूम कि अँग्रेजों का शासन जो अभिशाप बन कर आया था वह अपने पीछे भी हजारों ही समस्याओं को उत्पन्न करके गया है। इन समस्याओं का हल कोई साधारण बात नहीं है। हमारे नेता प्राण-पण से उसे हल करने में जुटे हुए हैं। विभाजन से उत्पन्न हुई अशान्ति, काश्मीर और हैदराबाद की कठिन समस्या, अन्न और वस्त्र की कमी, रिश्वतखोरी का गर्म बाजार और मानसिक दुर्बलता—ये सब ब्रिटिश सरकार की देन हैं। इन समस्याओं का हल निकालना है। साथ ही साथ देश की फौजी शक्ति का संगठन, निरक्षरता का नाश और आध्यात्मिकता का विकास भी होना है। स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए इन सब कार्यों को पूर्णता प्रदान करना है। ये समस्यायें भारत स्वातंत्र्य-संग्राम से भी अधिक भयंकर हैं।

पंडित नेहरू ने देश की बागडोर अपने हाथ में ली है। वे अथक योद्धा की भांति इन कठिनाइयों से लड़ रहे हैं। हमको एक स्वतंत्र नागरिक की भांति पंडित नेहरू को प्रोत्साहित कर उनका हाथ बँटाना चाहिये। उन पर दृढ़ विश्वास और श्रद्धा ही हमको तथा देश को कठिनाइयों से पार ले जा सकती है।

वीर प्रसूता

(श्रीमती सीता देवी बी० ए० 'हिन्दी प्रभाकर')

वीर माता ! तुमने हमें विप्लवकारी योद्धा, सुयोग्य सेनानी, सफल राष्ट्रपति तथा तूफानी प्रधान मंत्री दिया। तुम्हारी कोख ने आज देश का मस्तक ऊँचा किया है।

तुम राज रानी थीं मां ! तुम से बढ़कर ऐश्वर्य किसे उपलब्ध थे ? तुम्हारा जैसा पति और किस सौभाग्य-शालिनी को मिल सकता है ? किन्तु तुमने देश के करोड़ों भूखों और नङ्गों की पुकार पर अपना सर्वस्व राष्ट्र को दे दिया—पति, पुत्र, पुत्री तथा पुत्र-बधू सभी कुछ।

पुष्प-शैय्या पर अहर्निश रहने वाली ! तुमने हमारे लिए लाठियां खाई मां। यदि तुम्हारा क्रान्तिकारी पुत्र देख पाता तो·········अनर्थ हो जाता उस दिन।

आज सारा देश निर्विवादरूप से तुम्हारे सामने नत मस्तक है। तुम पौराणिक पतिव्रता थीं—पति की अंध भक्त हो तुमने एक आदर्श उपस्थित किया है।

देश के समर-प्रांगण में अपनी और अपने परिवार की आहुति दे देने वाली मां ! तुम आज नहीं हो, किन्तु तुम्हारा इतिहास देश के स्वातंत्र्य-युद्ध का जीता-जागता इतिहास होगा। तुम्हारी स्मृतियां हमें स्वतंत्रता देवी के मंदिर में ले जाने के लिए प्रदर्शिका सिद्ध हुई हैं।

तुम स्वर्णाक्षरों में लिखी जाओगी मां !
अनुकरणीय है तुम्हारा त्याग !
अभूतपूर्व है तुम्हारा उदाहरण !!
आदरणीय है तुम्हारी स्मृति !!!

पंडित नेहरू का घर—'आनन्द-भवन'

उनकी विचार धारा

शिवाजी—शिवाजी उभरती हुई हिन्दू जातीयता के प्रतीक थे। उन्हें पुराने साहित्य से इस प्रकार की प्रेरणा मिलती थी। वे वीर थे तथा उनमें नेतृत्व करने की क्षमता थी। उन्होंने मराठों को एक मजबूत सम्मिलित फ़ौजी दल का रूप दिया, उन्हें एक क़ौमी भूमिका दी, और ऐसी ताक़त बना दिया जिसने कि मुग़ल सल्तनत को बिगाड़ कर छोड़ा। वे सन् १६८० में मर गये, किन्तु मराठों की शक्ति बढ़ती ही गई, यहां तक कि वह हिन्दुस्तान की एक आला ताक़त बन गई।

कमाल पाशा—हिन्दुस्तान के मुसलमान और हिन्दुओं, दोनों ही में कमाल पाशा क़ुदरती तौर पर बहुत प्रिय थे। उन्होंने टर्की को विदेशी आधिपत्य और अंदरूनी फूट से ही नहीं बचाया बल्कि उन्होंने यूरोप की साम्राज्यवादी ताक़तों को और ख़ास तौर से इंगलिस्तान की चालों को बेकार कर दिया था। उन्होंने मजहब को हटाया और सुल्तान पद तथा खिलाफ़त को खत्म किया और एक ग़ैर मजहबी सरकार क़ायम की। जहां तक ज़्यादा कट्टर मुसलमानों का सवाल है, वह प्रशंसा घट गई, और उनमें आधुनिकवाद की नीति के विरुद्ध एक नाराज़ी पैदा हुई। लेकिन दूसरी तरफ़ इसी नीति ने उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही की नई पीढ़ी में ज़्यादा प्रिय बना दिया।

सर सैय्यद अहमद खाँ—उनको इस बात का पक्का यक़ीन था कि ब्रिटिश सरकार के सहयोग से ही वे मुसलमानों को ऊपर उठा सकते हैं। वे उन्हें अंग्रेज़ी तालीम के पक्ष में करने के लिए फ़िक्रमंद थे और उनके कट्टरपन को दूर करना चाहते थे। वे यूरोपीय सभ्यता से बहुत प्रभावित थे। असल में उनके यूरोप से लिखे हुए कुछ खतों से यह बात जाहिर होती है कि उस सभ्यता से वे इतना चकाचौंध थे कि उनकी माप-तौल की बुद्धि जाती रही थी।

अंग्रेज़ों की मदद सर सैय्यद को जरूरी मालूम पड़ी। इसलिए उन्होंने मुसलमानों की ब्रिटिश विरोधी भावनाओं को घटाने की कोशिश की। वे राष्ट्रीय कांग्रेस के खिलाफ़ इसलिए नहीं थे कि वह एक ऐसी संस्था थी जिसमें हिन्दुओं की प्रधानता थी, बल्कि इसलिए कि उनके लिहाज से वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ज़्यादा तेज थी (हालांकि उन दिनों कांग्रेस बहुत मामूली विचारों की ही संस्था थी) और वह ब्रिटिश सहायता और सहयोग चाहते

थे। उन्होंने यह बात दिखाने की कोशिश की, कि कुल मिला कर मुसलमानों ने ग़दर में हिस्सा नहीं लिया था और बहुत से लोग ब्रिटिश ताक़त के प्रति वफ़ादार रहे। वे किसी भी लिहाज से हिन्दू-विरोधी नहीं थे, और न वे सांप्रदायिक अलहदगी चाहते थे। उन्होंने इस बात पर बार बार जोर दिया कि धार्मिक मतभेदों का कोई भी क़ौमी या राजनैतिक महत्व नहीं होना चाहिये। उन्होंने कहा 'क्या तुम सब एक ही देश के रहने वाले नहीं हो। याद रक्खो हिन्दू और मुसलमान शब्द तो धार्मिक छांट के लिए है, वरना सब लोग हिन्दू, मुसलमान और यहां तक कि ईसाई भी जो इस देश में रहते हैं, इस लिहाज से सिर्फ़ एक ही क़ौम के लोग हैं'।

सर मोहम्मद इक़बाल—इक़बाल, पाकिस्तान की सब से पहले सलाह देने वालों में से एक थे, फिर भी ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्होंने उसके जन्म, जात खतरे और उसके निकम्मेपन को महसूस कर लिया था। एडवर्ड टामसन ने लिखा है कि बातचीत के सिलसिले में इक़बाल ने उनको बताया कि उन्होंने मुसलिम लीग के अधिवेशन के सभापति होने के नाते पाकिस्तान की सलाह दी थी, लेकिन उन्हें इस बात का यक़ीन था कि पाकिस्तान कुल मिला कर सारे हिन्दुस्तान के ही लिए और खास तौर से मुसलमानों के लिए घातक सिद्ध होगा। शायद उनके विचार बदल गये थे या शायद पहिले उन्होंने इस मामले पर ज़्यादा ग़ौर ही नहीं किया था। अपने आख़िरी बरसों में इक़बाल समाजवाद की ओर दिन-ब-दिन ज़्यादा झुके।

अपनी मृत्यु से कुछ महीने पहिले जब वे रोग-शैय्या पर पड़े थे उन्होंने मुझे बुलाया और मैंने खुशी से उनके बुलाने की तामील की। ज्यों ज्यों हम दोनों ने बहुत सी चीजों पर बातचीत की, मैंने यह महसूस किया कि बहुत से फर्कों के बावजूद, हम दोनों में बहुत सी बातें एक सी थीं और हमारे लिए एक साथ काम करना आसान होता। वे पुरानी बातों को याद कर रहे थे और एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ जाते। मैं उनकी बात चुपचाप सुनता रहा, और खुद बहुत कम बोला। मैंने उनकी और उनकी कविता की तारीफ़ की। मुझे यह महसूस करके बहुत खुशी हुई कि वे मुझे पसंद करते थे और मेरे बारे में उनकी अच्छी राय थी। बिछुड़ने से पहिले उन्होंने मुझसे कहा 'तुम में और जिन्ना में क्या बात एक सी है? वह एक राजनीतिज्ञ है और तुम देशभक्त हो'।

महात्मा गाँधी—जिन लोगों ने गांधी जी के व्यक्तित्व को नहीं जाना और न जिन्हें नजदीक से उनके सामने जाने का मौक़ा मिला, वे अक्सर सोच लेते हैं कि गान्धीजी एक उपदेशक के रूप में हैं, जो धार्मिकता के ज्ञान देते हैं। वे यह भी समझते हैं कि वे नीरस और सारहीन हैं। मैं कहता हूँ कि गांधीजी को समझने के लिए उनके लेख और व्याख्यान काफ़ी नहीं हैं। वे जो कुछ लिख गये हैं, उससे वे कहीं अधिक बढ़े-चढ़े और विशाल हैं। इसलिए जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसको लेकर उनकी आलोचना करना उनके संबंध में अन्याय करना है। उनका रास्ता एक धर्मोपदेशक का रास्ता नहीं है। उनकी मुसकराहट आनंद की लहर अपने साथ लाती है, उनकी हँसी सब को हँसाती है। उनके विनोद में लोग अपने आपको भूल जाते हैं। उनमें भोले बच्चों की सी

स्वाभाविकता है। वे जब किसी कमरे में पैर रखते हैं तो वे अपने साथ ताजी हवा का ऐसा झोंका लाते हैं जिससे उस स्थान का संपूर्ण वातावरण शीतल, शान्त और प्रसन्न हो उठता है।

गांधी जी उलझनों के एक अद्भुत नमूना हैं। मेरा ख्याल है कि सभी असाधारण पुरुषों में इस प्रकार की उलझनें होती हैं। मैंने बरसों उनको समझने की कोशिश की है, मैंने देखा है कि वे दुखियों और पीड़ितों के प्रति अधिक सहानुभूति रखते हैं, और उनके कष्टों के निवारण में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। लेकिन दूसरी ओर मैंने यह भी देखा कि उनके व्यवहारों और प्रयोगों से दुखियों और पीड़ितों की पीड़ाओं में ज्यादती होती है। उनके असाधारण व्यक्तित्व में मैंने देखा है कि वे एक ओर अहिंसा के उपासक हैं और दूसरी ओर राजनीतिक और सामाजिक जीवन का ऐसा ढांचा गढ़ते हैं जो पूरे तौर पर हिंसात्मक है। गांधी जी को समझना आसान नहीं है।

मैं जानता हूँ कि गांधी जी समाजवाद से अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने अर्थ-शास्त्र, समाजवाद और मार्क्सवाद पर भी काफ़ी अध्ययन किया है और इन विषयों पर उन्होंने दूसरों से विवाद भी किया है। आदमी में दिल और दिमाग की दो ताक़तें होती हैं; दोनों एक दूसरे से जुदा होती हैं। विलियम जेम्स ने कहा है कि 'अगर आप का दिल नहीं चाहता तो यक़ीन रखिये कि आप का दिमाग आप को कुछ करने न देगा।'

गांधी जी को समझने के लिए उनके सिद्धांतों और विश्वासों को समझना ज़रूरी है। उनके तर्क के आधार बिल्कुल भिन्न है। वे आरामतलबी और आशाइश को पसंद नहीं करते थे। उन्होंने सदा कोशिश की है कि लोग नैतिक आचरण की ओर बढ़ें और अपनी बुरी आदतों और कमजोरियों को दूर करें। उन्होंने हमेशा लोगों की आध्यात्मिक शक्ति पर ज़ोर दिया है। वे चाहते थे कि जो लोग ग़रीबों की सेवा करना चाहते हैं उनको चाहिए कि वे स्वयं ग़रीबों और पीड़ितों की शकल में आकर उनसे मिलें और बीच के अन्तर को मिटा दें। गांधी जी ने अपने जीवन में यही किया और दूसरों के लिए उदाहरण छोड़ा है।

हृदय के परिवर्तन को ज्यादा कीमती समझते थे और इसी बुनियाद पर सब जगह वे काम करते थे। उनके इन विचारों के साथ सभी का आना मुश्किल है।

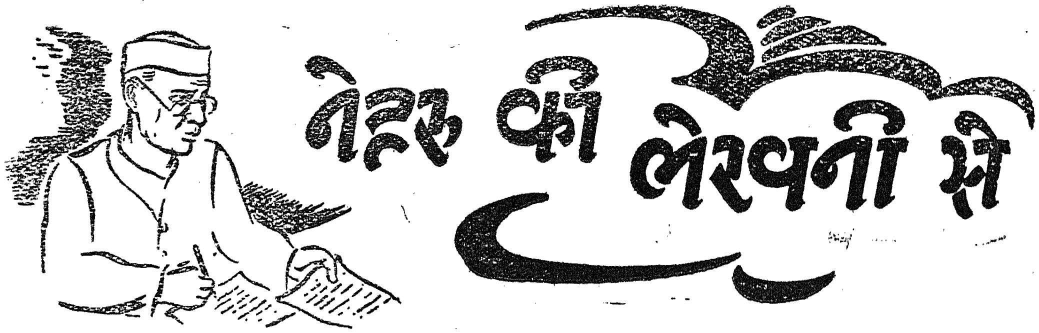

जातीयता और अन्तर्जातीयता

दुनियां की हाल की घटनाओं से यह साबित हो गया है कि अन्तर्जातीयता और जन-आन्दोलनों के आगे जातीयता खत्म हो जाती है, यह गलत है। सच यह है कि जातीयता की भावना लोगों में अब भी एक जोरदार भावना है। XXXX मजदूर पेशा लोगों के और जनता के आन्दोलन, जो अन्तर्जातीयता की नींव पर क़ायम हुए थे, अब जातीयता की ओर झुकते आरहे हैं। जातीयता की इस अचरजभरी उठान ने एक नई शकल में उसके नये नये मसले खड़े कर दिये हैं। पुरानी और जमी हुई भावनायें आसानी से हटायी या मिटायी नहीं जा सकतीं। नाजुक वक़्तों में वे उठ खड़ी होती हैं, और लोगों के दिमागों पर अपना असर डालती हैं। जातीयता का आदर्श एक गहरा और मजबूत आदर्श है और यह बात नहीं कि इसका जमाना बीत चुका है और आगे के लिए उसका महत्व न रह गया हो। लेकिन जिन्दगी में और भी आदर्श हैं। अगर हम दुनियां की कशमकश को बन्द कर अमन क़ायम करना चाहते हैं तो इन जुदा-जुदा आदर्शों के बीच एक समझौता कायम करना पड़ेगा। आदमी की आत्मा के लिए जातीयता का जो आकर्षण है, उसका लिहाज करना पड़ेगा, चाहे उसके दायरे को कुछ महदूद ही करना पड़े।

अगर उन देशों में भी जहां कि नये विचारों और अन्तर्जातीयता का जोरदार असर है, जातीयता की भावना आम तौर पर है तो हिन्दुस्तान के लोगों के दिमागों पर उसका ज़्यादा असर होना लाज़िमी है।

हिन्दू-धर्म क्या है ?

हिन्दू-धर्म और हिन्दूपन का इस्तेमाल जब बहुत संकुचित अर्थ में किया जाता है तो इनसे एक खास मजहब का ख़्याल होता है और गलतफ़हमी पैदा होती है। हमारे पुराने साहित्य में हिन्दू शब्द कहीं आता ही

पंडित नेहरू के पितामह
पंडित गंगाधर नेहरू

नहीं है। यह शब्द सिन्धु से निकला है और यह इंडस का पुराना और नया नाम है। इस सिन्धु शब्द से हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द बने हैं।

बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म यक़ीनी तौर पर हिन्दू-धर्म नहीं हैं और वैदिक धर्म ही हैं। फिर भी उनकी उत्पत्ति हिन्दुस्तान ही में हुई। ये हिन्दुस्तानी जिन्दगी और तहजीब के अंग बनें, इसलिए हिन्दुस्तानी संस्कृति को हिन्दू-संस्कृति कहना एक सरासर ग़लतफ़हमी फैलाना है। बाद में इस संस्कृति पर इस्लाम का बहुत बड़ा असर पड़ा। मगर यह फिर भी बुनियादी तौर पर साफ़ साफ़ हिन्दुस्तानी ही बनी रही।

हिन्दू-धर्म जहां तक वह एक मत है, स्पष्ट नहीं है। इसकी कोई निश्चित रूप-रेखा नहीं है। इसके कई पहलू हैं और उसका ऐसा रूप है कि जो इसे जिस तरह का चाहे मान ले। इसकी परिभाषा दे सकना या निश्चितरूप में कह सकना कि साधारण अर्थ में यह एक मत है, कठिन है। इसकी मुख्य भावना यह जान पड़ती है कि अपने को जिन्दा रक्खो और दूसरों को भी जीने दो। गांधीजी इसे सत्य और अहिंसा बतलाते हैं, लेकिन बहुत से प्रमुख लोग, जिनके हिन्दू होने में कोई संदेह नहीं, यह कहते हैं कि अहिंसा जैसा उसे गांधीजी समझते हैं हिन्दूमत का आवश्यक अंग नहीं है। तो फिर हिन्दूमत का अर्थ केवल सत्य रह जाता है। ज़ाहिर है कि यह कोई परिभाषा न हुई।

धर्म क्या है ?

हिन्दुस्तान सब बातों से ज़्यादा धार्मिक देश समझा जाता है। हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख तथा दूसरे लोग अपने अपने मतों का अभिमान रखते हैं और एक दूसरे के सिर फोड़ कर उनकी सचाई का सुबूत देते हैं। हिन्दुस्तान में और दूसरे देशों में मज़हब के मौजूदा रूप ने तथा मज़हब के संगठित दृश्य ने मुझे भयभीत कर दिया है। मैंने उसकी कई बार निन्दा की है और उसको जड़-मूल से मिटा देने की मेरी इच्छा है। मैंने तो हमेशा यही समझा है कि अंध-विश्वास के सिद्धान्तों पर स्थापित स्वार्थों के संरक्षण का भी नाम धर्म है।

धर्म का भूतकाल कुछ भी रहा हो, आजकल का संगठित धर्म ज़्यादातर एक खाली ढोंग रह गया है जिसके अन्दर कोई तथ्य और तत्व नहीं है।

मुझे परलोक की या मृत्यु के बाद क्या होता है, इसके बारे में कोई दिलचस्पी नहीं है। इस जीवन की समस्यायें ही मेरे दिमाग़ को व्यस्त करने के लिए बहुत काफ़ी हैं। अगर नैतिकता और आध्यात्मिकता को दूसरे लोक के पैमाने से न नाप कर इसी लोक के पैमाने से नापा जाय तो धार्मिक दृष्टिकोण अवश्य ही राष्ट्रों की नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहायता नहीं देता, बल्कि अड़चन पैदा करता है। धर्म-भीरु व्यक्ति समाज की भलाई की अपेक्षा अपनी मुक्ति की ज़्यादा फ़िक्र करने लगता है।

किसी भी भाषा में धर्म शब्द के जितने भिन्न भिन्न अर्थ लगाये जाते हैं उनके विभिन्न अर्थ शायद किसी

दूसरे शब्द के नहीं लगाये जाते। मज़हब शब्द को पढ़ने और सुनने से शायद किन्हीं भी दो मनुष्यों के मन में एक प्रकार के विचार या कल्पनायें पैदा नहीं होतीं; हज़ारों और लाखों कल्पनायें दिल और दिमाग़ पर पैदा होती हैं। उनके आपस में भिन्न होने के कारण दिमाग़ इस क़ाबिल नहीं रह जाता कि वह किसी भी चीज़ को सही सही सोच सके।

इस हालत में धर्म क्या चीज़ है? शायद वह किसी आदमी की भीतरी तरक़्क़ी है जो उसको खास दिशा की ओर ले जाती है? वह दिशा कौन सी है? इस भीतरी तबदीली पर धर्म का ज़ोर पड़ता है और बाहरी तबदीली भीतर का ही हिस्सा है। ऐसा मालूम होता है; लेकिन दोनों ही हालतें एक दूसरे पर मुनहसर हैं। गांधीजी का कहना है कि कोई भी आदमी बिना धर्म के जीवित नहीं रह सकता; × × × × जो लोग कहते हैं कि धर्म का राजनीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वे धर्म को ठीक ठीक नहीं समझते।

धर्म की आधुनिक परिभाषा प्रोफ़ेसर जान डेवी ने की है। उस परिभाषा से धर्मभीरु-व्यक्ति सहमत न होंगे। प्रोफ़ेसर साहब की राय में धर्म वह चीज़ है जो लोक-जीवन के खंड खंड और परिवर्तनशील दृश्यों को समझने की शुद्ध दृष्टि देता है।

हिन्दुस्तान–पुराना और नया

अधःपतन और दरिद्रता के होने पर भी हिन्दुस्तान में महानता है हालांकि उसका पुरानापन मौजूदा मुसीबतों से दबा हुआ है और उसकी आंखों में थकावट है फिर भी उसके जीवन में ख़ूबसूरती की चमक है; उसके विचारों और भावों में उसकी मौलिकता झलकती है। उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण है फिर भी उसकी आत्मा जीवित है और स्वाभिमान से पूर्ण है। उसने अपनी जिन्दगी के कितने ही युग बिताये हैं और उत्थान तथा पतन के बहुत से अनुभव हासिल किये हैं। उसने बड़ी बड़ी ज़िल्लतें उठायी हैं और महान दुख झेले हैं। अपनी जिन्दगी में उसने अद्भुत दृश्य देखे हैं। उसने अपनी पुरानी संस्कृति को कभी भुलाया नहीं। राजनीतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान के अक्सर टुकड़े टुकड़े किये गये हैं? किन्तु उसकी आध्यात्मिकता ने उसकी सर्वमान्य संस्कृति की रक्षा की है। अनेक विभिन्नताओं के बीच भी उसकी विशेषता रही है। सभी पुराने देशों की तरह इसमें भी अच्छाई और बुराई का एक अजीब मिश्रण था। अच्छाई तो छिपी हुई थी और उसे खोजना पड़ता था लेकिन उसकी खराबी की सड़ी गंध ज़ाहिर थी, समय और संयोग ने उसे दुनिया के सामने प्रकट कर दिया है। उसकी छिपी हुई अच्छाई भी दुनियां के सामने आ रही है।

अन्तर्जातीय विवाह और लिपि का प्रश्न

मेरी बहिन कृष्णा की सगाई का प्रबन्ध मेरे सामने आया। मेरे जेल से बाहर रहने का कुछ निश्चय न था, इसीलिए मैं चाहता था कि मेरी मौजूदगी में हो जाय तो अच्छा है।

यह विवाह 'सिविल मैरिज एक्ट' के अनुसार होने वाला था। मैं इस बात से खुश था। यह विवाह दो भिन्न जातियों—ब्राह्मण और अब्राह्मण—में होने को था और सच पूछो तो इसके सिवा मेरे पास और कोई उपाय भी न था। ब्रिटिश भारत के मौजूदा कानून के अन्तर्गत ऐसा विवाह कैसी धार्मिक विधि से क्यों न किया जाय जायज़ नहीं हो सकता। खुशकिस्मती से उन्हीं दिनो में पास हुआ 'सिविल मैरिज एक्ट' हमारी मदद को मिल गया।

मेरी बहिन की शादी में कोई धूमधाम नहीं हुई। सारा काम बड़ी सादगी से हुआ। हिन्दुस्तानी विवाहों में जो धूमधाम होती है वह मुझे पसन्द भी नहीं है। विवाह के लिए जो छोटा सा निमंत्रण-पत्र हमने भेजा था वह लैटिन अक्षरों व हिन्दुस्तानी भाषा में छपाया गया था। यह एक बिल्कुल नयी बात थी। अब तक इस प्रकार के निमंत्रण-पत्र नागरी या फारसी लिपि में लिखे जाते थे। मैंने रोमन-लिपि का इस्तेमाल इसलिए किया था कि इसका असर मुख्तलिफ़ लोगों पर क्या पड़ता है, इसे कुछ लोगों ने पसंद भी किया और कुछ लोगो ने नापसंद की। नापसंद करने वालों की तादाद अधिक थी। गांधी जी ने भी इसे पसंद नहीं किया।

रोमन-लिपि इस्तेमाल करने का मक़सद मेरा यह नहीं था कि मैं उसके पक्ष में हो गया हूँ, हांलाकि उसने मुझे बहुत दिनों से अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था। टर्की और मध्य एशिया में रोमन-लिपि की सफलता ने मुझे प्रभावित किया था। रोमन के पक्ष में जो दलीलें हैं उनमें काफ़ी वज़न है, फिर भी मैं भारतवर्ष के लिए रोमन-लिपि के पक्ष में नहीं था। भारत में उसके अपनाये जाने की संभावना बिल्कुल न थी।

आज तो हिन्दुस्तान में रोमन-लिपि का प्रश्न ही नहीं है। मेरी समझ में लिपि-सुधार की दृष्टि से जो अगला क़दम होना चाहिए वह है संस्कृत भाषा से उत्पन्न चारों भाषायें—हिन्दी, बंगला, मराठी और गुजराती—के संबंध में। इनकी एक सी लिपि होने की जरूरत है। इन चारों के जन्म का आधार एक ही है। लिपि का अन्तर मिट जाने से वे चारों भाषायें एक दूसरे के नज़दीक आजायेंगी।

मगर हिन्दुस्तान की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट हमको बतलाती है कि हिन्दुस्तान में दो सौ या तीन सौ भाषायें हैं। जर्मनी के मर्दुमशुमारी भी बतलाती है कि वहां पर भी ५०-६० भाषायें हैं। जहां तक मैं जानता वहां पर कभी किसी ने इतनी भाषाओं के कारण वहां की आपसी फूट को साबित नहीं किया। सच तो यह है के मर्दुमशुमारी में सभी बोली जाने वाली भाषाओं का ज़िक्र किया जाता है, फिर उसके बोलने वाले चाहे कुछ हज़ार की संख्या ही में क्यों न हों। बोलने का फ़र्क भाषा का फ़र्क नहीं कहा जाता। हिन्दुस्तान के क्षेत्रफल को देखते हुए इतनी थोड़ी भाषाओं का होना एक ताज्जुब की बात मालूम होती है। यूरोप के इतने भागों को लेकर मुक़ाबिला करें तो भाषा की दृष्टि से हिन्दुस्तान में इतने भेद नहीं मिलेंगे। किन्तु हिन्दुस्तान में शिक्षा का प्रचार न होने के कारण यहां भाषाओं का समान स्टैंडर्ड नहीं बन पाया है। कई बोलियां अवश्य बन गई।

बर्मा को छोड़ कर हिन्दुस्तान की मुख्य भाषायें ये हैं—हिन्दुस्तानी (हिन्दी और उर्दू जिसकी दो क़िस्में

हैं), बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, मलायलम और कन्नड़। इसके साथ अगर आसामी, उड़िया, सिंधी, पश्तो और पंजाबी को भी शामिल कर दिया जाय तो सिवा कुछ पहाड़ी और जङ्गली हिस्सों को छोड़ कर सारे देश की भाषायें इनमें आजाती हैं।

इन मुख्य आठ भाषाओं में पुराना बहुमूल्य साहित्य है और ये भाषायें देश के काफी बड़े हिस्सों में बोली जाती हैं। इनका क्षेत्र निश्चित और स्पष्ट है। इस तरह बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से देखें तो ये भाषायें संसार की प्रमुख भाषाओं में आजाती हैं। बंगला बोलने वालों की संख्या पांच करोड़ है; हिन्दुस्तानी बोलने वालों की संख्या, जहां तक मेरा ख्याल है, करीब दस करोड़ है। हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों के लोग हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं।

विदेशी भाषाओं के सीखने के लिए हम कितना ही प्रोत्साहन क्यों न दें, बाहरी दुनियां में हमारा संबंध अँग्रेजी भाषा द्वारा ही रहेगा। कई पीढ़ियों से अँग्रेजी सीखने में हमने कोशिश की है और इसमें हमको सफलता मिली है। इस मिली हुई सफलता को मिट्टी में मिला देना सरासर मूर्खता है। इतने अर्से की मेहनत से हमें लाभ उठाना चाहिये। निस्संदेह अँग्रेजी आज संसार की सब से ज़्यादा व्यापक और महत्वपूर्ण भाषा है। दूसरी भाषाओं पर वह अपना सिक्का जमा रही है। यह संभव है कि अब अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में और रेडियो आदि के लिए वह माध्यम बन जाय, बशर्ते कि अमेरिकन उसकी जगह न ले ले। इसलिए हमें अँग्रेजी भाषा के ज्ञान का प्रसार अवश्य जारी रखना चाहिये। अँग्रेजी को जितना अधिक सीख सके उतना ही अच्छा है। लेकिन मुझको इसकी जरूरत नहीं मालूम होती कि अँग्रेजी की बारीकियों को सीखने में हम लोग अपना बल लगावें जैसा कि हममें से बहुत लोग आजकल करते हैं।

मैं खुद इस बात को पसंद करूंगा कि हिन्दी में अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के बहुत से शब्द ले लिये जायँ। इसकी जरूरत है, क्योंकि आजकल जो नई नई चीजें निकलती हैं उनका अर्थ बताने वाले शब्दों का हमारी भाषा में अभाव है। इसलिए यह जरूरी है कि संस्कृत, फारसी या अरबी से नये और मुश्किल शब्द लेने के बजाय दूसरी भाषाओं के प्रचलित शब्दों को काम में लावें और अपनी भाषा की कमी को पूरा करें। हमारी भाषा में इतनी गुंजाइश होना चाहिये कि उसमें विदेशी भाषाओं के शब्द आ सकें और शामिल होकर खप सकें।

साम्प्रदायिकता

अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जो हमारी राष्ट्रीय लड़ाई चल रही थी, गांधीजी ने उसमें मुसलमानों को भी खींचा। मुहम्मद अली जिन्ना को छोड़ कर करीब करीब सभी प्रमुख मुसलमान कांग्रेस के भीतर आ गये। ये लोग सन् १९१९ से लेकर १९२३ तक बराबर हमारे साथ काम करते रहे।

इसके बाद देश में साम्प्रदायिकता की लहर उठी। हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों के नेता जो सार्वजनिक

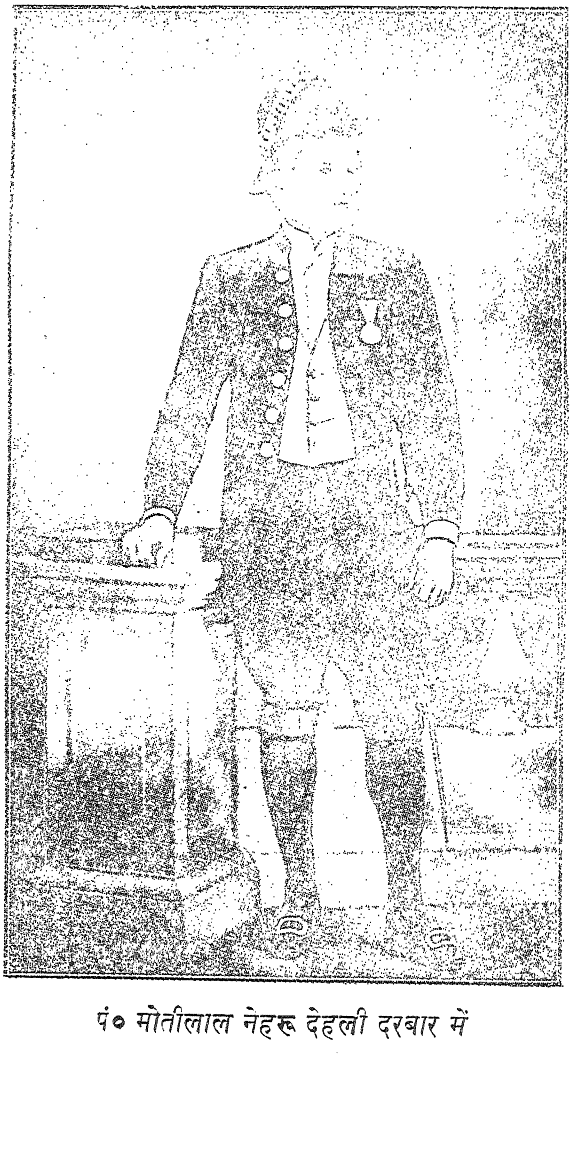

पं० मोतीलाल नेहरू देहली दरबार में

क्षेत्र से अलग थे साम्प्रदायिकता को लेकर आगे बढ़े। दोनों जातियों के तनाव बढ़ने लगे। लेकिन कांग्रेस पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा।

मुसलमानों की साम्प्रदायिकता पर जब कभी हिन्दू महासभा आक्षेप करती है तो वह सदा अपनी राष्ट्रीयता का राग अलापती है। हिंदू-मुसलिम साम्प्रदायिकता का सब से अजीब प्रदर्शन तो गोलमेज-कांफ्रेंस में हुआ। ब्रिटिश सरकार मुसलमानों में उन्हीं को नामजद करना चाहती थी जो साम्प्रदायिकता के पक्षपाती थे। इसमें सरकार को कामयाबी हुई।

हिंदू महासभा ने इसका उत्तर दिया—और जो रास्ता अख़्तियार किया उससे अँग्रेजी राज्य की जड़ और भी मजबूत होने लगी। इससे उनको कुछ लाभ तो हुआ नहीं बजाय इसके उन्होंने अपने पक्ष को ही धक्का पहुँचाया और स्वतंत्रता के साथ विश्वासघात किया।

हिंदू और मुस्लिम संस्कृत की भावना एक अजीब भावना है। उस समय जब कि सारा संसार एक ही संस्कृति के धागे में पिरोया जा रहा है, हिंदुओं और मुसलमानों के जीवन में काफ़ी मतभेद है। लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में उसकी कोई हस्ती नहीं है। हिन्दुस्तान में इस समय असली झगड़ा हिंदू-संस्कृति और मुस्लिम-संस्कृति का नहीं है बल्कि इन दोनों की विजयी वैज्ञानिक संस्कृति के बीच है।

यह मुस्लिम-संस्कृति आखिर चीज क्या है? क्या यह अरबी, फ़ारसी, तुर्की लोगों के महान कार्यों की कोइ जातीय स्मृति है या भाषा है? अथवा कला और संगीत है? या रस्मो-रिवाज है? मैंने यह समझने की हरचंद कोशिश की कि आखिर यह मुस्लिम-संस्कृति है क्या चीज? लेकिन मुझे स्वीकार करना पड़ा कि मैं इसमें सफल नहीं हुआ।

मुझे उन हिंदुओं और मुसलमानों को देख कर अचरज मालूम होता है जो हमेशा पुराने जमाने का रोना रोया करते हैं और उन चीज़ों को पकड़ने की कोशिश करते हैं जो उनके हाथों से खिसकती जा रही है। मैं तो प्राचीन काल की न तो निन्दा करना चाहता हूँ और न उसे छोड़ ही देना चाहता हूँ। हमारे अतीत में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनकी अच्छाई में किसी को शक नहीं हो सकता। वे हमारे साथ रहेंगी, लेकिन ताज्जुब तो यह है कि ये लोग उन अच्छाइयों को नहीं पकड़ते। ऐसी चीज़ों को पकड़ने दौड़ते हैं जो अक्सर निकम्मी और बेकार होती हैं।

जमींदार और रियासतें

मैंने अक्सर जमींदारों और ताल्लुकेदारों की निन्दा की है। मेरी निन्दा से मेरे कितने ही दोस्तों ने मुझसे पूछा है कि आप को जमींदारों और ताल्लुकेदारों में क्या कभी कोई भला आदमी मिला ही नहीं? मैं मंजूर करता हूँ कि मुझे मिले हैं और मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। इसके लिए कम्युनिष्टो ने मेरे विरुद्ध बहुत सी बातें कही

हैं। उनकी कही हुई बातों को सही मानता हूँ। मेरे जो दोस्त मुझसे उस तरह की बात करते हैं मेरे संबंध में वे यह भी जानते हैं कि हमारी लड़ाई पाप से है पापी से नहीं। मैं तो साफ़ कहता हूँ कि मेरा झगड़ा तो गलत बातों से है, आदमियों के साथ मेरा कोई झगड़ा नहीं है। यह जरूर है कि गलत बातें आदमियो से ही संबंध रखती हैं। इस हालत में या तो उन आदमियों को हम बदल डालें और नहीं तो उनके साथ लड़ना जरूरी हो जाता है।

रियासतों के मामले भी हमारे सामने मामूली नहीं हैं। उनमें जब मनुष्यों के साधारण अधिकारों को भी कुचला गया तो कांग्रेस के लिए यह जरूरी था कि वह उसमें दखल दे। रियासतों में बड़ी से बड़ी सख्तियां की गईं और कांग्रेस पर बराबर हमले किये गये। देशी राज्यों के संबंध में गांधी जी पहिले इतना फूक फूक कर क़दम नहीं रखते थे। गांधीजी रियासतों में होने वाले अत्याचारों को जानते थे। वे उनको रोकना चाहते थे, लेकिन किसी कठोरता के साथ नहीं। वे हृदय परिवर्तन पर विश्वास करते थे और उसके लिए किसी सुअवसर का वे इंतजार कर रहे थे। किसानों और जमीदारों के संबंध में भी उनकी बातें कम अचरज की नहीं हैं।

गांधी जी ने यह भी कहा था कि—बिना कारणों के सम्पत्तिशालियों से उनकी सम्पत्ति छीन लेने के काम में मैं कभी साथ नहीं दे सकता। मेरा उद्देश्य तो यह है कि आप के हृदयों में घर करके मैं आप को अपने विचारों का बना लूँ, जिससे आप अपनी सम्पत्ति को किसानों के लिए ट्रस्ट के रूप में रखें और किसानों की भलाई में उसको खर्च करें। गांधी जी की इन बातों में उनका एक सत्य छिपा हुआ है। वे हृदय के परिवर्तन को ज़्यादा कीमती समझते थे और इसी बुनियाद पर सब जगह वे काम करते थे।

पश्चिमीय समालोचक मि० एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड ने कहा है कि 'हिन्दुस्तान के महाजन और जमीदार जिस प्रकार अमानुषिक हैं, आज के मानव-समाज में उनकी कहीं सानी नहीं मिलती'।

इसमें कोई शक नहीं कि हमारे मुल्क में रुपये वालों और जमीदारों का रवैया निहायत खराब है। यह सही है कि उनकी परिस्थितियों ने ही उन्हें इतना पतित बना दिया है। उनको जो रुतबा मिला है उससे वे बिगड़ने के बजाय बन नहीं सके।

समर्पित आत्मा

श्री सिग्रिड पिटार्सन गोल्ड

संध्या का समय था, वह शांत समय जब संसार सौंदर्य से परिपूर्ण होता है और मधुर आशाओं की चेतना सब को विभोर कर देती है। हम लोग यमुना के सुदूर तट पर विहार कर रहे थे, वसंत की बयार बह रही थी। दिन धीरे धीरे अन्त की ओर बढ़ रहा था। हमारे बच्चे स्वर्णिम बालुका-तट पर स्वच्छंदता से दौड़ लगा रहे थे। अपने सुकुमार शरीरों को कछुओं के क्रीड़ा करने वाले जलाशय में डुबाते और अपनी कोमल अंगुलियों से अपने चले जाने के बाद भी स्थिर रहने की भावना से बालू के दुर्ग बनाते।

हम लोग विहार करने की भावना से वहां गये थे। हमारे साथ दो बच्चे थे उनके साथ तीन। एक दूसरे के प्रति हम लोगों में उत्सुकता जागृत हो रही थी। उन एकत्रित बच्चों की मैत्री का श्रीगणेश हुआ और उसके परिणाम स्वरूप पंडित जवाहरलाल से परिचय होगया।

निश्चय ही उनको जानने का सुअवसर उनकी रचनाओं के द्वारा मिला था। अपनी रचनाओं में वे दृढ़ और शक्तिशाली विचारों के व्यक्ति के रूप में मिलते हैं। वे उन्नति के समर्थक हैं। उनका यथार्थवाद न केवल भारत और उसकी वर्तमान समस्याओं तक सीमित है वरन् संसार और उसके भविष्य पर भी वह प्रकाश डालता है। उनकी आत्म-कथा भी अनुभव-प्राप्त व्यक्ति ही पढ़ सकता है। उनके गद्य की निर्मलता और सौंदर्य द्वारा उस जीवन का अनुभव होता है जो गंभीर सहानुभूति, विस्तृत मैत्री और अनुभवों के प्रति चेतना, सावधानी, व्यग्रता और उत्साह से भरपूर है। महान कठिनाइयों के सम्मुख भी जिसने साहस नहीं तोड़ा और जो जीवन की उस महानता के खोजने में अनुरक्त है जिसकी उत्सुकता और अनुरक्ति बहुत दिनों से चली आरही है।

परन्तु उनसे मिलने का महत्व कुछ और भी है। उनका सुन्दर मुख है, प्रकाशपूर्ण उनकी आंखें हैं जो दुस्साध्य परिस्थितियों की तहों में प्रवेश करके वास्तविक वस्तुस्थिति के पहिचानने का काम करती हैं। उनमें आग

की सी तीव्रता है, साथही सहानुभूति की शीतलता की मर्यादा भी है। उनमें उत्सुकता और प्रेरणा की तेजी है। इन सभी बातों का अनुभव उनके सामने पहुँचते ही होता है।

ये सब बातें एक ओर हैं और उनका व्यक्तित्व दूसरी ओर है। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है जिसके सामने उनकी ऊपर लिखी हुई समस्त विभूतियां विस्मृत हो जाती हैं। उनके व्यक्तित्व की गंभीरता में प्रकृति का गंभीर प्रकाश है।

उनकी आकृति में मनोहर छवि है, उस छवि में गौरव का समावेश है। उनमें दो बातें प्रधान हैं—शारीरिक सुन्दरता और व्यक्तित्व की गम्भीरता। इन दोनों का जबरदस्त प्रभाव लोगों पर पड़ता है। उनमें कोमलता है और है साधुता जो दूसरों को आत्म-निहित करने का कार्य करती है।

उनका स्वागत और आतिथ्य कभी भूला नहीं जा सकता, उनके परिहास में जीवन होता है। उनके हास्य में अद्भुत सौंदर्य का सम्मिश्रण होता है। उनसे मिलने पर इन सभी बातों का अपने आप परिचय मिलता है। सर्व साधारण के साथ उनके जीवन की निष्कपट सहानुभूति उनके स्वभाव का चित्र उपस्थित करती है। यहां पर इसके सम्बन्ध में एक उदाहरण देना आवश्यक मालूम होता है। अभी हाल ही में वे काश्मीर से लौटे थे। उसी समय की यह घटना है। अपने पति के साथ उनसे मिलने गई थीं। नौकर हम दोनों को देख कर मुसकराये। उनकी मुसकुराहट देख कर ऐसा मालूम होता था जैसे वे हमको देख कर प्रसन्न हुए हों, उनकी मुसकुराहट में शान्ति थी और था प्रसन्नता का पुट।

हम दोनों को लेकर नौकर चले। आनन्द-भवन में हमने प्रवेश किया। वह एक विस्तृत भवन है। अपने पति के साथ मैं उस कमरे में पहुँची जिसका फर्श संगमरमर का था। पंडित जवाहरलाल नेहरू पश्चिमी बरामदे में थे और उनको घेरे हुए देहातियों की एक भीड़ खड़ी थी।

वे देहाती कितने ही मील चल कर पंडितजी के दर्शनों के लिए आये थे। वे भीतर कमरे में आये। घर की कती हुई खादी की सफ़ेद पोशाक वे पहिने हुए थे। सम्मुख आते ही स्नेह-प्रदर्शन के साथ-साथ उन्होंने अपने दोनों हाथ बढ़ा दिये।

एक गद्देदार तख़्त पर बैठते हुए उनकी ओर देखते हुए मैंने कहा—आपको देख कर हम लोग बहुत प्रसन्न होते, लेकिन हम आ न सके।

पण्डितजी ने पूछा—ऐसा क्यों ?

मैंने कहा—यह जान कर कि आपके पास कार्य अधिक है, समय नहीं है, और मिलने वालों की संख्या भी बहुत है।

श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू

मेरी बात को सुन कर उन्होंने मुसकुराते कहा—फिर भी ऐसा होना चाहिए था।

इस प्रकार ये थोड़े से शब्द उनके व्यवहार का परिचय देते हैं और उनसे प्रकट होता है कि इस महान व्यक्ति में दूसरों के प्रति कितना स्नेह और आदर है।

यह हो सकता है कि वर्षों तक वे अपने किसी दूरस्थ पड़ोसी के सम्पर्क से अलग रहें, परन्तु फिर भी वे उसे भूलते नहीं, और अपनी यात्राओं के समय संकीर्ण तथा अत्यन्त व्यस्त अवसरों पर भी वे उसकी शुभचिंतना के प्रति अपनी अधिक से अधिक उत्सुकता प्रकट करते हैं।

भारत और उसकी कठिन परिस्थितियों के सम्बन्ध में सोचना नेहरू के सम्बन्ध में विचार करना है और प्रश्न करना है कि क्या वे कठोर हैं?

नहीं, साधारण अर्थ में ऐसा नहीं है। उसके सम्बन्ध में पूर्णरूप से उन्होंने अपनी आत्मा का समर्पण किया है। वे अपनी एक सांस में प्रतिद्वन्दी की निर्बलता को निर्भयतापूर्वक प्रकट करते हैं और दूसरी सांस में वे उसके सद्‌गुणों के प्रति सराहना और आदर प्रकट करते हैं। भारत के लिए जिस प्रकार की स्वाधीनता और व्यक्तित्व के प्रति आदर प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा है, उसे वे अपने मण्डल के सदस्यों तथा सम्पूर्ण संसार के निवासियों के लिए भी आवश्यक समझते हैं। फिर चाहे वह उनकी पीड़ाओं का कारण ही क्यों न बने?

बच्चों और तारागणों के इस प्रेमी ने, त्रस्त मनुष्यों को उकसाने वाले इस विद्रोही ने, लेखनी और स्वर पर अधिकार रखने वाले इस व्यक्ति ने एक सिद्धांत के लिए अपने जीवन का समर्पण किया है। वे दृढ़ हैं और दृढ़ता स्वयं उनकी ओर अग्रसर होकर उनकी गति में प्रवेश कर रही है। वे हिमालय के उन उच्च शृंगों के समान है जो उनके जीवन में प्रेरणा उत्पन्न करते हैं और आगे बढ़ते हैं। उनके सामने अनेक संघर्ष हैं परन्तु उनके लिये कोई भी दुस्साध्य नहीं। वे अपने संघर्षों को जानते हैं और जानते हैं कि उन्हें कहां जाना है?

निर्भीक जवाहर

श्रीयुत श्रीप्रकाशजी

सन् १९०५ ई० में पंडित जवाहरलाल नेहरू इंगलैंड में थे। मैं वहां सन् १९११ में गया था। हैरो के बाद वे केम्ब्रिज के ट्रिन्टी कालेज में चले गये। मैं भी वहीं गया किन्तु इसके एक वर्ष पूर्व ही वे यूनीवर्सिटी छोड़ चुके थे और लंदन में बैरिस्टरी पढ़ रहे थे। सन् १९११-१२ की बड़े दिन की छुट्टियों में मैं लंदन गया। उस समय प्रयाग के डा० भगवानदीन दुबे लंदन में वैरिस्टरी करते थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामदुलारी दुबे जानती थीं कि मैं यहां अजनवी-सा हूँ; वे मुझे एक दिन रास्ते में मिल गई तथा मुझे अपने घर पर आमंत्रित किया। मैं श्रीयुत तथा श्रीमती दुबे के पास बैठा हुआ था कि एकाएक वहां जवाहरलाल नेहरू आ गये। मेरी और उनकी यह पहली भेंट थी। मुझे याद है कि उस समय जवाहरलाल ने हिन्दी में कहा था 'मुझे तो भूख लगी है'। उस समय कुछ जलपान की सामिग्री लाई गई। उस दिन बहुत रात गये हम लोग दुबेजी के घर से निकले। ये लोग हैम्पस्टेड में रहते थे और हमारा मकान उनसे दूर न था। आधी रात बीत गई थी और सवारियों का मिलना कठिन हो गया था। जवाहरलाल बहुत दूर रहते थे। थोड़ी दूर तक हम दोनों साथ साथ चलते रहे, फिर मैंने पूछा 'आप घर कैसे जायँगे?' उन्होंने उत्तर दिया 'मेरे विषय में चिन्ता न कीजिये, अभी मुझे घर पहुँचने के पहिले कुछ और खाना-पीना है'। जवाहरलाल, जैसा कि उनकी आत्म-कथा से स्पष्ट है, अपना विद्यार्थी-जीवन एक धनी अंग्रेज के लड़के की भांति व्यतीत करते थे। मैं एक दो अंग्रेजों से मिला हूँ जो उनके साथ कालेज में पढ़ते थे तथा उन्हीं के साथ रहते थे, उन्होंने मुझे बतलाया कि पंडित नेहरू में उस समय ऐसी कोई विशेषता नहीं मालूम दी जिससे यह ज्ञात होता कि भविष्य में वे इतने बड़े पुरुष हो जायँगे।

जवाहरलाल सन् १९१२ में भारत लौटे; मैं १९१४ में लौटा था। सन् १९१४ की ग्रीष्म ऋतु में प्रयाग में एक स्पेशल कांग्रेस हुई थी जिसमें युक्त प्रान्त में 'एक्सेक्यूटिव कौंसिल' न स्थापित करने वाले सरकारी निर्णय का विरोध किया गया था। यह अफ़वाह उड़ रही थी कि यह कौंसिल प्रान्त में बनाई जायगी और उस समय के प्रसिद्ध वकील सर सुन्दरलाल उसके प्रथम भारतीय सदस्य होंगे। जब ऐसा न किया गया तो राजनीतिज्ञों को बड़ी निराशा हुई। इसी का विरोध करने के लिए प्रयाग में राजा महमूदाबाद के सभापतित्व में उक्त कांफ्रेंस हुई।

शिशु जवाहर

में इसमें काशी के अन्य डेलीगेटों के साथ सम्मिलित होने के लिए आया था। जवाहरलाल नेहरू तथा मेरे कुछ अन्य केम्ब्रिज के साथी इसमें बैरिस्टरों की पोशाक पहिने हुए स्वयंसेवकों का कार्य कर रहे थे और आये हुए डेलीगेटों की ठंडे शर्बत से खातिर कर रहे थे। यहां मेरी जवाहरलाल से दूसरी बार भेंट हुई। वे राजनीति की ओर खिंच चले थे। वे कदाचित् अपने पिता के मार्ग से अलग हो रहे थे। जहां तक पंडित मोतीलाल के मित्रों का मत है, उनका कहना है कि वे चाहते थे कि जवाहरलाल मेरी ही भांति बैरिस्टरों के नेता बनें और कानून के पेशे ही से धन और यश अर्जित करें। यदि मैं ग़लती नहीं करता तो यह बात सत्य ही है कि सन् १९२९ तक पं० मोतीलाल जवाहरलाल की गरम राजनीति के पक्ष में न थे। जब लाहौर-कांग्रेस में पंडित जवाहरलाल नेहरू सभापति हो गये और देश के बाहर वे 'भारत के सभापति' कर के प्रसिद्ध हो गये, तभी पिता को हार्दिक प्रसन्नता हुई और पुत्र से उनका मतभेद दूर हो गया।

सन् १९१७ में मैं प्रयाग में श्री सी० वाई० चिंतामणि के पास लीडर-कार्यालय में पत्रकार-कला सीखने के हेतु गया। श्री तेजबहादुर सप्रू, डा० काटजू, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि विख्यात व्यक्तियों की भांति पंडित मोतीलाल नेहरू तथा जवाहरलाल भी लीडर-कार्यालय में अदालत के बाद आया करते थे तथा श्री चिंतामणि से ताजे समाचार पर बहस किया करते थे। कभी कभी संध्या के समय जवाहरलाल नेहरू अकेले भी आया करते थे। वह होम-रूल लीग के आन्दोलन का समय था तथा श्रीमती एनी बेसेंट तथा उनके साथी पकड़ लिए गये थे। देश में एक उत्तेजना सी फैली हुई थी। जवाहरलाल उस समय निश्चयात्मकरूप से गरम राजनीति की ओर क़दम बढ़ा रहे थे। वे होम-रूल लीग के मंत्रियों में से एक थे। श्रीमती बेसेन्ट आदि की गिरफ़्तारी के विरोध में प्रयाग में एक सार्वजनिक सभा होने वाली थी जिसके सभापतित्व के लिए पंडित मोतीलाल चुने गये थे। प्रयाग में उस समय एक नवयुवक जिलाधीश थे। उन्होंने मोतीलाल नेहरू को एक पत्र लिखकर चेतावनी दी कि सभा में गर्मागर्म भाषणों के होने की संभावना है। राजनीतिक वातावरण इस बात को लेकर बहुत क्रुद्ध था। पं० मोतीलाल नेहरू सदृश माननीय, प्रतिष्ठित तथा राजनीतिज्ञ को इस प्रकार का एक नौसिखिये नवयुवक द्वारा पत्र लिखे जाने को लोगों ने बहुत बड़ी गुस्ताखी की बात समझा। श्री चिंतामणि भी इस बात से बहुत ही विचलित हुए। पंडित मोतीलाल नेहरू ने लखनऊ-स्थित लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को स्थानीय जिलाधीश की इस कार्यवाही के विरोध में एक विशेष दूत द्वारा एक पत्र लिख कर भेजा। चिंतामणि ने मुझसे कहा था कि 'यह सभा अब कदाचित् ही होने दी जाय। कदाचित् अधिकारी इस पर रोक लगा देंगे'। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा 'किन्तु जो कुछ भी हो हमको यह सभा अवश्य करना चाहिए'। इस घटना से यह मालूम पड़ता है कि श्री चिंतामणि कितने दृढ़ विचार के व्यक्ति थे।

प्रयाग के लोगों की यह आम राय थी कि पुत्र ही पिता को उग्र राजनीति की ओर खींचे लिए जा रहा है।

सभा हुई, गरमागरम भाषण हुए और सरकार की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया। पंजाब के गवर्नर सर माइकेल ओडायर जो प्रथम श्रेणी का प्रतिक्रियावादी था पूरे आक्रमण के लिए तैयार था।

सभा में यह तय किया गया कि पास किये गये प्रस्ताव की प्रतियां सभी प्रांतीय सरकारों तथा इंगलैंड में भी भेजी जायँ; एक प्रति सर ओडायर को भी भेजना निश्चित किया गया। सर ओडायर को तार द्वारा प्रस्ताव भेजने की बात मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने दस रुपये का एक नोट श्री चिंतामणि को इस तार के भेजने का व्यय दे दिया। जवाहरलाल ही मंत्री थे। तारों को भेजना उनका ही काम था। बिना मुझे बताये ही श्री चिंतामणि ने वह रुपया जवाहरलाल को ही दे दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने दूसरे ही दिन मुझे एक पत्र भेज दिया। वे पत्र-व्यवहार में बड़े कुशल हैं। पत्र में उन्होंने मुझे इस दान के लिए धन्यवाद देते हुए लिखा कि यदि लोग आप की भाँति ही उदार हों तो कोई भी अच्छा काम रुक नहीं सकता। यह जवाहरलाल का मुझे पहिला पत्र था। उन दिनों में प्रायः लीडर-कार्यालय में उनसे मिलता रहता और भिन्न भिन्न विषयों पर उनसे बात करता रहता। एक या दो बार में उनके घर भी गया। उसके बाद में सैकड़ों बार उनसे मिला भिन्न भिन्न स्थानों पर और हमने परस्पर सैकड़ों पत्र एक दूसरे को लिखे। किन्तु पहिले की घटनायें अभी तक मेरे मस्तिष्क में ताजी सी हैं। ऊपर जो घटनायें मैंने बतलाई हैं, मुझे विश्वास है कि उससे जवाहरलाल के मानसिक विकास पर काफ़ी प्रकाश पड़ जाता है।

जवाहरलाल का बौद्धिक साहस प्रशंसा की वस्तु है। वे निर्भीकरूप से अपने मित्रों और सहयोगियों पर अपना मत प्रकट कर देते हैं। सन् १९२८ की कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने अपने पिता का भी विरोध किया। उनके शारीरिक साहस की तो प्रशंसा ही नहीं की जा सकती। वे बिना भय के ही अपने विरोधियों के बीच में कूद पड़ते हैं। उन्हें इन सब बातों से भय नहीं लगता। रायबरेली में चलती हुई गोलियों के बीच वे निर्भीक होकर खड़े रहे। लखनऊ में जो लाठी-चार्ज हुआ तो उन्होंने उसका मुक़ाबिला किया। वे पुलिस का पहरा होते हुए भी प्रयाग के संगम में स्नान के लिए कूद गये। स्पेन और चुकिंग में वे बम-वर्षा के बीच घूमते रहे; मैं जानता हूँ कि इस व्यक्ति में भय तो छू नहीं गया है। स्वयं मुझमें ये गुण नहीं हैं, अतएव मैं उनकी विशेषताओं की और भी प्रशंसा करता हूँ। हमारे देशवासियों में भी वस्तुतः इन बातों की कमी है; मैं अनुभव करता हूँ कि यदि हम में निर्भीकता आ जाय, जिसका उपदेश सदा बुद्ध और गांधी ने दिया है, तो वास्तव में हम बड़े बड़े कार्य कर सकते हैं।

जवाहरलाल नेहरू जो कुछ करते हैं उसके लिए प्रशंसा नहीं चाहते। यदि कोई उनकी प्रशंसा करता है तो उन्हें आश्चर्य-सा होता है। जब वे कोई बड़ा काम करते हैं तो वे इस प्रकार हँसते हैं जैसे उन्होंने जो कुछ भी किया है उसे वे भूल से गये हैं। दूसरों को आश्चर्य होता है किन्तु उन्हें नहीं।

दूसरी चीज जो मुझे नेहरू में आकर्षक मालूम होती है वह है उनका बच्चों का सा स्वभाव। वे कभी किसी बात से अधिक समय तक क्रुद्ध नहीं रहते। वे एकदम उत्तेजित हो उठते हैं और फ़ौरन शान्त हो जाते हैं। उनके स्वभाव में कटुता नहीं है। वे लगभग ६० वर्ष के हैं किन्तु अब भी एक बच्चे की भांति मालूम पड़ते हैं। वे स्वभाव से एक लड़के की तरह हैं। जब कोई उनसे बात करता है तो वह यह कभी अनुभव नहीं कर सकता कि वे संसार के एक बहुत बड़े व्यक्ति से बात कर रहा है। वे सबके साथ समान बर्ताव करते हैं। वे प्रदर्शन में आगे रहना पसंद नहीं करते। वे अपना काम स्वयं अपने हाथ से करना पसंद करते हैं।

'पहिचानिये अपने जवाहर को'

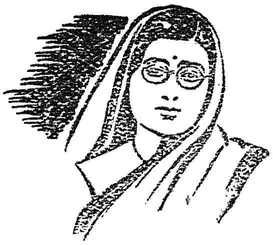

कमला भाभी

(पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')

क्या वेदना की भी कोई परिसीमा है? या वह यों ही निःसीम, उन्मुक्त और अनन्त है? रावण की लंका में चाहे सभी बावन गज के न रहे हों—पर, यहां, इसी युग में, इसी धरती माता के पूतों की बस्ती में हुतात्माओं की तालिका उठा कर जो देखी तो अपने बौनेपन का ज्ञान होगया। क्या खाकर कोई गर्व करे अपने त्याग और तपस्या पर? अरे भाई, हृदय में सह अनुभूति और आंखों में सपना भर कर देखो तो देखोगे कि यहां बड़े विकट आत्म यज्ञ करने वाले पड़े हुए हैं। अपनी खूँटियों को बहुत अधिक खींचने से बजाय सुर मिलने के तार टूट जाते हैं। इसलिए अपनी खूटी-अहंभावना की जड़ता बहुत अधिक न खिंचे तो अच्छा। यह क्या है, वह कौनसी लगन है, कौनसी चटपटी है जो जवाहरलाल को, यों बलिदान और आत्महुति के मार्ग पर चलने के लिए सदा प्राणोदित करती रहती है? मां बीमार, जीवन-संगिनी, जवाहरलाल ही के सुन्दर, सकरुण, कोमल, प्रेमल शब्दों में वह तन्वी, वीर स्त्री मृत्यु शय्या पर और खुद जेलखानो में। ऐन आखिरी मौके पर यह छोड़ा गया है। कितनी करुणाद्रावक परिस्थिति है यह? अनुमान करना कठिन है। कोई कैसे अनुमान कर सकता है? हृदय की कचोंटन को हम आप कैसे जान सकते हैं? जवाहरलाल की वेदना निःसीम है—

पर वह—प्यारा कप्तान जवाहर—अडिग, अचंचल, धीर, गंभीर और अच्युत है। आज ही—आज ता० ४ सितम्बर को—एक केबिलग्राम (समुद्री तार) आया है। श्रीमती कमला नेहरू की हालत बहुत ही नाज़ुक है—बहुत खराब है। जवाहरलाल मिलने के लिए यूरोप उड़ा जा रहा है। क्या मालूम मुलाक़ात होगी या नहीं? यह बिछुड़न हमारे जीवन आद्य कमला-जवाहर के लिए कहां अनन्तवती वियोग निशा न हो जाय! कमला भाभी मृत्यु शैय्या पर हैं। उनके प्राणों पर क्या बीत रही होगी? अपलक आंखें किसकी बाट जोह रही होंगी? जीवन के कौन से मधुर, मदिर, तन्द्रिल संयोग क्षण आज इस वियोग में तीखे दुःसह—नहीं असहनीय शूल बन कर हृदय में चुभ न रहे होंगे? वह आनन्द-भवन, वे प्रयाग की रात्रियां, वह अमाप, असीम प्यार, वह स्नेह, वह निछावर होने का भाव, वह संयोग, वह पारस्परिक परख—ये सब आज कमला भाभी के लिए स्मृति शूलों का रूप धर-धर आये हैं। अन्तिम सांसें गिनी जा रही हैं। ऐसे समय में अपना प्यारा, अपना पारखी, अपना जौहरी, अपना

जीवन-संगी सरहाने नहीं है। अपने दृढ़ कोमल कर पास से आज———नहीं छू पाता। आज चकवा चकई समुन्दर के इस पार और उस पार हैं और बीच में यह वियोग की रात अनन्त जल राशि बन कर बहती जा रही है। हा परवशते!

तो क्या वेदना की कोई सीमा नहीं है? कमला भाभी! तुम्हारी वेदना और तुम्हारे संगी की वेदना आज तो निःसीमा को चुनौती देती दीख पड़ रही है। हमारे प्रान्त के लिए, हमारे मुल्क के लिए, हमारे समाज के लिए, तुम क्या हो और क्या रही हो यह हमीं जानते हैं। तुमने हमारे प्रान्त को धीर आदर्श सेवा का जो वरदान दिया है वह तुम्हारे ही अनुरूप है। मोतीलाल नेहरू की पुत्र-बधू और जवाहरलाल की सहधर्मिणी हे देवि! तुम महान हो। त्याग में तुम्हारा समकक्ष तो हमें नजर नहीं आता। तुम वेदनामयी, सेवामयी, तप-मयी, कल्याण-मयी मूर्तिमयी सुघड़ता हो। हमारे सूबे को तुम पर नाज है। तुम जवाहरलाल की शक्ति हो। हमें याद है उन दिनों जब हमारे सूबे ने और मुल्क ने असहयोग का अनल अमल मंत्र सीखा था तब तुमने इस सूबे की महिलाओं में देश-भक्ति और त्याग की अनुकरणशीलता का भाव उत्पन्न किया था। तुम्हारे उदाहरण से इस सूबे का महिला-मंडल बहुत अंशों तक उत्प्राणित और प्राणोंदित हुआ है। हम लोगों का प्रणाम स्वीकार करो देवि!

जवाहरलाल तुम जाओ वायुयान पर, वायु वेग से जाओ। तुम्हारी श्री और लक्ष्मी, तुम्हारी धृति और शक्ति रोग शय्या पर पड़ी प्रति दिन तुम्हारी स्मृति में व्याकुल और अधीर हो रही है। तुम्हारा जीवन तो अँगारों की एक माला है। उसे फेरते जाओ; प्यारे कप्तान! और हम क्या कहें? वेदना तो तुम्हारी चिरसंगिनी हो ही गई है। या यों कहो कि वेदना को तो तुमने चिरसंगिनी बना ही लिया है। वह निस्सिम हो या ससीम, इससे तुम्हें क्या? तुम जानते हो, और खूब जानते हो कि सम स्थल में मुसकाते रहना ही जीवन है। स्मरण रक्खो तुम हमारी थाती हो, गरीबी की निधि हो, तुम पर हमें गर्व है। तुम हमारे दृढ़ प्रश्रय हो तुम हमारे प्राणोदक हो। तुमने हमें शक्ति और भक्ति, बल और साहस तथा धैर्य्य और स्पष्ट दर्शन का सामर्थ प्रदान किया है। तुम्हारी वीरता ने हमें बलवान बनाया है। वेदना की सीमा को तो तुम सदा तिरष्कृत करते रहे हो। 'सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः अनेन प्रसविरा वर्ध्यँ ऐषवोस्त्विष्ट काम धुक'। गीताकार का बचन सत्य है। प्रजापति ने प्रजा को सहयज्ञ—यज्ञ के सहित उत्पन्न किया है। अन्य के लिए अपना आत्म यज्ञ करना, सतत, प्रति मुहूर्ति, प्रति पल अपने को गैरों के लिए खपाना और इस तरह गैरों को अपना समझ लेना यही तो आत्म-यज्ञ है? और तुम इस आत्म-यज्ञ के अध्वयु हो। तुम होता हो। तुम्हीं इसके पुरोहित हो। इस आत्म-यज्ञ से तुम्हारे इस प्रदीप्त ज्वलंत बलिदान से, यहां की प्रजा कितनी प्रहवर्द्धित हुई, इसको आज कौन नाप सकता है? किन्तु व्यष्टि का बलिदान ही तो समष्टि के कल्याण के मार्ग को विस्तृत करता है। यह सिद्धांत सत्य है। निश्चय ही इस सिद्धांत के अन्तस्थल में करुणा का महासागर और मुख पर वज्र की कठोरता है। कितना वेदनामय है यह सब? जाओ प्यारे कप्तान, जाओ, हम ३५ करोड़ प्राणियों की सदिच्छाओं और स्नेह भावनाओं को लिए हुए पयान करो। तुम्हारी जीवन संगिनी शतंजीव्या हो, यही हमारी मौन करुण प्रार्थना है।

प्यारा जवाहर

2222
इलाहाबाद

अनुकरणीय सैनिक

श्री एच॰ एन॰ ब्रेल्सफोर्ड

जवाहरलाल नेहरू के प्रति अपनी श्रद्धा और स्नेह प्रकट करने का जो सुअवसर उनके अन्य मित्रों के साथ साथ मुझको मिला है उसे मैं अपना सम्मान समझता हूँ। मैं समझता हूँ कि आज किसी भी भारतीय की अपेक्षा पूर्व और पश्चिम का अंतर मिटाने में जवाहरलाल ने अधिक सफलता पाई है। आज से सोलह वर्ष पूर्व एक प्राचीन मुगल दुर्ग की अँधेरी कोठरी में, जहां वे बन्दी थे, मैं उनसे पहिली बार मिला था। हम दोनों ही समाजवादी के रूप में मिले थे; इसलिए हम दोनों में घनिष्टतापूर्वक बातें हुईं। उस दिन से कुछ विशेष अवसरों पर एक दूसरे के विरोधी होने पर भी, श्रद्धा और सहानुभूति के साथ स्वतंत्रता के विश्व-व्यापी युद्ध में मैंने उन्हें अपने युग का सदा एक महान सैनिक समझा। उनकी पुस्तकों को पढ़ कर मैंने सदा कुछ-न-कुछ सीखा है। उनकी विचार-धारा से मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है। भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध में उन्होंने अपनी मानसिक शक्तियों का जिस उदारता के साथ प्रयोग किया है उसने उनको न केवल राजनैतिक नेता बनाया है, वरन् एक भावुक कलाकार और ऐतिहासिक विचारक के रूप में भी परिणत कर दिया है। कुछ दिनों की बात है, अपनी पत्नी इवा-मेरिया के साथ मैं आनन्द-भवन में अतिथि के रूप में था। उस समय हम दोनों ने अनुभव किया कि भारत के स्वाधीनता-संग्राम की अंतिम परिस्थितियों का सामना वे किस धैर्य्य और मनुष्यत्व के साथ करते हैं।

अहिंसा के युद्ध ने उन भारतीय जनों के चरित्र में किस प्रकार का प्रभाव डाला है, जिन्होंने उसमें क्रियात्मक भाग लिया है। हम लोगों में जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते हैं, उनको वर्षों से समझा है। उन्होंने साधारण और असाधारण सभी प्रकार के लोगों में उस निस्वार्थ भावना, बलिदान की शक्ति और आकांक्षाओं के प्रति स्वतंत्रता उत्पन्न की है जो आज संसार में बहुत कम देखने को मिलती हैं। यदि आज के यूरोप में इसकी कोई तुलना हो सकती है तो उसकी खोज जारशाही और नाजीवाद के विरुद्ध होने वाले गुप्त आन्दोलनों में करनी पड़ेगी। किन्तु वे षड्यंत्रकारी संगठन थे, जिसमें उस धार्मिक और नैतिक बल का सर्वथा अभाव था, जिसको भारतीयोंने

गांधीजी की प्रेरणा से प्राप्त किया है। विश्वास की स्थिरता ही उसका गुण है। जिसके प्रति पश्चिम का विचारक संदिग्ध नेत्रों से देखने लगता है। साधारण अवस्था में यह विश्वास आन्तरिक ज्ञान पर निर्भर है। एक विचारक की हैसियत से नेहरू ने इसके लिए सुदृढ़, बौद्धिक नींव डाली है। मनुष्य जाति के विकास का एक भाग समझ कर यदि उसको ऐतिहासिक रूप में देखा जाय तो वह भीषण संग्राम जिसमें वे स्वयं सम्मिलित थे, एक अद्भुत कार्य था।

नेहरू के प्रति एक अंग्रेज का यह कथन असत्य होगा, यदि हमारे साम्राज्य द्वारा नेहरू को दिये गये कारागार के लम्बे वर्षों का उसमें कोई जिक्र न हो, क्योंकि इस दृश्य ने उन सब पर जो संसार के नागरिक के रूप में सोचते हैं, एक अमिट छाप डाली है। जिस साम्राज्य ने जीवन के सब से सुन्दर वर्षों में बंदी बना रखने के सिवा ऐसे व्यक्ति का और कोई उपयोग न समझा, वह केवल इसी बात पर निन्दा का पात्र है।

मौनरूप से उनका बलिदान फलीभूत भी हुआ। यदि भारत में अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने के लिए आज अधिकांश अंग्रेज तैयार हैं और कितने ही उसके लिए उत्सुक हैं तो धैर्यपूर्वक कष्ट सहन का ही यह परिणाम है। विशेष तौर से नेहरूजी का ही यह धैर्य है जिसने हमको इस प्रकार बदल दिया है। हमारी अनुदारता और स्वार्थ-परता के लिए इसने हमको लज्जित किया है। मेरे ख्याल से ऐसा इसलिए हुआ कि नेहरू की रचनाओं ने जो अपनी मातृभूमि के लाखों गरीबों के प्रति उनकी चिंता दृष्टिगत कराती है हमें भी उस चिन्ता में भाग लेना सिखा दिया। चरित्र का इस प्रकार इतिहास पर प्रभाव पड़ता है। एक निस्वार्थ व्यक्तित्व जब नेहरू के धरातल पर पहुँच जाता है, तो वह अपने प्रभाव को, अपने दल और अपने राष्ट्र से अधिक शक्तिशाली बना सकता है।

नेहरू को यह अभिनंदन उस समय मिल रहा है जब उनका जीवन एक मोड़ पर है। हमें आशा है कि उनके युद्ध और कष्टों के वर्ष अब समाप्त हो रहे हैं। अपने साहस और धैर्य का परिचय उन्होंने पर्याप्त मात्रा में दिया है। उनमें रचनात्मक शक्तियां भी उसी प्रकार हैं जिस प्रकार कि उनमें युद्ध कौशल। हमें आशा है कि भविष्य उनसे भलीभांति काम लेगा। उन्नति के विस्तृत कार्य की योजना का निर्माण उनके सिवा और कौन करेगा? दरिद्रता के गम्भीर गड्ढे में पड़े हुई भारतीय जनता के उद्धार का उनका यह कार्य उनके जीवन में ही सफल होगा। संघर्ष के दिनों में यदि उनकी कोई आकांक्षा—निस्वार्थ आकांक्षा थी तो वह यह थी। जो सैनिक अपनी जनता की स्वतंत्रता का पथ-प्रदर्शक होता है वह उसके भावी गृह का निर्माता भी बने, ऐसा बहुत कम संभव होता है। किन्तु जीवन का वह साधारण नियम अहिंसावादी सैनिक पर लागू नहीं होता। नेहरू का सारा जीवन विज्ञान के प्रति उनकी प्रारम्भिक लालसा, बाद में इतिहास की ओर उनका झुकाव, उनकी यात्रायें, विस्तृत भारतभूमि के प्रत्येक भाग से उनका परिचय, कारागार में उनका अध्ययन और उनके अनुशीलन ने उनकी प्रतीक्षा करने वाले रचनात्मक कार्य के लिए एक शिक्षा और सामिग्री का काम किया है।

घुड़सवार जवाहर

नेहरू के सिद्धांत

(उन्हीं के द्वारा)

सात वर्ष पूर्व एक अमेरिकन प्रकाशक ने मुझसे अपने जीवन के सिद्धांत पर एक लेख लिखने को कहा था। तब मुझे स्वयं अपने जीवन के सिद्धान्त या उसके दर्शन-शास्त्र का ज्ञान न था। मूल सिद्धांतों की अनभिज्ञता से मेरे कार्य में बाधा पड़ती थी यह बात न थी। जैसे एक बाण किसी बात का ध्यान न रखते हुए अपने लक्ष्य की ओर दौड़ता है वैसे ही परिस्थितियों के अनुसार अपने लक्ष्य के सामने मुझे कभी कुछ न सूझता था। किन्तु अब वह बात नहीं रही। संसार में सर्वत्र दुष्टता ही दुष्टता दिखलाई देती है इसलिये संदेह होने लगता है कि मनुष्य क्या स्वभावतः ही दुष्ट है? क्या बिना युगों तक कष्ट झेले हुए उसके लिये सुधार का कोई मार्ग ही नहीं है? साध्य और साधन में क्या संबंध है? यदि दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है तो दुष्ट साधनों से साध्य भी विकृति हो जाता है, किन्तु श्रेष्ठ साधन उसकी सामर्थ्य में नहीं है। ऐसी दशा में मनुष्य क्या करे? इन प्रश्नों से प्रेरित होकर मुझे जीवन के सिद्धांत पर विचार करना पड़ रहा है।

जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण वैज्ञानिक रहा है। जिस तरह हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई आदि धर्मों का पालन होता है उसे देख कर मुझे इनमें से किसी में भी श्रद्धा न रही। इन सब में मुझे अन्ध-विश्वास, दंभ, पाखंड तथा टोना-टोटर ही देख पड़ा। जीवन के प्रति इन धर्मों का दृष्टिकोण कदापि वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। पर साथ ही यह मानना पड़ेगा कि धर्म से मनुष्य-स्वभाव की कई भीतरी आवश्यकताओं की पूर्ति हुई है। आज भी संसार के अधिकांश लोग बिना किसी धर्म का सहारा लिए नहीं रह सकते। धर्म ने यदि कुछ लोगों को भला बनाया है तो दूसरों को संकीर्ण-हृदय, कठोर तथा अत्याचारी भी बनाया है। यह स्पष्ट है कि हमारे चारों ओर एक अदृश्य जगत है जिसमें अभी तक विज्ञान की पैठ नहीं हुई है। कोई भी विचारशील व्यक्ति इस अदृश्य जगत की आँखें नहीं मूँद सकता। जीवन का उद्देश्य क्या है, विज्ञान इसे नहीं बतलाता, पर साथ ही विज्ञान का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता जाता है और बहुत सम्भव है कि किसी दिन कसी अदृश्य जगत पर भी उसका आक्रमण हो जाय।

तब हम को व्यापकरूप से जीवन का उद्देश्य समझने में सहायता मिलेगी। धर्म का समावेश दर्शन में हो जाता है। आधुनिक मनुष्य बाह्य संसार में फंसा हुआ है परन्तु विपत्तियों का बोझ टूट पड़ने पर प्रायः उसका ध्यान दर्शन और आध्यात्मिकवाद की ओर जाता है। आध्यात्मिकवाद की ओर मेरा आकर्षण कभी नहीं हुआ, पर तब भी कभी कभी उसके तर्कों की ओर मेरा ध्यान जाता है। किन्तु अधिक समय तक मेरा मन उनमें नहीं लगता और उनसे भाग खड़े होने में ही चैन मिलती है। मेरी रुचि इस जगत तथा जीवन में है न कि किसी दूसरे जगत या भावी जीवन में। 'आत्मा जैसी कोई वस्तु है ? या मृत्यु के बाद भी कोई जीवन है' यह मैं नहीं जानता। जिन परिस्थितियों में मैं पला हूँ उनमें आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मफल आदि पर सहज ही में विश्वास कर लिया जाता है। मैं भी उनसे थोड़ा-बहुत प्रभावित हुआ हूँ और उनको मानने में कोई हानि भी नहीं समझता, पर उनमें से किसी को भी धार्मिक श्रद्धा मान कर मैं विश्वास नहीं कर पाया हूँ। मेरे जीवन पर इनका कोई प्रभाव नहीं है। बाद में वह चाहे ठीक हों या गलत मेरे लिए कोई अन्तर की बात न होगी। संसार पर एक दृष्टि डालने से उसकी अज्ञात गहराई में एक विचित्र रहस्य का अनुभव होता है। यह क्या है, इसको तो मैं नहीं बतला सकता पर मैं उसे कदापि ईश्वर नहीं कह सकता हूँ। क्योंकि आजकल जो ईश्वर का अर्थ है उस पर मुझे विश्वास नहीं। वह कोई देवता या दैवी शक्ति है यह मैं नहीं मानता। साकार ईश्वर की बात तो मुझे सर्वथा विचित्र जान पड़ती है। वेदांत के अद्वैतवाद की ओर कुछ मेरा झुकाव होता है। मैने उसका पूर्णरूप से अध्ययन नहीं किया, पर यह मैं अवश्य अनुभव करता हूँ कि केवल बौद्धिक कल्पनाओं से मनुष्य अधिक आगे नहीं बढ़ सकता। साथ ही वेदान्त या अन्य ऐसे सिद्धान्तों से जो अनन्तता में गोता लगाते हैं मुझे भय-सा लगता है।

प्रकृति की मित्रता और पूर्णता से मैं चकित-सा हो उठता हूँ और अन्ततः मेरे हृदय में भीतरी साम्य आता है।

पाकिस्तान और नेहरू

पाकिस्तान पर अपना दृढ़ मत प्रकट करते हुए लाहौर में पंडित नेहरू ने कहा था 'मैं भारत के विभाजन के विरुद्ध हूँ इसका कारण संयुक्त भारत के सम्बन्ध में कोई भावुकतापूर्ण पक्षपात नहीं है । प्रगतिशील आधुनिक विचारों के कारण मैं अखण्ड भारत का समर्थक हूँ । विभाजित भारत कमजोर राज होगा जैसे कि ईराक और ईरान हैं, जो पूर्ण स्वाधीन राज्य नहीं हैं और बड़े बड़े राष्ट्रों की दया पर आश्रित हैं । पाकिस्तान साम्प्रदायिक समस्या का हल नहीं है । दोनों ही में अल्पमत रहेगा । इसके अतिरिक्त देश का विभाजन धर्म के आधार पर नहीं हो सकता । लीग सिर्फ उन क्षेत्रों के विभाजन की मांग पेश कर सकती है जिन क्षेत्रों में मुसलिम बहुमत बहुत अधिक है । पर याद रखना चाहिये कि इसका अर्थ पंजाब और बंगाल का विभाजन है । जहां पंजाब और बंगाल में गैर-मुसलिम बहुमत है उसे आप पाकिस्तान के साथ चलने को मजबूर नहीं कर सकते । अगर मुसलमान विभाजन चाहते हैं तो कोई ताक़त उन्हें नहीं रोक सकती, लेकिन मैं यह समझाने की भरसक कोशिश करूँगा कि विभाजन से किसी का हित न होगा—मुसलमानों का भी नहीं ।

यह कहना कठिन है कि वर्तमान स्थिति में संसार कब तक रहेगा । आज यूरोप के देशों की स्थिति भारतीय रियासतों से भी गई बीती है । समय का तकाज़ा है कि पाकिस्तान की आवाज उठाने की अपेक्षा छोटे प्रदेशों को अपना सर्वनाश बचाने के लिए संघ में शामिल होना चाहिये । मेरा और कांग्रेस का विचार स्वतन्त्र भारत के साथ अन्य देशों का फेडरेशन स्थापित करने का है । अफ़सोस है कि देश के सार्वजनिक सम्प्रदायिक संगठन स्वतन्त्रता की मांग को शर्तों के आधीन करते हैं । इसका कारण आपस का भय और अविश्वास है । सिक्ख और मुसलमान बहादुर जातियां हैं उन्हें हिन्दुओं से डरने का कोई कारण नहीं है । कांग्रेस ने मुसलमानों को आत्म-निर्णय का अधिकार दिया है, लेकिन सवाल यह है कि पाकिस्तान हो कैसे ? मुसलमानों को इस पर ठण्डे दिल से विचार करना चाहिये । यह एक महान उलझनदार समस्या है । यही कारण है कि मुस्लिम लीग

ने अभी तक इसका खुलासा नहीं किया । अगर पाकिस्तान दिया गया तो पंजाब और बंगाल के जिन क्षेत्रों में हिन्दुओं का बाहुल्य है वे हिन्दुस्तान में शामिल होंगे । मैं कल्पना नहीं कर सकता कि कोई समझदार पंजाबी व बंगाली पंजाब या बंगाल के दो टुकड़े किये जाना पसन्द करेगा जब कि पंजाब और बंगाल प्रान्त की संस्कृति और भाषा एक हो।

अगर पंजाब दो भागों में बांटा गया तो हिन्दू-सिक्ख प्रधान समृद्ध भाग हिन्दुस्तान में मिल जायगा और पंजाबी पाकिस्तान की आर्थिक स्थिति दृढ़ नहीं होगी ।

इन समस्याओं का समाधान कांग्रेस, ब्रिटिश सरकार या अन्य किसी के द्वारा नहीं बल्कि संसार की स्थिति के अनुसार अपने आप होगा । मुझे यक़ीन है कि भारत का विभाजन भी हुआ तो वह अस्थायी होगा ।

भारत ही नहीं सारा संसार संकट काल से गुज़र रहा है । सिर्फ भारत के सामने महत्वपूर्ण समस्या नहीं है, बल्कि अन्य देशों में भी ऐसी ही समस्यायें मौजूद हैं । तेज़ी से बदलने वाली दुनियां में इन संस्थाओं के कारण हम को निरुत्साहित नहीं होना चाहिये । शक्तिपूर्वक इन संस्थाओं के समाधान के लिए तैयार रहना चाहिये । जब कि भारत आज़ादी की ओर बढ़ रहा है, ऐसी समस्यायें सामने आवेंगी ही ।

कांग्रेस की यह दृढ़ सम्मति है कि भारत एक देश रहे । आने वाली दुनियां में छोटे राष्ट्रों का भाग्य शून्य है । बड़े बड़े राष्ट्र आज संघ और राष्ट्र संघ बनाने की सोच रहे हैं, ऐसी अवस्था में अगर भारत का विभाजन होगा तो उसका खात्मा हो जायगा । भारत प्राचीन काल में एक महान देश था, उसने एशिया के अन्य देशों पर शासन किया था और उसकी सभ्यता और संस्कृति का विस्तार बहुत दूर तक हुआ था लेकिन आज भारत की यह हालत क्यों है ? आज भारत गुलाम क्यों है ? इसके कारण हैं, हमारी कल्पना की कमज़ोरी, धर्म का महान दुरुपयोग । अफसोस है जब संसार में क्रान्ति हो रही है, भारतीय पुरानी बातों में चिपके हुए हैं। अविश्वास, भेद-भाव और साम्प्रदायिक वैमनस्य भारत में फैला हुआ है ।

एटम बमों ने 'जापान के दो शहरों के पांच लाख मनुष्यों का संहार कर डाला और जापान को आत्म-समर्पण करना पड़ा, लेकिन युद्ध में विजयी होने पर भी ब्रिटेन आज दूसरी कोटि की शक्ति होगया है । रूस और अमेरिका प्रथम श्रेणी की शक्तियां हैं । संसार में क्रांतियां हो रही हैं, लेकिन भारतीय अभी भी झगड़ रहे हैं, सिर्फ सरकारी पदों के लिए ही नहीं बल्कि राजनीतिक दलों में अधिकार पाने के लिए ।

अगर सीमाप्रान्त, पंजाब और बंगाल स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार चाहें तो कांग्रेस उसे स्वीकार करेगी; लेकिन बंगाल और पंजाब के हिन्दू, मुसलमान, सिक्खों को प्रान्त के विभाजन की मांग करने के पहिले अच्छी तरह सब बातें सोच लेना चाहिये । उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि उनका धर्म भिन्न है फिर भी उनकी सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा एक है '। असली सवाल भोजन और वस्त्र का है और यह सवाल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही हल हो सकता है ।

क्या यह जवाहर लाल हैं ?
(माता स्वरूपरानी के साथ)

आत्म-निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस का रुख बिलकुल साफ़ है, वह चाहती है भारत एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में रहे, फिर भी वह अपने प्रान्तों को अपने शासन में काफी स्वाधीनता देती है, फिर भी किसी यूनिट की जनता यदि राष्ट्रीय इकाई में न रहना चाहे तो कांग्रेस उसे शामिल रहने के लिए विवश नहीं करती। दो राष्ट्रों के सिद्धान्त-पर भी जरा और गौर कीजिये। उसका आधार धर्म माना गया है। आज की दुनियां में यह आधार मेरी समझ में नहीं आता'।

भ्रमात्मक बातों का खंडन

'मेरे और पिता जी के सम्बंध में एक बहुत प्रचलित कहावत यह है कि हम लोग प्रति सप्ताह अपने कपड़े पेरिस की किसी लांड्री में धुलने को भेजते थे। हमने कई बार इसका खंडन किया, फिर भी यह बात प्रचलित ही है। इससे अधिक विचित्र और वाहियात बात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। अगर कोई इतना मूर्ख हो कि वह ऐसे झूठे बड़प्पन के लिए इस तरह का अपव्यय करे तो मैं समझता हूँ कि वह अव्वल दर्जे का मूर्ख समझा जायगा।

इसी प्रकार की एक और दन्त-कथा प्रचलित है; वह यह कि मैं प्रिंस आफ़ वेल्स के साथ स्कूल में पढ़ता था। कहा जाता है कि जब १६२१ में वे हिन्दुस्तान आये तब उन्होंने मुझे बुलाया था पर उस वक्त मैं जेल में था। सच बात तो यह है कि मैं न तो स्कूल में ही उनके साथ पढ़ा हूँ और न मुझे उनसे मिलने या बात करने का मौक़ा ही आया है'।

—जवाहरलाल नेहरू

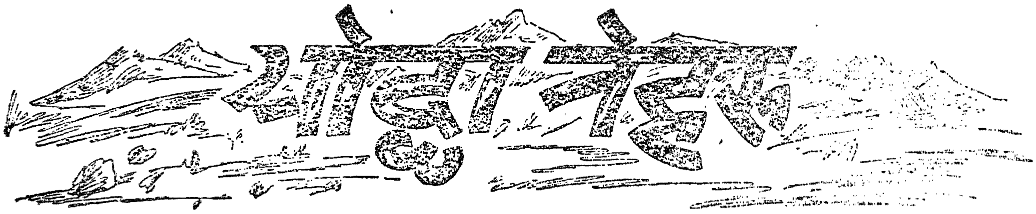

योद्धा नेहरू

श्री के० एम० मुंशी

आधुनिक पीढ़ी में जवाहरलाल नेहरू उन व्यक्तियों में से हैं जिनकी ओर अनिवार्यरूप से व्यक्ति आकर्षित हो जाता है। उनका व्यक्तित्व एक जीवित ज्योति की तरह है। यही कारण है कि इस देश के नवयुवकों के वे इतने प्रिय हो गये हैं।

मैं उन्हें 'होम-रूल' के समय से जानता हूँ। उस समय वे सुन्दर वस्त्र पहिने थे और उनके सुन्दर मुखड़े पर एक असाधारण मुसकान-सी खेलती रहती थी। फिर कुछ वर्षों बाद मेरी भेंट उनसे तब हुई जब वे कांग्रेस हाईकमांड में थे। पिता के जीवन काल ही में, उनके महान देश-प्रेम, स्वातंत्र्य-प्रेम तथा साहस ने उन्हें गांधीजी का प्रिय पात्र बना दिया था। गांधीजी, जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि झुकना न जानते थे, पंडित नेहरू के संपर्क से बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि वे आदर्श और त्याग को सभी वस्तुओं से ऊँचा समझते रहे हैं।

प्रथम साक्षात्कार में जवाहरलाल कुछ जल्दबाज़ से मालूम पड़ते हैं। अपने लड़कपन में वे वास्तव में इसी प्रकार के थे भी। अब तो उन में कुछ ऐसा स्वाभाव मात्र-सा रह गया है। किसी बड़ी सार्वजनिक सभा में, यदि किसी कोने में हल्ला मच रहा हो, तो यह निश्चय है कि जवाहरलाल रंगमंच से कूद कर वहां जा पहुँचेंगे और वहां के लोगों के साथ कड़ा व्यवहार करेंगे। वे अनियंत्रण को किंचित मात्र भी बरदाश्त नहीं कर सकते। कभी कभी तो वे इतने अधिक क्रुद्ध होकर दौड़ पड़ेंगे कि कोई उन्हें रोक भी न सकेगा। किन्तु यह केवल स्वभाव की बात है। मैंने देखा है कि क्षण भर बाद ही या तो वे एक आकर्षक मुसकान में दिखलाई पड़ेंगे या खुल्लम खुल्ला अपनी धृष्टता की क्षमा मांगते हुए।

जवाहरलाल बड़े ही आकर्षक और प्रिय हैं। उनकी इस विशेषता का कारण उनकी स्पष्टवादिता तथा

यज्ञोपवीत के समय पंडित नेहरू

ईमानदारी है। उनके मस्तिष्क में कोई बात छिपी नहीं रहती। उनके निज के सिद्धांत हैं जिनसे वे पीछे नहीं हटते। सिद्धांतों के अतिरिक्त उनकी कुछ ऐसी व्यक्तिगत बातें हैं जिन्हें वे नहीं छोड़ सकते।

इंगलैंड में अंग्रेजी सभ्यता के अनुसार बहुत दिन तक रहने के कारण वे भारतीय आदर्श को जरा देर में पसंद कर पाते हैं, फिर भी वे अपने देश और उसके निवासियों को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं।

वे सभी प्रकार के साम्राज्यवाद के विरोधी हैं। वे मानव स्वतंत्रता के हामी हैं। स्पेन के प्रजातंत्रवाद के समर्थक हैं। जापान के विरुद्ध युगों से युद्ध करने वाले चांग-काई-शेक के साथ उनकी हार्दिक सहानुभूति है। वे रूस की शासन-पद्धति के प्रशंसक हैं हाँलाकि उन्हें कम्यूनिज़्म पसंद नहीं है। वे ब्रिटिश-साम्राज्य से किसी प्रकार का समझौता करने के विरुद्ध हैं। भविष्य में वे करेंगे कोई नहीं जानता। इसमें संदेह नहीं कि जब तक कोई आशा से परे परिवर्तन देश में न हो जाय वे भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध में नेतृत्व करते रहेंगे।

कलाकार नेहरू

प्रो० हुमायूं कबीर

जवाहरलाल नेहरू में काल्पनिक भावुकता का एक गुण है जो सहज ही किसी को अपनी ओर आकर्षित करता है। उनका यह गुण राजनीतिक वातावरण में भी काम करता है; मुझे याद है कि सन् १९३३—३४ में मैंने अपने कुछ मित्रों से कहा था कि भारत ने एक महान कवि और कलाकार के स्थान पर नेहरू के रूप में एक राजनीतिक नेता प्राप्त किया है। समय समय पर उनके दिये हुए वक्तव्य भी कला के प्रति उनके प्रेम का परिचय देते हैं। १९३५ ई० में प्रकाशित उनकी 'आत्म-कथा' के द्वारा इस कथन के सत्य की पुष्टि होती है।

आज भी नेहरू का कलाकार जीवन ही हमको अपनी ओर आकर्षित करता है। लोकोक्ति के अनुसार कलाकार लज्जालु और आत्म-मर्य्यादित होते हैं। मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार अपने विचारों और भावनाओं को संसार के सामने रखना पसंद करते हैं। क्या नेहरू के कुछ शब्द और कार्य एक कलाकार की इस स्वाभाविक विशेषता का परिचय नहीं देते।

कलाकार राजनीति की ओर क्रोध के आवेश में ही आकर्षित होते हैं अथवा समवेदना के कारण। अन्याय के विरुद्ध उत्पन्न होने वाला इस प्रकार का कोप एक साधारण व्यक्ति में समय के परिवर्तन के साथ-साथ तिरोहित हो जाता है। किन्तु कलाकार में उसके द्वारा वह गंभीरता उत्पन्न होती है जो कल्पना के संसार में फिर उसे विश्राम नहीं लेने देती। कष्टों के साथ सहानुभूति का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कभी कभी कल्पनाओं का मन के ऊपर इतना दबाव पड़ता है जिससे उसे अपने व्यक्तित्व की परिधि के भी बाहर आ जाना पड़ता है। उस समय वह अपनी दरिद्रता और निर्बलता की परवाह नहीं करता और युद्ध के मोर्चे पर जाकर उपस्थित होता है। इस प्रकार उसके संघर्षों में कल्पना बाहुल्य का एक गुण होता है जो शीघ्र ही उसे कर्मवीर तथा ख्याति-संपन्न बनाता है।

कष्ट और पीड़ा के प्रति एक कलाकार की सी भावुकता लेकर नेहरू मानव जीवन की उन कठिनाइयों की ओर अग्रसर होते हैं जिनके सामने साधारण व्यक्ति पराजित हो जाता है। संसार में सर्वत्र और विशेष कर भारतवर्ष में साधारण अवस्था के लोग अपनी विपदाओं में ही दबे रहते हैं। दूसरों की यंत्रणाओं में सहायता

करने के लिए उनके पास न तो अवकाश ही होता है और न पुरुषार्थ ही। अधिक से अधिक वह उन स्त्री-पुरुषों के कष्टों के प्रति जिनको उन्होंने कभी देखा भी नहीं, शिष्टाचार के रूप में सहानुभूति का अनुभव कर सकते हैं। परन्तु एक कलाकार के जीवन में ऐसा नहीं होता। दूसरों की कठिनाइयों की कल्पनायें उनके हृदय में उतनी ही तीव्र और अनुभूतिपूर्ण होती हैं जितनी कि उसके जीवन की। जापानी अधिकार में आये हुए क्षेत्रों या फासिस्ट स्पेन में पुरुषों और स्त्रियों के यातनापूर्ण जीवन के प्रति नेहरू का सम्पर्क केवल उन्हीं को आश्चर्य में डालता है जो इस सत्य को अनुभव नहीं करते। यातनाओं के प्रति एक कलाकार की भावुकता को वे अत्याचार के विरुद्ध कोप में मिश्रित करते हैं। यहां पर उसकी परिस्थिति व्यवहारिक होने के स्थान पर काल्पनिक अधिक होती है। उनके जलते हुए शब्द दुखी प्राणों में सुख और संतोष का संचार करते हैं। निराश हृदयों में उनकी आवाज अंधकार को पार करती हुई आशा की किरणों का प्रादुर्भाव करती है। विपद्ग्रस्त मानवता से आविर्भूत यह एक कला है, जिसने संपूर्ण विश्व में नेहरू को सम्मानपूर्ण बनाया है।

शब्दों अथवा कार्यों के रूप में नेहरू की प्रतिक्रियात्मक तीक्ष्णता की सदा आलोचनायें और कभी कभी विरुद्ध आलोचनायें हुई हैं। कुछ लोग उन्हें क्रोधी और कुछ अहंकारी समझ लेते हैं। वास्तव में वे न क्रोधी हैं और न अहंकारी। वरन् उनका यह स्वभाव एक कलाकार के जीवन को चरितार्थ करता है; कलाकार के जीवन में उनकी अनुभूति का एक साथ अंतरंग और बहिरंग प्रभाव पड़ता है। विचार में आना ही कार्यान्वित होना है। साधारण समझ के आदमियों को प्रतिक्रियात्मक उतावली उद्विग्न बनाती है और कभी कभी उनमें झुंझलाहट पैदा कर देती है। इसके साथ साथ कलाकार का जीवन दुस्साध्य होता है। उसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का अनुमान किया जाना संभव होता है। परन्तु इन बातों के प्रति वह कभी सोचता भी नहीं और अपने अनुभव की विचित्रता के सुख को ही अपना संतोष समझता है।

यहां पर यह आवश्यक नहीं है कि मानव-जीवन और प्रकृति के सौंदर्य के प्रति नेहरू के प्रेम की विवेचना की जाय। पर्वतों के दृश्य उनको अपनी ओर आकर्षित करते हैं, सूर्यास्त का चमत्कार उनकी स्मृति का प्रिय दर्शन है। शब्दों और कार्यों का सौंदर्य उनके जीवन को अधिक मूल्यवान बनाता है। नेहरू के जीवन में एक ओर इस प्रकार की अनुभूतियों का विवेक है और दूसरी ओर संसार की पीड़ा, यंत्रणा और उसका अन्याय है, जिसका मूलोच्छेद करने के लिए उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा किया है।

एक कलाकार के रूप में उनके रुचि-वैचित्र्य का यह प्रमाण है कि लगातार बीस वर्षों के अधिक काल के राजनीतिक जीवन में भी उनकी सुन्दर भावनाओं में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया। जन-श्रुति के अनुसार राजनीतिज्ञ मोटी त्वचा के व्यक्ति होते हैं। उनको आलोचनायें सहनी पड़ती हैं और प्रायः उत्तर एवं प्रत्युत्तर दिये बिना ही। नेहरू को हम इस रूप में नहीं देखते। उनके जीवन में राजनीति पर कला की विजय होती है। उनकी महानता का यही कारण है। भारत के प्रायः समस्त राजनीतिज्ञों में इसीलिए वे सब से अधिक प्रिय हैं।

नेहरू-परिवार
की
कुछ मनोरंजक घटनायें

(१)

आनन्द-भवन के बाहर कुछ कोठरियां थीं, जिनमें लकड़ी, कोयला तथा अन्य प्रकार का सामान भरा रहता था। इन्हीं कोठरियों में एक काला नाग रहता था। यह सारे आनन्द-भवन में घूमा करता था, किन्तु किसी से बोलता न था। लोगों को भी उससे किसी प्रकार का भय न था। जिस दिन से वह नाग इस घर में आया नेहरू-परिवार की क्रमशः उन्नति ही होती गई। नेहरू-परिवार के लोग इस नाग को शुभ समझ कर उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचाते थे। घर के नौकर-चाकर तक इस विश्वास के संबंध में जानते थे।

सन् १९२१ की बात है। नेहरू-परिवार अपने को उस बड़े त्याग और बलिदान के लिए तैयार हो रहा था, जिसने उसे विश्व के इतिहास में सदैव के लिए अमर कर दिया। इसी समय इस परिवार में एक नया नौकर आया जो इस नाग के विषय में कुछ न जानता था। उसने नाग को देखा और डर गया। बाद में लाठियों की सहायता से उसने उस नाग को घेर कर मरवा डाला।

जब नेहरू-परिवार को यह मालूम हुआ तो सभी के दिलों पर एक प्रकार की उदासी सी छा गई। लोगों ने अनुमान किया कि इस घर पर अब कोई विपत्ति आया चाहती है।

थोड़े ही दिनों बाद पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में गिरफ़्तार कर लिये गये और उसी वर्ष से आनंद-भवन से आनंद ग़ायब होने लगा।

(२)

पंडित नेहरू बड़े विनोदी हैं; जो लोग उन्हें क्रोधी समझते हैं वे उनका वास्तविक रूप नहीं जानते। वे प्रत्येक बात को सही रास्ते पर देखने के आदी हैं। साधारण सी बात को भी ग़लत देख कर वे झुँझला पड़ते हैं, यही उनका ग़ुस्सा है। 'बे वक़्त की शहनाई' देख कर उन्हें क्रोध आ जाता है। वे अन्य लोगों की भांति बनावटीपन

बालक जवाहर और शिशु कृष्णा

से घृणा करते हैं। वे अपने मनोभावों को छिपा नहीं सकते और अनावश्यक सभ्यता के वातावरण से वे उन्हें ढक नहीं सकते। हम एक गलत बात को सुनते हैं अथवा देखते हैं तो मन तो हमारा क्षुब्ध हो उठता है किन्तु हम उसे दबा कर मुस्कुराहट से बात करते हैं। पंडित नेहरू ऐसे नहीं हैं।

उनकी झुँझलाहट और क्रोध भी अस्थायी होता है। क्रोध करने के क्षण भर बाद ही वे मोम की तरह पिघल पड़ते हैं, द्रवित हो जाते हैं तथा उनके चेहरे पर मुसकान खेल उठती है; वे हृदय से इस बात को अनुभव कर उठते हैं कि अमुक व्यक्ति पर उनके इस क्रोध का प्रभाव तो नहीं पड़ा। वे फौरन अपना रुख बदल लेते हैं। कभी तो वे यह सोच कर झुंझला उठते हैं कि जिस बात को साधारणरूप से वे समझ लेते हैं दूसरा क्यों नहीं समझ लेता।

हरिपुरा-कांग्रेस में वे युक्त-प्रान्त के डेलीगेट कैम्प में अन्य डेलीगेटों से किसी विषय पर बहस कर रहे थे; उनकी किसी एक विशेष बात का उनके बहनोई स्व० रणजीत पंडित बार बार विरोध कर रहे थे। उनके लगातार विरोध से पंडित नेहरू झुँझला उठे। किन्तु उनकी इस बात का रणजीत पंडित पर कोई प्रभाव न पड़ा। इधर पंडित नेहरू ने भी अनुभव किया कि उनका झुंझलाना असंगत, असामयिक तथा अनावश्यक था। वे झट जोर से हँस दिये और बिगड़ती हुई स्थिति को संभाल लिया। तेजी पर आये हुए श्री रणजीत पंडित भी हँस कर नरम पड़ गये।

बिरले ही उनका स्वभाव जानते हैं।

(३)

कृष्णा नेहरू का जन्म उस समय हुआ था जब पंडित नेहरू यूरोप में थे। बहिन होने की सूचना उन्हें वहीं मिली थी।

कृष्णा नेहरू ने अपने प्रारंभिक जीवन में भाई को न देखा था। जब वे पांच वर्ष की थीं उस समय उन्होंने प्रथम बार अपने बड़े भाई पं० जवाहरलाल नेहरू को देखा था, यह बात सन् १९१२ की है।

कृष्णा नेहरू ने लिखा है कि 'मेरे जीवन में सबसे पहिली बड़ी घटना सन् १९१२ में मेरे भाई का विलायत से वपिस आना था। मैं उनसे बिलकुल अपरिचित थी और यद्यपि उनके घर आने की खबर से मुझे कोई खास ख़ुशी नहीं हुई फिर भी मैं उन्हें देखने को उत्सुक थी। माता जी अपनी ख़ुशी छिपा न सकती थीं और काम में बेहद मगन थीं। ———मुझे कभी कभी इस विचार से खासी उलझन होती थी की मेरी माता अपने बेटे के लिए इतनी प्रेम-विह्वल हैं। मेरी बहिन भी घर भर में फुदकती फिरती थी; ऐसा मालूम होता था कि उन्हें भी भाई का बड़ा इंतिजार है। यह चीज़ मेरे लिए और भी परेशान करने वाली थी। मैंने निश्चय किया कि मैं जवाहर को जरा भी न चाहूँगी।

आखिर वह शुभ दिन आ ही गया और घर भर में दबी हुई उत्तेजना का जो वायुमंडल था उसने मुझ पर भी असर डाला। पर मुझ पर जो असर हुआ वह सिर्फ यह था कि मेरी उत्सुकता और बढ़ी। जब मैंने देखा कि एक सुन्दर नौजवान, जिसकी शक्ल माता जी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, घोड़े पर बैठ कर हमारी तरफ़ आ रहा है, तो मेरा दिल कुछ बैठ-सा गया। मैं कुछ दूर खड़ी हुई थी और मन में यह सोच रही थी कि अपने इस नये भाई को, जो अचानक हम में आगया था, चाहूँ या न चाहूँ। इधर मेरे मन में बहुत से विचार आ रहे थे———उधर जवाहर ने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और उनके ये शब्द मेरे कानों में पड़े 'अच्छा, तो ये हैं छोटी बहिन! अब तो ये काफ़ी बड़ी हो गई हैं'"।

शक्तिशाली नेहरू

श्री फ्रांसेस गन्थर

पूर्णत्व को प्राप्त तथा भावुक जवाहरलाल नेहरू निश्चय ही संसार के सब से अधिक शक्तिशाली व्यक्तियों में से हैं। उनके इशारे पर ही ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति ३५ करोड़ व्यक्तियों का रुख निर्भर है। उनमें बहुत सी विशेषतायें हैं। वे एक भारतीय क्रांतिकारी हैं जिसकी शिक्षा हैरो और केम्ब्रिज में हुई है। वे एक संभ्रांत काश्मीरी ब्राह्मण परिवार के हैं। यदि वे अमेरिका में होते तो हम उन्हें लावेल्स या रूजवेल्ट के परिवार का समझते। वे सात बार जेल गये हैं। वे विशिष्ट एवं गम्भीर स्वभाव वाले उन व्यक्तियों में से हैं जो समाजवाद पर अटल विश्वास रखते हैं। भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलनों के जनक श्रद्धेय महात्मा गांधी के वे निश्चयात्मकरूप से उत्तराधिकारी हैं।

विश्व-क्रांति में वे 'नेहरू का भारत' या 'भारत के नेहरू' के प्रभावशाली नाम से संबंधित हैं।

ब्रिटेन और फ्रांस का द्वितीय महायुद्ध में यह दावा था कि वे संसार भर के प्रजातन्त्रात्मक देशों की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं। ब्रिटेन जिस प्रजा-तंत्र के लिए यूरोप में लड़ रहा था उसी को ३५ करोड़ स्वतंत्र होने की इच्छा रखने वाले, भारतीयों को देने से वह इंकार करता रहा है। भारत में पंडित नेहरू ही राष्ट्र के प्राण हैं। जब तक हम भारत के संबंध में अच्छी-खासी जानकारी न प्राप्त कर लें, तब तक पंडित नेहरू को समझना बहुत ही कठिन है।

पंडित नेहरू पूर्णरूपेण आधुनिक काल का मस्तिष्क रखते हैं। वे २० वीं शताब्दी के विचारों से ओत प्रोत हैं। उनका प्रमुख कार्य भारत की पिछड़ी जातियों का कष्ट निवारण करना है। वे भारतीयों को अंध-विश्वास से हटा कर संसार के अन्य ऊँचे उठे हुए राष्ट्र-निवासियों के स्तर पर लाना चाहते हैं। वे केवल ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध ही नहीं लड़ रहे हैं वरन् भारत में प्रचलित रूढ़िवाद को भी समूल नष्ट कर देना चाहते हैं। वे संकुचित भावनाओं वाले सुधारक नहीं हैं, जब वे इंगलैंड आये तो वे कैण्टरबरी के बड़े पादरी से भी मिले। कैण्टरबरी के पादरी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा 'इतना प्रसन्न-मन और प्रसन्न करने वाला व्यक्ति! यह कौन कल्पना कर सकता है कि यह यूरोप को एक दिन हिला देगा!'

जैसा कि अमेरिका के लोग समझते हैं इंडियन नेशनल कांग्रेस केवल एक राजनैतिक दल ही नहीं है। वह ब्रिटेन के चंगुल से भारतीयों को मुक्ति-दिलाने वाली जन-साधारण की अपनी संस्था है। ये लोग औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं, किन्तु पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं। पंडित नेहरू इसके पथ-प्रदर्शक हैं।

पंडित नेहरू के पिता पं० मोतीलाल नेहरू का व्यक्तित्व महान था और वे भारत के एक प्रमुख वकील थे।

पं० जवाहरलाल यद्यपि समाजवादी हैं किन्तु वे कम्यूनिष्ट नहीं हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'मैं कम्यूनिष्ट नहीं हूँ। कम्यूनिष्ट लोग उसे एक पवित्र सिद्धांत बतलाते हैं, इसीलिए मैं कम्यूनिष्ट विचारों का विरोध करता हूँ। मुझे यह बात पसंद नहीं है कि कोई मुझे बतलाये कि इस प्रकार विचार करो और कार्य करो। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि कम्यूनिष्ट तरीकों में हिंसा का समिश्रण है'।

लोग उन्हें भारत का हृदय-सम्राट कहते हैं। वे एक सफल संगठनकर्ता और शासक हैं। वे अपने सिद्धांतों पर अटल रहते हैं।

उनकी यात्रायें अद्भुत हैं। सन् १९३६-३७ में उन्होंने २२ महीनों के अन्दर १,१०,००० मील की यात्रा की तथा एक दिन में कई भाषण दिये। एक बार उन्होंने एक सप्ताह में १५० भाषण दिये।

उन्हें अँग्रेजी कविता से बड़ा प्रेम है। अपने लेखों में वे प्रायः कविताओं के अवतरण देते रहते हैं। कविता के अतिरिक्त उन्हें अन्य वस्तुओं से भी बड़ा प्रेम है जैसे पहाड़, ग्लेशियर, बच्चे, बहता हुआ पानी तथा भिन्न प्रकार के जानवर। उन्हें शोषण, क्रूरता और उन लोगों से घृणा है जो ईश्वर और सत्य की दुहाई देकर जनता के हित के नाम पर अपना व्यक्तिगत भला करते रहते हैं। उन्हें ब्रिटेन के प्रति व्यक्तिगतरूप से घृणा नहीं है। वे समय मिलने पर सीधे इंगलैंड जाते हैं और बहुत से अँग्रेज उनके अभिन्न मित्र हैं।

पं० नेहरू जेनरालिजमों चांग-काई-शेक के बड़े मित्र हैं। सन् १९३९ में पंडित नेहरू चीन गये—उस समय जब कि वहां भीषण बम-वर्षा हो रही थी।

पंडित नेहरू ने २३ वर्ष की अवस्था से ही भारतीय राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। वे गांधीजी से मिले, उन पर अमृतसर की उस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा जिसमें जेनरेल डायर ने अपनी गोलियों से सैकड़ों भारतीयों को मौत के घाट उतार दिया था। इस अमानुषिक घटना को भारत और इंगलैंड दोनों ही देशों ने नापसंद किया।

सन् १९४२ में—

नेहरूने कब क्या कहा?

३ जनवरी, १९४२—बम्बई में एक विराट सभा में बोलते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि हमको हिटलर से कोई सहानुभूति नहीं है। हम बिलकुल विश्वास नहीं करते कि वह हमको स्वतंत्रता दिला सकेगा। हम जानते हैं कि हमारी स्वतंत्रता ब्रिटेन अथवा हिटलर की दी हुई कोई भेंट नहीं हो सकती।

५ जनवरी, १९४२—'डेली हेराल्ड' को अपना एक वक्तव्य देते हुए पंडित नेहरू ने कहा कि 'पिछले दो सालों से भारत तथा अन्य देशों में घटनाओं और परिस्थितियों ने लोगों के दिमागों को बहुत तीव्रता से परिवर्तित कर दिया और हम में से कोई यदि चाहे भी तो भी इस कठोर सत्य से इंकार नहीं कर सकता'।

१५ जनवरी, १९४२—गांधीजी ने वर्धा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की होने वाली बैठक में कहा था कि उनके उत्तराधिकारी न तो श्री राजगोपालाचारी होंगे और न सरदार पटेल वरन् होंगे पंडित नेहरू। उन्होंने आगे कहा 'मेरे साथ उनके राजनीतिक मतभेद हैं, परन्तु हम में कोई अलगाव नहीं है। कांग्रेस में कोई अलगाव नहीं है। हम लोग एक परिवार की भांति रहते हैं और काम करते हैं।

१६ जनवरी, १९४२—अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में पंडित जी ने कोरे नारों और प्रमुख शब्दों के पीछे भागने वालों की तीव्र आलोचना की। उन्होंने कहा कि कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट और गांधीवादी सभी इस बुरी आदत के शिकार हैं। समाजवाद या कम्यूनिज़्म का यह अर्थ नहीं है कि पश्चिमीय देशों में आजमाई हुई-अव्यक्त कल्पनाओं को भारत की परिस्थितियों पर बिना ध्यान दिये ही कार्यरूप में लाया जाय।

२६ जनवरी, १९४२—शिया-कांफ्रेंस में बोलते हुए पंडित नेहरू ने हजरत इमाम हुसेन के साहस और त्याग के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उन्होंने आगे कहा कि परिवर्तन के इस विप्लवकारी युग में प्रत्येक व्यक्ति,

प्रत्येक समुदाय और प्रत्येक राष्ट्र को अपने साहस और बलिदान की शक्ति पैदा करनी होगी। इमाम हुसेन के त्यागपूर्ण बलिदान से लोग सबक सीखेंगे ऐसा उन्हें विश्वास है। आज़ादी के एक मात्र लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक भारतीय को, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा धर्म का हो, दूसरे के साथ हाथ बांध कर मित्र भाव से आगे बढ़ना चाहिये।

२ फरवरी, १९४२—गोरखपुर की एक महती सभा में बोलते हुए पंडित नेहरू ने कहा कि 'संसार में शान्ति उसी समय स्थापित हो सकती है जब संसार का प्रत्येक राष्ट्र स्वाधीन हो जाय और छोटे छोटे राष्ट्र-संघ मिलकर एक विश्व-संघ की स्थापना करें'।

११ फरवरी, १९४२—दिल्ली की एक आम सभा में भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने घोषणा की कि भारत किसी भी विदेशी सत्ता का अधिकार नहीं स्वीकार कर सकता, चाहे वह जापान हो अथवा जर्मनी। यहां केवल भारतीय जन-मत का ही राज्य चल सकता है।

२० फरवरी, १९४२—कलकत्ते की एक आम सभा में पंडित जवाहरलाल ने देशवासियों से साहस और धैर्य रखने की अपील करते हुए कहा था कि हमें जेनरालिज़मों चियांग-काई-शेक के नेतृत्व में चलने वाले चीन से साहस के साथ सबक लेना चाहिये और आक्रमणकारियों का वीरता से मुक़ाबिला करना चाहिये। जापान और जर्मनी अति निम्नकोटि के शोषक पूँजीवादों का दिग्दर्शन करा रहे हैं और कांग्रेस तो पहले ही घोषणा कर चुकी है कि पूँजीवाद चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो उसको मान्य नहीं है।

२२ फरवरी, १९४२—कलकत्ते की एक सभा में पंडित नेहरू ने कहा था कि ब्रिटिश केबिनेट में उन्नत विचारों के लोगों को रख लेने पर भी भारत की समस्यायें उस समय तक हल नहीं हो सकतीं जब तक भारतीय मांगों की ओर ब्रिटिश सरकार का रुख नहीं पलटता।

२ मार्च, १९४२—इलाहाबाद में आपने अपने एक वक्तव्य में कहा कि 'कुछ ऐसी आवश्यक बातें हैं जिन्हें साधारण तौर पर लोग राजनीति के सार्वजनिक जीवन में अपने विरोधियों के प्रति भी निभाते हैं और उनका लिहाज़ करते हैं। लेकिन उड़ीसा में कुछ लोग जो अपने आपको मिनिस्टर कहते हैं, उन्होंने अपने व्यवहारों में जिस बात का प्रदर्शन किया है, उससे मालूम हो जाता है कि उन्होंने उस साधारण नियम और व्यवस्था का भी पालन नहीं किया। उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उसको स्वयं तोड़ा है और प्रान्तीय एसेम्बली के चुनाव में पराजित होने के भय से उन्होंने उन लोगों की गिरफ़्तारी शुरू करवा दी जो उनके खिलाफ़ चुनाव में काम कर सकते थे'।

४ मार्च, १९४२—'न्यूज़ क्रानिकल, लंडन' को अपने भेजने वाले तार में पंडित नेहरू ने कहा था—'भविष्य भारत और चीन को फिर एक करने जा रहा है'।

१८ मार्च १९४२—बरमा के शरणार्थियों के सम्बन्ध में पंडित नेहरू ने एक जोरदार वक्तव्य देते हुए

सैनिक जवाहर

था कि 'जिन्दगी के इस खतरे में भी जातीयता का पक्षपात करके गोरों और कालों के बीच जो अन्तर रक्खा गया है तथा उसके द्वारा जो दुर्व्यवहार किया गया है वह सर्वथा आश्चर्य में डालने वाला है'।

६ अप्रैल, १६४२—पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस कार्य-समिति को संवाद देकर अपनी मुलाकात के सम्बन्ध में जो कर्नल जानसन के साथ, जो कि प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, हुई थी, बतलाया कि 'मुलाकात से हमको भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध में अमेरिका निवासियों की सहानुभूति प्राप्त हुई है और इस बात का विश्वास मिला है कि भारत में बाहरी आक्रमण होने के समय उनकी पूरी सहायता हमको प्राप्त होगी'।

७ अप्रैल, १६४२—नई दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए पंडित नेहरू ने घोषणा की कि 'भारत में होने वाले आक्रमण का मैं विरोध करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। ऐसे मौके पर मैं चुप रहूँ अथवा एक तमाशबीन की शक्ल में उस आक्रमण को देखता रहूँ यह मेरे लिए कैसे संभव हो सकता है? भारत के किसी भी मुक़ाम में जापानियों के द्वारा होने वाली बम-वर्षा भारतीयों के दिलों के टुकड़े टुकड़े कर देती है। मैं कभी भी यकीन नहीं करता कि जापान हिन्दुस्तान को अथवा कोरिया को आज़ाद करने के लिए आ रहा है। इस प्रकार की खबरें महज़ निकम्मी और झूँठी हैं'।

६ अप्रैल, १६४२—नई दिल्ली में पत्रों को दिये गये एक वक्तव्य में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि ब्रिटिश कूटनीति का परिचय हमें भारत तथा अन्य देशों में देखने को मिलता है। युद्ध से जो कुछ भी हुआ है उसका ब्रिटेन के प्रमुख नेताओं के स्वर और रुख में बहुत ही कम परिवर्तन हुआ है। लार्ड हैलीफैक्स, जिनको हम भारतीय अच्छी तरह जानते हैं, आज भी हमको उसी पुराने दृष्टिकोण से देख रहे हैं और वे सदा यह बताने की चेष्टा किया करते हैं कि इस महान संसार में हम कितने अस्तित्वहीन हैं। शायद ऐसा ही हो। परन्तु फिर हमारे पीछे इस प्रकार परेशान होने की और फिर बार बार प्रस्ताव करने की क्या आवश्यकता है? अपने जाति-वासियों के कार्यों से, जो उन्होंने भारत में किये हैं, लार्ड हैलीफैक्स बहुत प्रसन्न हैं। उन्हें चाहिए कि वे अपने आनन्द के संसार में रहें और हम लोगों को हमारे दुखों और उद्योगों पर छोड़ दें। जो कुछ भी हो हम अपने पूर्ण स्वतंत्रता के ध्येय को छोड़ नहीं सकते।

१० अप्रैल, १६४२—नई दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक वक्तव्य में कहा था कि भारत की इस विपदावस्था में दूर विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने मेरे पास तमाम तार भेजे हैं। उन्होंने इच्छा प्रकट की है कि वे अपने देश में आकर अपनी मातृ-भूमि पर आने वाले खतरों और मुसीबतों में हिस्सा बटाना चाहते हैं और होने वाले आक्रमणों से उनकी रक्षा में भाग लेना चाहते हैं। मैं उनकी इन भावनाओं से सहमत हूँ और मेरा विश्वास है कि प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य है, यदि वह ऐसा कर सके, कि अपने देश में आकर वह भावी मुसीबतों का सामना करे। मुझे विश्वास है कि अधिकारी वर्ग उनके लौटने का समुचित प्रबन्ध करेंगे।

१२ अप्रैल, १६४२—नई दिल्ली की एक प्रेस-कांफ्रेंस में पंडित नेहरू ने कहा कि 'युद्ध करने का फौजी

रास्ता यह है कि जब तक लड़ सको, लड़ो, परन्तु जब समझो कि हार निश्चित है, तब आत्म-समर्पण कर दो; परन्तु सामना करने का साधारण मतलब तो आत्म-समर्पण नहीं है चाहे सैनिक को मरना पड़े या जीना। इसी को लेकर चीन चला और रूस में भी अधिकतर यही देखा जाता है। भारत में भी हमको यही अपनाना चाहिए'।

१८ अप्रैल, १९४२—कलकत्ते में बङ्गाल के कार्यकर्ताओं के बीच बोलते हुए पंडित नेहरू ने घोषणा की थी कि यद्यपि भारत एक पराधीन देश है फिर भी जो पक्ष इसे ग्रहण करना है वह इस युद्ध के पहिले ही कहा जा चुका है। हमारे देश को चीन और रूस से सहानुभूति है और चीन हिटलर और जापान का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्तियों के विरुद्ध है; उसका कहना है कि अगर शत्रु-दल विजयी होता है तो भारत के लिए पराधीनता स्थायी हो जायगी।

२५ अप्रैल, १९४२—पंडित जी ने कलकत्ते में पत्रकारों की कान्फ्रेंस में स्पष्ट घोषणा की थी कि हम अब ब्रिटिश सरकार के सम्मुख अधिक नहीं झुकेंगे। अपनी समस्याओं और कठिनाइयों का सामना अपने संपूर्ण साहस और बुद्धिमत्ता के साथ करेंगे।

२२ मई, १९४२—लाहौर की एक प्रेस कान्फ्रेंस में पंडित नेहरू ने कहा था कि हो सकता है कि हमारे देश की साम्प्रदायिक समस्या वर्तमान संकटों के समय कुछ रंग लाये और यह भी संभव है कि इस समस्या के हल का कोई रास्ता भी निकल आवे।

लाहौर में ही एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने श्री राजगोपालाचारी के उस प्रस्ताव की जो मुस्लिम लीग की मांगों को मान लेने के पक्ष में थी, कड़ी आलोचना की। आपने आगे कहा कि श्री राजगोपालाचारी का यह क़दम हमारे देश के हितों के प्रति अत्यन्त भयानक और नाशकारी है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि बाईस वर्षों के अगणित बलिदानों के बाद कांग्रेस जिस शस्त्र की रचना करने में समर्थ हुई थी, श्री राजगोपालाचारी उसी को तोड़ रहे हैं।

५ जून, १९४२—पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जनता से 'नेशनल हेराल्ड' की सहायता के लिए फंड जमा करने की अपील की।

१७ जून, १९४२—बंबई में पंडित नेहरू ने कहा कि 'मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस समय ब्रिटिश सरकार का इरादा युद्ध के बीच भारत से चले जाने का नहीं है। मगर इस युद्ध में ऐसी अनेक घटनायें घटित हुई हैं जिनका अनुमान भी ब्रिटिश सरकार को न था। ब्रिटिश सरकार की इच्छा के विरुद्ध ऐसी ही अनेक बातें भारत तथा अन्य देशों में होने वाली हैं'।

बंबई में पंडित जी ने ये विचार भी प्रकट किये कि वे मि० जिन्ना से मिलने के लिए खुशी से राजी हैं, यदि ऐसा करने से कांग्रेस के ध्येय की—भारत के पूर्ण स्वतंत्रता के ध्येय की—पूर्ति हो सके।

३० जून, १९४२—अलीगढ़ में जिला राजनैतिक अधिवेशन का सभापतित्व करते हुए पंडित नेहरू ने घोषणा की थी कि हम जापान और जर्मनी के दास नहीं होना चाहते। कोई भी राष्ट्र जो हमको गुलाम बनाना चाहेगा, हम उसके विरुद्ध युद्ध करेंगे।

१ जुलाई, १९४२—'न्यूज क्रानिकल' की एक इंटरव्यू में पंडित नेहरू ने कहा—'मैं चाहता हूँ कि तमाम हिन्दुस्तानी जापानी आक्रमण का विरोध करें और अपनी पूरी ताक़त के साथ चीन की सहायता करें, किन्तु देश की मौजूदा स्थिति में इसे व्यवहारिक रूप देना संभव नहीं हैं। हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए रचनात्मक कार्य में भाग लेना हमारे लिए उसी हालत में संभव है जब हम स्वतंत्र हों'।

३ जुलाई, १९४२—गोरखपुर की जिला कांग्रेस कमेटी की एक सार्वजनिक सभा में पंडित नेहरू ने जोरदार शब्दों में कहा—'हम लोग कभी इस बात को बरदाश्त न करेंगे कि हिन्दुस्तान में जर्मनी या जापान आवे। हम उनके साथ हथियारों से और बिना हथियारों के भी युद्ध करके उनका इस मुल्क में आना रोक सकेंगे'।

४ जुलाई, १९४२—नागपुर में एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने कहा—हिन्दुस्तान जब तक गुलामी की जञ्जीर में बँधा हुआ है वह चीन की सहायता करने में असमर्थ है। यह सहायता उसी हालत में सम्भव हो सकती है जबकि हिन्दुस्तान आजाद हो। ब्रिटेन ने इस बात को मंजूर किया हैकि यह महायुद्ध आजादी और प्रजातंत्र-वाद की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है, लेकिन उसने अपने साम्राज्य के अंतरगत पराधीन देशों को स्वतंत्र करने से इंकार कर दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि उसके पराधीन देश—जैसे हिन्दुस्तान—इंगलैंड की इस नीति के प्रति कठोर असंतोष अनुभव कर रहे हैं।

५ जुलाई, १९४२—पंडित नेहरू ने 'नेशनल हेराल्ड' में लिखा है कि—'उनका (अंग्रेजों का) कहना है कि सबसे पहिले वास्तविकता है लड़ाई के सम्बन्ध में आई हुई विपत्ति की, लेकिन मैं तो समझता हूँ कि इस प्रकार की विपत्ति अनेक शक्लों से हमारे सामने है। मैं नहीं समझता कि शिक्षा को हमारे यहां किस अर्थ में लिया जा रहा है। हिन्दुस्तान में शिक्षा विलासिता के रूप में व्यवहार में लाई जा रही है।

८ जुलाई, १९४२—ब्रिटिश तथा अमेरिकन पत्रों के संवाददाताओं को उत्तर देते हुए वर्धा में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा—'सर स्टैफोर्ड क्रिप्स की रवानगी के बाद से कांग्रेस की मनोवृत्ति में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। कांग्रेस उसके लिए बिलकुल तैयार नहीं है, जो उससे उम्मेद की जा रही है। सम्पूर्ण सेना उस समय सुखी होती है जब समझौते का प्रयत्न असफल होता है। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के प्रस्तावों के सम्बन्ध में मैं कांग्रेस की मंजूरी की आशा करता लेकिन अब उसकी सम्भावना नहीं रह गई'।

९ जुलाई, १९४२—एक प्रेस-प्रतिनिधि से बात करते हुए पंडित नेहरू ने कहा—जहां तक मेरे विचारों और भावनाओं का प्रश्न है मैं बिलकुल स्पष्टरूप में सब के सामने हूँ। जहां तक सम्भव है मैं चीन को जरा भी

क्षति नहीं पहुँचने देना चाहता। हिन्दुस्तान की रक्षा के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह सही है कि ब्रिटिश सरकार के प्रति जितने भी विरोधात्मक कार्य किये जायँगे वे सब के सब खतरनाक हूंगे। सार्वजनिक जीवन को शक्तिशाली बनाने के लिये अपने मार्ग में आगे बढ़ने की बात कांग्रेस के सामने एक समस्या के रूप में है।

११ जुलाई, १९४२—सेवा-ग्राम में कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी की बैठक में पंडित नेहरू ने एक संशोधन उपस्थित किया जिसमें महात्मा जी की मांग, भारत से अंग्रेजों के चले जाने के सम्बन्ध में, अधिक स्पष्ट होती थी।

१६ जुलाई, १९४२—नई दिल्ली में होने वाली एक प्रेस-कांफ्रेंस में पंडित नेहरू ने कांग्रेस की उस मांग को स्पष्ट करते हुए समझाया जो भारत से अंगरेजों के चले जाने के सम्बन्ध में थी।

१८ जुलाई १९४२—मेरठ की एक राजनीतिक सभा में बोलते हुए पंडित नेहरू ने कहा—देश के सामने एक ही रास्ता है और वह यह है कि देश ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ाई लड़े। उसका अभिप्राय यह है कि जिससे हिन्दुस्तान में फासिस्ट आक्रमण रोका जा सके।

२७ जुलाई, १९४२—प्रयाग में एक वक्तव्य देते हुये पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—वर्तमान युद्ध में हिन्दुस्तान और चीन की हालत खराब होगई है और निकट भविष्य में और भी खराब होने जा रही है। उसे हम एक दर्शक की हैसियत से नहीं देख सकते। दूसरों की अपेक्षा चीन और हिन्दुस्तान में अधिक घनिष्ठता है। इसलिए यह आवश्यक है कि जो परिस्थितियां युद्ध के द्वारा उत्पन्न होती जा रही हैं उनको बदला जाय। विशेषकर हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में तो यह बहुत ही जरूरी है। इस महायुद्ध में हिन्दुस्तान अपनी पूरी सहायता मित्र-राष्ट्रों को दे सकता है और यह उसी हालत में हो सकता है जब उसकी गुलामी की जञ्जीरें टूट जायँ। वह पूर्णरूप से स्वतंत्र हो जाय। उस हालत में शत्रुओं के आक्रमणों को व्यर्थ सिद्ध करने में हिन्दुस्तान अपनी कोई ताक़त बिना प्रयोग किये न रह सकेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतंत्र भारत अपनी रक्षा करने में सफल होगा। लेकिन यह निर्भर है उसकी आजादी के ऊपर। गुलामी की अवस्था में यह कभी संभव नहीं है।

८ अगस्त, १९४२—महात्मा गांधी, मौलाना अबुलकलाम आजाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, श्रीमती सरोजिनी नायडू, कांग्रेस-कार्यकारिणी के सभी सदस्य तथा अन्य कांग्रेस के प्रमुख बीस व्यक्तियों के साथ पंडित जवाहरलाल नेहरू बम्बई में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के सम्बन्ध में गिरफ्तार कर लिये गये।

भावी सेनानी

उनका संदेश

श्री एस० मोहम्मद जफरखाँ

कौन कहता है कि कांग्रेस भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। किसी सम्राट, वाइसराय या गवर्नर ने देश का इतना भ्रमण नहीं किया जितना जवाहरलाल नेहरू ने। इस बात में कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है। उन्होंने २५ हजार मील रेल से, २२ हजार मील सड़क से तथा १६ हजार मील वायुयान से यात्रा की है। कभी कभी उन्होंने सेकेंड क्लास में यात्रा की है किन्तु अधिकांशतः थर्ड क्लास से। उन्होंने मोटर, लारी, हाथी, ऊँट, घोड़ा, साइकिल, स्टीमर तथा पैदल सभी प्रकार से यात्रायें की हैं।

देश भरके लोगों से वे मिले हैं। जो लोग उनसे मिले हैं वे कदापि उन्हें भूल नहीं सकते। वे जिन सभाओं में बोले हैं उनकी संख्या देहातों में भी लगभग ५० हजार की रही है। किसी किसी सभा में यह संख्या एक लाख के लगभग भी पहुँच गई है। इन सभाओं में किसानों की ही संख्या सब से अधिक रही है। वे हजारों की संख्या में एकत्रित महिलाओं के बीच में बोले हैं—यह संख्या ३० हजार तक भी रही है।

उन्हें विभिन्न संस्थाओं की ओर से अभिनंदन-पत्र मिले हैं: म्युनिसिपेलिटियां, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कांग्रेस कमेटियां, व्यापारी-मंडल, विद्यार्थियों के संघ, महिलाओं के संघ, किसान सभायें, मजदूर-दल तथा अन्य संस्थायें। उनकी ओर से उन्हें थैलियां भी भेंट की गई हैं। इन बातों से यह स्पष्ट है कि सभी प्रकार के लोगों का समर्थन कांग्रेस को प्राप्त है।

इन आयोजित सभाओं में सभी प्रकार के लोगों ने आकर उनके भाषणों को सुना है। इन लोगों ने उनके भाषण को सुनकर इस संदेश को और लोगों में फैलाया है। इस प्रकार पंडित नेहरू का संदेश करोड़ों भारतीयों के पास पहुँचा।

और वह संदेश क्या था? भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ो जिससे देश की गरीबी, बेकारी, सामाजिक और राजनैतिक कुरीतियां दूर हों। कांग्रेस को भारतीयों की इतनी सुदृढ़ सेना बना दो जो साम्राज्यवाद को नष्ट कर के देश में पंचायती राज्य स्थापित कर दे।

नेहरू की गिरफ्तारी

९ अगस्त सन् १९४२ ई०

८ अगस्त १९४२ का ऐतिहासिक दिन था। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को पास करने वाले कांग्रेस अधिवेशन में अधिक रात बीते हम को विश्राम का अवसर मिला। दिन के श्रम से श्रान्त बिस्तर पर पड़ते ही मैं काठ होगया। निद्रा देवी की गोद से मैं अभी मुक्त भी न हुआ था कि अतिथि-घंटी बजी। द्वार पर किसी के खटखटाने की आवाज आई। अभी सवेरा होने में अधिक विलम्ब था। इतने तड़के किसी के आने की आशा भी न थी। द्वार खोला गया। देखा कृष्ण-मंदिर का निमंत्रण लिए पुलिस द्वार पर खड़ी थी। मैं चटपट तैयार हो गया और मुझे ले पुलिस भी अज्ञात स्थान की ओर रवाना होगई।

९ अगस्त को प्रातःकाल होते होते समस्त भारत में गिरफ्तारी की धूम मच गई। इसके पश्चात जो कुछ हुआ उसकी सत्यता संसार की ओट में अभी भी रहस्य बनी हुई है। जनता के सभी नेता उनसे सहसा छीन लिए गये। उन्हें अज्ञात स्थानों में नजरबन्द कर दिया गया। जनता नेतृत्व-हीन कर दी गई। परिणाम जो होना था वही हुआ। यद्यपि किसी की समझ में नहीं आता था कि क्या करना चाहिये किन्तु सरकार की इस अनुचित, निन्दनीय तथा आकस्मिक कार्यवाही का विरोध तो उन्हें करना ही था। फिर क्या था, प्रदर्शन प्रारम्भ होगये। सरकार को नागरिकों के शान्तिपूर्ण उपाय भी सहन न हुए। वह पाशविकता पर आकर प्रदर्शन भंग करने लगी। अश्रु-गैस तथा बमों का प्रयोग किया जाने लगा। सार्वजनिक भावों को प्रकट करने के सभी साधनों को रोक दिया गया। इसका परिणाम और भी भयंकर हुआ। अन्त में छिपी आग धधक उठी। नगरों व चन्द देहातों में भीड़ इकट्ठी होने लगी। पुलिस तथा फ़ौजें दमन पर तुली हुई थी। भीड़ से उनका संघर्ष होगया। उसने आक्रमण किया विशेषतः उन पर जिन्हें वह ब्रिटिश शासन का प्रतीक समझती थी—पुलिस स्टेशन, डाकघर तथा रेलवे स्टेशन। उन्होंने टेलीफोन तथा टेलीग्राफ़ के तारों को काट डाला। निशस्त्र तथा नेतृत्व-विहीन नागरिकों ने

पुलिस तथा फ़ौजी गोलों का सामना किया, उन्हें सीने पर लिया; कुछ सदा के लिए भारत-माता की गोद में सो गये, कुछ निकटवर्ती अस्पतालों में अपनी मरहम-पट्टी कराने लगे। पुलिस अधिकारियों के कथनानुसार ५३२ स्थानों पर गोलियां चलीं; कहीं कहीं पर तो निकट से उड़ते विमानों द्वारा उन पर मशीनगन का भी प्रयोग किया गया। दो तीन मास तक देश के विभिन्न भागों में घटनाओं का यही क्रम रहा। सामूहिक घटनाओं का स्थान छुट-पुट घटनाओं ने लिया। एक दिन कामन्स-सभा में ब्रिटेन के तात्कालिक प्रधान मंत्री चर्चिल ने कहा—सरकार ने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उपद्रव दबा दिया है और सैन्य-सहायता पहुँच गई है।

सरकार के इस घोर दमन तथा अत्याचार की घोर प्रतिक्रिया देश में हुई। नगर तथा देहात एक होगये। सरकारी प्रतिबन्धों के होते हुए भी प्रदर्शन होने लगे, हड़तालें हुईं, सर्वत्र दूकानें और कारबार बंद रहने लगे। हड़ताल लगातार होती रहीं, कहीं कहीं कारबार सप्ताहों बंद रहे तो कहीं महीनों बीत गये। मजदूर-हड़तालों ने भी ज़ोर पकड़ा और अहमदाबाद में उन्होंने कितने ही महीने खाली पेट रह कर शान्तिपूर्ण हड़ताल जारी रक्खी।

प्रान्तों में उत्तर-पश्चिमीय सीमान्त प्रदेश की स्थिति विचित्र थी। वहां की बहुसंख्यक जनता मुस्लिम है। अन्य प्रान्तों की भांति वहां सामूहिक गिरफ्तारियां अथवा अन्य उत्तेजनात्मक कार्यवाही नहीं हुई। संभवतया ऐसा कुछ तो इसलिए हुआ कि सीमा-प्रान्त के निवासियों को शीघ्रता से उत्तेजित होने वाला न समझा गया और कुछ यह दिखलाने के लिए कि राष्ट्रीय आन्दोलन से मुसलिम प्रथक हैं। किन्तु जब भारत के शेष भाग की चिनगारी वहां पहुँची तो वहां के देश-भक्त मुस्लिमों का खून खौल उठा। उन्होंने भी ब्रिटेन को चुनौती दी। भावना ने प्रदर्शन का रूप ग्रहण किया। सरकार का दमन चक्र आरम्भ हुआ। गोलियों की धड़ाधड़ ने अग्नि में घी डालने का काम किया। हज़ारों व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। यहां तक महान पठान नेता बादशाह खान (अब्दुल गफ्फार खां) को भी पुलिस ने घूसों से बुरी तरह घायल किया। अपने साधु नेता की इस अवस्था से जनता उबल पड़ी। किन्तु सीमान्त गांधी ने अपनी अलौकिक शक्ति और अनुशासन से उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। आकस्मिक तथा असंगठित प्रदर्शन तथा जनता के आक्रमणात्मक एवं विनाशकारी उपद्रवों और पुलिस तथा शक्तिशाली सशस्त्र सेनाओं के विरोध से ब्रिटेन के विरुद्ध जनता के मनोभावों ने उग्र रूप धारण कर लिया। समस्त भारत में अल्पवयस्कों, विशेष कर छात्रों, ने हिंसात्मक तथा शान्तिपूर्ण कार्यवाहियों में प्रमुख भाग लिया। कुछ नेताओं ने ऐसी स्थित में भी शान्तपूर्ण उपायों से काम लेना चाहा, किन्तु उस समय के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में यह सम्भव नहीं था। जनता कुछ समय के लिये बीस वर्षों से पड़े अहिंसा के मंत्र को भूल गई, फिर भी कार्य तथा कल्पना से वह किसी प्रकार भी हिंसात्मक कार्यवाही के लिये तैयार न थी। स्थिति ऐसी थी कि जनता के मन में अहिंसा के उद्देश्य ही सन्देह उत्पन्न करने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कांग्रेस ने अपने सिद्धान्तों को त्याग कर हिंसात्मक कार्यवाहियों के लिये संकेत किया होता तो हिंसा सौ गुने, हज़ार गुने वेग से आगे बढ़ गई होती। किन्तु इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया गया था। इसके विपरीत वास्तव में कांग्रेस के अन्तिम संदेश में कार्यरूप में अहिंसा के सिद्धान्त की पुनः पुष्टि की गई थी।

यद्यपि अहिंसा की नीति कुछ समय के लिये विलीन होगई थी तथापि वर्षों से जनता को उसकी जो ट्रेनिंग दी गई थी उसका उसके मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव था । यद्यपि उत्तेजना अधिक फैल गई थी किन्तु प्राण लेने की भावना उसमें विद्यमान न थी । सरकारी सम्पत्तियों की अत्यधिक क्षति हुई । किन्तु विरोधियों के जीवन हरण की घटनाएं बहुत ही कम घटीं । जहां तक मुझे ज्ञात है समस्त भारत में लगभग सौ व्यक्ति भीड़ द्वारा मार डाले गये जो अशान्त क्षेत्र तथा पुलिस से हुए संघर्ष की तुलना में बिल्कुल नगण्य है । इसमें सन्देह नहीं कि बिहार के किसी स्थान पर दो केनेडियन चालकों की हत्या कर निर्दयतापूर्ण कार्य किया गया । सरकारी अनुमान के अनुसार पुलिस तथा फौज की गोलियों से १०२८ व्यक्ति मरे तथा ३३० घायल हुए । ५३२ स्थानों पर गोलियां चलीं । चलती फिरती लारियों से जो गोलियां छोड़ी गईं उनमें उसकी गणना नहीं । लोगों का अनुमान है कि २५०० व्यक्ति मौत के घाट उतारे गये । पर साधारण बात थी कि बहुत से स्थानों में ब्रिटिश शासन का अस्तित्व ही मिट गया था । सरकार को उन पर पुनः अधिकार प्राप्त करने में कई सप्ताह लग गये । ऐसी घटनायें बिहार, बंगाल के मिदिनापुर जिले तथा युक्तप्रान्त के दक्षिण-पूर्वी ज़िलों में हुईं । संयुक्त प्रान्त के बलिया स्थान में जिसे जीतने में सरकार को काफी विलंब हुआ था व्यक्तिगत आक्रमण तथा आघात पहुँचाने की बहुत कम घटनायें हुईं । वहां पुलिस स्थिति का सामना करने में असफल होगई । पुलिस की सहायतार्थ स्पेशल आर्म्ड कांस्टेबुलरी का गठन किया गया । ब्रिटिश सैनिकों तथा गुरखों का प्रयोग किया गया, भारतीय सैनिकों को अनजान स्थानों में भेजा गया जहां की भाषा वे न समझ सकते थे । भारतीय सेना के कुछ विशेष वर्गों के अतिरिक्त उनका बहुत कम प्रयोग किया गया । यह सब कुछ हुआ किन्तु यदि सरकार ने जनता की भावनाओं को पहले से समझने की चेष्टा की होती तो यह सब न होता, किन्तु ऐसा होता ही क्यों, उसने तो दमन की पहले से ही तैयारी करली थी । वाइसराय की आज्ञा से क़ानूनों का बनना और बिगड़ना खिलवाड़ होगया था । धमकियां बढ़ने लगीं, दमन सफल होगया, विद्रोह दब गया, फिर क्या था, अवसरवादी सरकार की ओर होगये । अत्याचार और घूसखोरी का बाज़ार गर्म होगया । स्कूलों और कालेज के छात्रों को सजायें दी गईं । हज़ारों व्यक्तियों को कोड़े लगाये गये; सार्वजनिक कार्यवाहियां रोक दी गईं।

किन्तु सब से अधिक क्षति सरल हृदय तथा निर्धन ग्रामीणों की हुई । उनका कष्ट पीढ़ियों के लिए स्थायी बन गया । भारतमाता के प्रति अपनी भक्ति का उन्होंने परिचय दिया । वे प्रयत्न में असफल रहे और असफलता का भार उनके निर्बल कन्धों पर पड़ा । ऐसी भी घटनायें घटी हैं जिनमें ग्रामों की समस्त जनता के कोड़े लगाये गये हैं और उन्हें तब तक कोड़े लगाये गये जब तक वे मर नहीं गये । बंगाल सरकार की ओर से बतलाया गया है कि १९४२ के तूफान के पूर्व तथा पश्चात् तामलुक तथा कंटाई सब-डिवीज़न के १६३ कांग्रेस कैम्पों तथा घरों को जला दिया गया । तूफान ने विनाश का भयंकर दृश्य उपस्थित कर दिया था । किन्तु इससे सरकार की भीषण दमन-नीति में कोई परिवर्तन न हुआ ।

हैरो-केम्ब्रिज में विद्यार्थी जवाहर

ग्रामों से बहुत बड़ी धन-राशि सामुहिक जुर्मानों के रूप में वसूल की गई। कामन्स-सभा में मि० एमरी के वक्तव्य के अनुसार ९० लाख का सामूहिक अर्थ-दण्ड दिया गया था जिसमें ७८,५०,००० रु० वसूल कर लिया गया। भूखे, नंगे, दीन, असहाय ग्रामीणों से बलपूर्वक किस प्रकार धन-राशि सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल की गई, उसकी कल्पना से ही हृदय कांप उठता है।

फिर भी १९४२ में जो हुआ उसके लिए मैं बहुत गौरव अनुभव करता हूँ। मुझे दुःख होता अगर जनता चुपचाप यह राष्ट्रीय अपमान सह लेती।

स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी

'हम लोग कराची ही में थे कि कानपुर के हिन्दू-मुसलिम दंगे की ख़बर हमको मिली। इसके बाद ही दूसरा समाचार यह मिला कि गणेशशंकर विद्यार्थी की, कुछ मजहबी दीवानों ने, जिनको मदद के लिए वे वहां गये थे, हत्या कर डाली। वे भयंकर और पाशविक दंगे ही क्या कम बुरे थे? लेकिन गणेशजी की मृत्यु ने, उन दंगों की वीभत्सता जिस प्रकार हमारे हृदयों पर अंकित कर दी वैसी और कोई चीज नहीं कर सकती थी। वे जवांमर्द निडर, दूरदर्शी, निहायत अक़्लमंद सलाहकार, कभी हिम्मत न हारने वाले चुपचाप काम करने वाले तथा नाम, पद और प्रसिद्धि से दूर भागने वाले थे। अपनी जवानी के उत्साह में झूमते हुए वे हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए, जो उन्हें इतनी प्यारी थी, अपना सिर हथेली पर लेकर ख़ुशी ख़ुशी आगे बढ़े थे कि बेवकूफ़ हाथों ने उन्हें जमीन पर मार गिराया तथा कानपुर और हमारे प्रान्त को एक अत्यन्त उज्वल रत्न से वंचित कर दिया। हमारे दिलमें अभिमान था कि गणेशजी ने बिना पीछे क़दम उठाये मौत का सामना किया और उन्हें गौरवपूर्ण मृत्यु नसीब हुई।

बम्बई से अहमदनगर

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होते ही, ब्रिटिश सरकार बौखला उठी। गांधीजी ने वाइसराय को समझौते के लिए पत्र लिखा। बिना उसके उत्तर के ही वाइसराय ने आक्रमण कर दिया। सबेरा होने के पहिले ही सारे नेता और कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिये गये। ये लोग विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन भेजे गये।

ट्रेन रवाना हुई। गांधीजी के अतिरिक्त सभी नेता एक ही डिब्बे में थे। गांधीजी दूसरे डिब्बे में थे।

क्या नेहरू गांधीजी से मिल सके?

हां, थोड़ी देर बाद ही।

खाने वाले डिब्बे में सभी लोग नाश्ता करने के लिए एकत्र किये गये। नाश्ता बढ़िया था। सरकार इन युद्ध-बन्दियों की खातिर करना चाहती थी।

ये नेता संख्या में तीस थे। नाश्ते के बाद ये लोग परस्पर बातें करने लगे। सहसा एक लम्बा चौड़ा अंग्रेज डिब्बे में घुस कर आ गया। यह सर्ज का सूट पहिने हुए था तथा नेताओं की गिरफ्तारी की योजना इसीने तैयार की थी।

उसने आते ही कहा 'क्या यहां कोई बम्बई के सज्जन भी हैं'?

श्रीयुत मेहरअली बम्बई के थे। उसने मेहरअली से अपने डिब्बे में जाने के लिये कहा। मेहरअली ने बड़ी नम्रता के साथ थोड़ी देर का समय मांगा।

'इन मामलों में आपको थोड़ी उदारता दिखलाना चाहिये'—मेहरअली ने कहा।

अफ़सर ने जरा रूखे स्वर में कहा 'उदारता! आप लोग काफ़ी देर तक नाश्ते में साथ रहे और फिर भोजन के वक्त एक साथ घंटे भर रहेंगे।

मेहरअली ने कहा 'आप नम्रता के साथ बातचीत करें। यदि आप हम लोगों के साथ नम्रता का व्यवहार करेंगे तो हम लोग आपके प्रति उससे भी अधिक नम्रता दिखलायेंगे। मैं दो मिनट में यहां से चला जाऊँगा'।

जवाहरलाल का अँग्रेज़ी पहिनावा

नागरिक जवाहरलाल

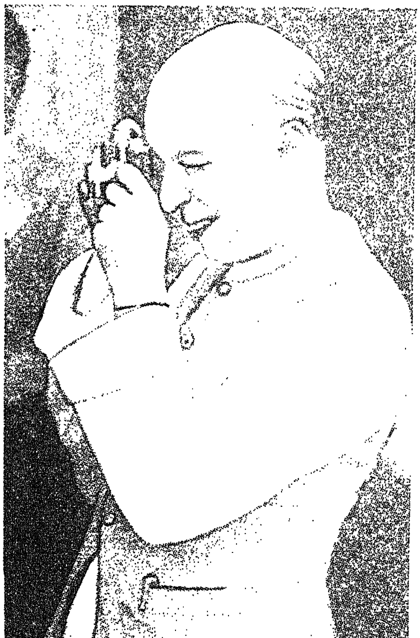

फोटोग्राफी का शौक

पंडित नेहरू की विचार-मुद्रा

क्षण भर बाद ही अफ़सर कहा, 'अब आओ मेरे बच्चे' !

मेहरअली को क्रोध आगया । वे डील-डौल में छोटे भी न थे जो कोई उन्हें बच्चा कह सकता । वे तन कर खड़े हो गये । अफ़सर की ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए उन्होंने कहा 'तुम मुझे बच्चा कह रहे हो ? तुम जानते हो मैं कौन हूँ ? मैं बम्बई का मेयर हूँ' ।

अफ़सर ने अकड़ कर कहा 'और तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ? मैं तुम्हें अभी बैठा सकता हूँ' ।

आपस में काफ़ी कहा-सुनी होने लगी । पुलिस अफ़सर ने सभ्यतापूर्वक मेहरअली के बायें कन्धे पर अपना हाथ रक्खा और उन्हें दबा कर बिठला दिया । झगड़े की सम्भावना बढ़ गई ; फिर कहा-सुनी होने लगी । अफ़सर ठंडा पड़ गया । उसने अपना रुख पलटते हुए कहा 'मैंने तो 'बच्चा' किसी और भावना से नहीं कहा था' ।

किन्तु मेहरअली का क्षोभ दूर न हुआ । इस समय डिब्बे में कुल चार या पांच नेता थे । अफ़सर दरवाज़ा रोके खड़ा हुआ था । झगड़ा बढ़ने लगा ।

पट्टाभि सीतारमैया ने कहा 'मेहरअली ! मेहरअली !

उन्होंने समझाया कि अफ़सर की बात मान लेना चहिये कि उसने उन्हें लांछित करने के भाव से बच्चा नहीं कहा था ।

झगड़ा समाप्त हो गया ।

इस अफ़सर का नाम शार्पर था । वह रेलवे का डिपुटी आई० जी० पुलिस का था ।

× × ×

एक बात ध्यान देने योग्य है । शार्पर ने मेहरअली से कहा था कि उन्हें भोजन के समय एक घंटा फिर बात करने के लिए मिलेगा । वह झूठ बोल रहा था । बम्बई के नेता पूना के लिए किरकी में ही उतार लिये गये । क्या उसे यह न मालूम था ?

गांधी जी अपने साथियों के साथ चिंचवाड में ही उतार लिए गये । मेहर अली और उनके बम्बई के साथी किरकी में उतार लिये गये थे । कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य ही रह गये थे ।

ट्रेन पूना पहुँची । रेडियो से नेताओं की गिरफ़्तारी की खबर देश भर में फैल गई थी, अतएव कुछ लड़के स्टेशन पर एकत्र होकर 'नारे' लगाने लगे । पुलिस उन पर लाठियों से आक्रमण करने लगी ।

पंडित नेहरू क्रोध से पागल हो गये । जोर से बोले 'लाठी चलाना बन्द करो । बच्चों पर लाठी चलाते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती' ।

जवाहरलाल कूद कर बाहर आना चाहते थे, किन्तु निकलने का मार्ग लगभग बन्द था । एक लम्बा चौड़ा, उजड्ड-सा हिन्दुस्तानी पुलिस अफ़सर रास्ता रोके खड़ा था । जवाहरलाल ने थोड़ी देर तक उसे हटाने की चेष्टा की,

किन्तु सफल न हुए। वे झल्ला कर खिड़की से कूद कर प्लेटफार्म पर आ गये। वे लाठियां चलाने वाले सार्जेंट के पास आ पहुँचे।

वह शार्पर ही था।

शार्पर ने नेहरू को कस कर पकड़ लिया। जवाहरलाल ने छूटने की भरपूर चेष्टा की। उन्होंने पास खड़े हुए एक कांसटेबुल के घूंसा भी जड़ दिया। परिस्थिति बिगड़ने लगी।

फौरन शंकरराव देव जवाहरलाल की सहायता के लिए खिड़की से कूद कर आ गये। वे चिल्ला कर उनकी ओर दौड़े, किन्तु पुलिस ने उन्हें दौड़ कर पकड़ लिया। नेहरू और देव कम्पार्टमेंट में पहुँचा दिये गये।

ट्रेन चल दी।

×　　　　×　　　　×

वे कहां ले जाये जा रहे थे?

वे लोग जानते थे कि पूना में आग़ा खां के महल में रक्खे जाने के लिए गांधीजी उतार लिये गये थे। वे चिंचवाड स्टेशन पर उतार लिए गये थे; उनके साथ श्रीमती सरोजनी नायडू, मीरा बेन और महादेव देसाई भी उतार लिए गये थे।

बम्बई के नेता यरवदा जेल में रक्खे जाने के लिए पहिले ही उतार लिए गये थे।

किन्तु वे लोग कहां ले जाये जा रहे थे?

उन्होंने 'किले' की फुसफुसाहट सुनी थी। और वह कौन सा क़िला था?

सीतारामैया ने इस प्रकार निर्णय दिया :—

(१) मैंने शंकरराव देव से पूँछ लिया था कि धौंध-मानमांड लाइन के पास कौन सा स्टेशन है?

(२) निस्संदेह हम धौंध स्टेशन से ही कहीं ले जाये जायेंगे।

(३) कदाचित धौंध पर हम लोग रोक लिए जायँ और वहां से अपने अपने प्रांतों को रवाना कर दिये जायँ।

(४) इस लाइन पर केवल वीसापुर में ही जेल है।

(५) मगर हम लोग क़िले में रक्खे जायेंगे।

(६) और वह क़िला अहमदनगर का ही हो सकता है।

इन लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि वे लोग अहमदनगर के क़िले में ही ले जाये जा रहे हैं।

वे लोग शाम तक अहमदनगर फोर्ट पहुँच गये।

जब ये लोग धौंध स्टेशन पहुँचे तभी शार्पर ने बतला दिया था कि वे लोग अहमदनगर फोर्ट ले जाये जायेंगे। अंत में मि० शार्पर का व्यवहार मित्रतापूर्ण हो गया था। ये लोग स्टेशन से फोर्ट एक ऐसी मोटर बस में ले जाये गये जिसकी छत बहुत नीची थी। मौलाना आज़ाद तथा कुछ अन्य नेताओं को उसमें बैठने में बड़ा ही कष्ट हुआ।

ये लोग क़िले में अंदर ले जाकर उतारे गये। दरवाज़ा उनके स्वागत के लिए खुला और उनके अन्दर जाते ही बंद हो गया।

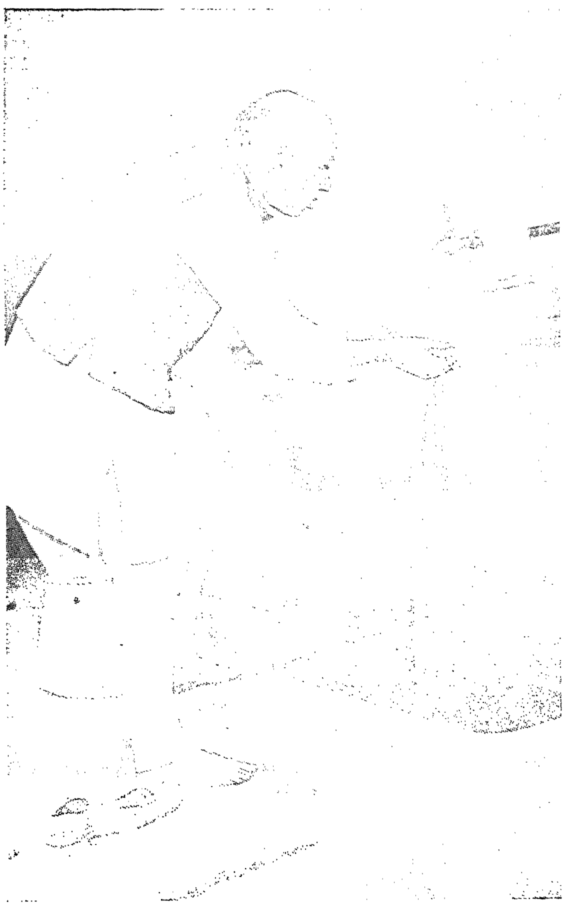

सम्मेलन के मध्य में शीघ्रता से हाथ धोते समय

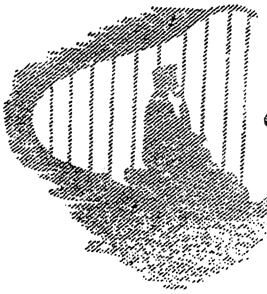

नेहरू का बंदी जीवन

अहमदनगर का क़िला कुछ बन्दीगृह की तरह ही बना हुआ है। यह बन्दीगृह के अन्दर बन्दी-गृह था। इसमें कमरों की दो लम्बी क़तारें हैं। सामने गेट है, दूसरी ओर छोटे कमरों की क़तार है।

मुख्य दरवाज़े के पास का पहिला कमरा सरदार पटेल ने लिया। अन्य लोगों ने इस प्रकार कमरे लिये :—

दूसरा—मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

तीसरा—मि० आसफ़ अली।

चौथा—पंडित जवाहरलाल नेहरू। उनके साथ डा० सैय्यद महमूद भी थे।

पांचवा—श्री गोविन्द बल्लभ पंत।

छठा—श्री शंकरराव देव। उनके साथ डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष थे।

सातवां—श्री पट्टाभि सीतारामैय्या।

आठवां—आचार्य कृपलानी।

नवां—आचार्य नरेन्द्रदेव।

दसवां—श्री हरेकृष्ण महताब।

ग्यारहवां कमरा भोजन का कमरा था। कमरों के सामने एक आंगन था और उसमें एक ही वृक्ष था। यह पेड़ सरदार पटेल के कमरे के पास था।

सरदार पटेल हास्य और विनोद के लिए प्रसिद्ध थे। उनके विनोद में पूर्णता रहती थी। आचार्य कृपलानी मीठी चुटकियां लेने में सिद्ध-हस्त थे।

पंडित नेहरू ने अपना बाग़बानी का काम जारी रक्खा। उन्होंने अपने खर्चे से फूल और बीज मँगा लिए थे। वे अपने हाथों से जमीन खोदते रहते और खाद डालते रहते। अपने परिश्रम के द्वारा उन्होंने लगभग आधे आंगन को सुन्दर उपवन में परिणत कर दिया। उनके सिद्धांत के अनुसार इस प्रकार के कार्य चर्खा चलाने की अपेक्षा भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के ज़्यादा सुन्दर प्रतीक हैं।

भोजन-शाला का प्रबन्ध सप्ताह भर एक व्यक्ति के चार्ज में रहता था और फिर दूसरे के चार्ज में चला जाता था। जवाहरलाल नेहरू टेबुल सजाने और उनमें फूलों के लगाने में बड़े पटु थे। यद्यपि रसोई अलग थी फिर भी कोई न कोई भोजन-शाला में कुछ न कुछ पकाता ही रहता।

जवाहरलाल अंडे पकाने में बड़े पटु थे।

डा० महमूद तरकारी के कबाब अच्छे बनाते थे।

सब से सुन्दर भोजन आचार्य कृपलानी बनाते थे। वे केक बहुत बढ़िया तैयार कर लेते थे।

दीपावली, दशहरा, रमज़ान आदि बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते थे और उस दिन बढ़िया खाना बनता था? स्वतंत्रता-दिवस बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था? उस दिन भोजन-शाला तिरंगे झंडों से सजायी जाती थी? फूलों से भी सजावट की जाती थी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की वर्षगांठ भी मनाई जाती थी। उन्हें फूलों की मालायें पहिनाई जाती थीं, तथा भोज होता था।

डा० पट्टाभि समाचार-पत्रों की फाइल रखते थे। पंडित नेहरू, आचार्य कृपलानी तथा मौलाना आज़ाद के पास बहुत सी पुस्तकें थीं। पुस्तकालय जवाहरलाल के कमरे में रहता था।

सप्ताह में एक दिन जवाहरलाल नेहरू चीनी ढङ्ग से चाय बना कर सब को पिलाते थे।

मौलाना आज़ाद बहुत कम भोजन करते थे, और यही कारण है कि उनका वज़न काफ़ी घट गया था।

डा० पट्टाभि दो बजे रात को उठ कर अवश्य कुछ खाते थे।

डा० प्रफुल्ल घोष दिन भर चरखा चलाते रहते थे। उन्होंने बन्दी-गृह में रह कर १६ साड़ियां बनाने के योग्य सूत काता था। डा० पट्टाभि, आचार्य कृपलानी तथा श्री हरीकृष्ण मेहताब भी सदा सूत कातते रहते थे। कभी कभी पंडित नेहरू भी सूत कातते थे। उन्होंने अपनी पुत्री की एक साड़ी भर का सूत काता था।

जेल में एक छोटा सा काफ़ी-क्लब भी था। यह रोज चलता था। इस काफ़ी-क्लब के पंडित जवाहरलाल नेहरू, डा० सैय्यद महमूद, आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेंद्र देव तथा पंडित गोविन्द बल्लभ पंत स्थायी सदस्य थे, अन्य नेता भी प्रायः आजाया करते थे। इस क्लब में प्रत्येक विषय पर बहस चला करती थी। पंडित नेहरू इसमें प्रमुख भाग लेते थे।

एक-दो बार सरदार पटेल, श्री आसफ़ अली, डा० प्रफुल्ल घोष तथा डा० सैय्यद महमूद मेडिकल-परीक्षा के लिए बाहर भी ले जाये गये। वे लोग एक बन्द लारी में ले जाये जाते थे तथा बड़ा सख़्त पहरा रहता था।

डा० सैय्यद महमूद ने लिखा है कि 'सभी सख़्तियों के होते हुए भी हम लोगों ने हँसी-खुशी में दिन व्यतीत किये और अपना अस्तित्व क़ायम रक्खा'।

नेहरू की शुभकामना

आज ६ दिन से मैं तथा मेरे सहयोगी भारत सरकार के ऊँचे पदों पर आसीन हैं। उस दिन इस प्राचीन देश में उस नवीन सरकार का जन्म हुआ। इसे अन्तर्कालीन या अस्थायी सरकार कहते हैं। यह पूर्ण स्वराज्य की प्रथम सीढ़ी है। समस्त संसार भर से—तथा भारत के कोने कोने से हमको शुभ कामना के सहस्त्रों ही संदेश मिले हैं। फिर भी हमने लोगों से इस उत्सव को न मनाये जाने के लिए कहा। हम यह चाहते थे कि लोग जान लें कि अभी हम उद्देश्य के निकट नहीं पहुँचे हैं। हमारे मार्ग में अभी रोड़े हैं और सम्भव है हमारा गंतव्य स्थान उतना निकट न हो जितना हम को ज्ञात हो रहा है। अब किसी भी तरह का ढीलापन या कमजोरी हमारे लिये घातक सिद्ध हो सकती है। कलकत्ते के भयानक हत्याकाण्ड—तथा परस्पर भाई भाई की सारहीन लड़ाई ने हमारे दिल भारी कर दिये हैं। जिस स्वतंत्रता की हमने प्रतिज्ञा की थी तथा जिसके पीछे हमने अपार कष्ट सहे हैं वह भारत के सभी लोगों के लिए हैं; किसी एक दल, श्रेणी या धर्म के लोगों के लिए नहीं है। हमारा तो ध्येय पारस्परिक सहयोग के बल पर चल कर एक व्यवस्था क़ायम करना है। इसमें साझेदार की हैसियत से सभी को जीवन की उपयोगी वस्तुओं में हिस्सा मिले। फिर यह झगड़ा क्यों है? हम परस्पर एक दूसरे पर संदेह क्यों करते हैं? डरते क्यों हैं? आज मैं आप से सरकारी नीति या भावी कार्य-क्रम के लिए नहीं, वरन् उस स्नेह और प्रेम के लिए—जो आपने हमें उदारता के साथ दिया है—आपको धन्यवाद देने के लिए बोल रहा हूँ।

आपके इस प्रेम और सहयोग का हम आदर करते हैं। हमारे आगे तूफान है और हमारा जहाज पुराना घिसा हुआ और धीमी चाल वाला है। हम उसे लेकर तेज रफ़्तार से नहीं चल सकते। हमको अपना यह जहाज बदलना होगा। जहाज कितना ही पुराना क्यों न हो और उसको चलाने वाला कितना ही कमजोर क्यों न हो किन्तु जब करोड़ों हाथ और हृदय स्वेच्छा से हमारे साथ हैं तो हम समुद्र की लहरों से युद्ध कर सकते है, और भविष्य के समक्ष तैयार होकर लोहा ले सकते हैं। वह भविष्य बन रहा है और हमारा प्राचीन और प्यारा देश भारतवर्ष दुख और दर्द का सामना करता हुआ ऊपर उठ रहा है। उसमें आत्म विश्वास और श्रद्धा का अभाव नहीं है। वह फिर से जवान

हो रहा है, उसकी आंखों में चमक है। वह मुद्दतों तक एक तंग दुनियां में रहा है और आत्म-चिन्तन में खोया-सा रहा है। पर अब उसने विशाल विश्व की ओर दृष्टि की है और विश्व के अन्य निवासियों की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया है।

अन्तर्कालीन सरकार एक बड़ी योजना का ही एक भाग है। उस योजना में विधान-परिषद् भी सम्मिलित है जो स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिए जल्दी ही अपनी बैठक करने वाली है। हमने जल्द ही पूर्ण स्वतंत्रता मिलने की आशा से यह वर्तमान सरकार बनायी है। हमको इस प्रकार कार्य करना चाहिए जिससे हम आन्तरिक और विदेशी दोनों ही क्षेत्रों में आजादी हासिल कर सकें। हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में पूरा हिस्सा लेंगे और यह काम किसी दूसरे राष्ट्र के आश्रित होकर नहीं वरन् एक स्वतंत्र राष्ट्र की हैसियत के अपनी स्वतंत्र नीति पर चल कर करेंगे। हमारा ध्येय दूसरे राष्ट्रों से सीधा संपर्क स्थापित करने और दुनियां की शांति और आजादी के लिए उनसे सहयोग करने की है। जहां तक सम्भव होगा हम गुटबन्दी को दूर करेंगे जो राजनीति में एक दूसरे के विरुद्ध चल कर उन्हें संकट में डाला करती है। हमारा विश्वास है कि शांति और स्वतंत्रता बांटी नहीं जा सकती। कहीं भी आजादी का अभाव किसी और जगह शान्ति को खतरे में डाल सकता है तथा युद्ध और संघर्ष के बीज बो सकता है। उपनिवेशों और परतंत्र देशों में रहने वालों की स्वतंत्रता में हमारी खास दिलचस्पी है। सिद्धांतरूप से और व्यवहार में भी सभी जातियों को बराबर मौका मिले इसमें भी हमारी दिलचस्पी है। हम नाजी सिद्धान्तों पर बनी हुई जातीयता का तीव्र खंडन करते हैं चाहे वह कहीं भी या किसी भी रूप में हो। हम किसी पर अधिकार जमाना नहीं चाहते और न अन्य देश-वासियों की अपेक्षा अधिक रियायतें ही चाहते हैं। किन्तु हम जहां जायें वहां सम्मानपूर्ण तथा बराबरी का बर्ताव अवश्य चाहते हैं। हम भेद-भाव की भावना पसंद नहीं कर सकते।

आंतरिक संघर्षों, कष्टों और प्रतिद्वन्दों के होते हुए भी संसार अनिवार्य रूप से पारस्परिक सहयोग और विश्व-व्यापी राष्ट्र-संघ की स्थापना की ओर बढ़ रहा है। इस प्रकार के राष्ट्र-संघ की स्थापना के लिए स्वतंत्र भारत कार्य करेगा—वह राष्ट्र-संघ जिसमें स्वतंत्रता, सहयोग और प्रेम की भावना हो; वर्ग-वाद, गुट-बंदी और शोषण न हो। संघर्षपूर्ण अपने पिछले इतिहास के होते हुए भी भारत और इंगलैंड तथा ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के बीच मैत्रीपूर्ण और सहयोग के सम्बंध स्थापित होंगे, ऐसी मुझे आशा है।

अमेरिका के लोगों के प्रति, जिन्हें ईश्वर ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में निर्णायक का पद दे दिया है, हम अपनी शुभकामनायें भेजते हैं। संसार के उस महान राष्ट्र सोवियट यूनियन को भी, जिसका नव-संसार के निर्माण में दायित्व कम नहीं रहा है, हम अपनी शुभ कामनायें भेजते हैं। रूस और अमेरिका एशिया में हमारे पड़ोसी हैं और हमको बहुत से महान कार्य इनसे मिल कर करने हैं तथा एक दूसरे से व्यवहार भी करना है।

हम एशिया के हैं, अतएव एशिया के लोग औरों की अपेक्षा हमारे अधिक निकट हैं। भूतकाल में भारत की सभ्यता का बहाव इन सब देशों की ओर रहा है और उनका प्रभाव भी भारत पर कई तरह से पड़ा है। वह पुराना संबंध फिर स्थापित हो रहा है और आगे चल कर भारत दक्षिण-पूर्वी एशिया, अफगानिस्तान, ईरान तथा

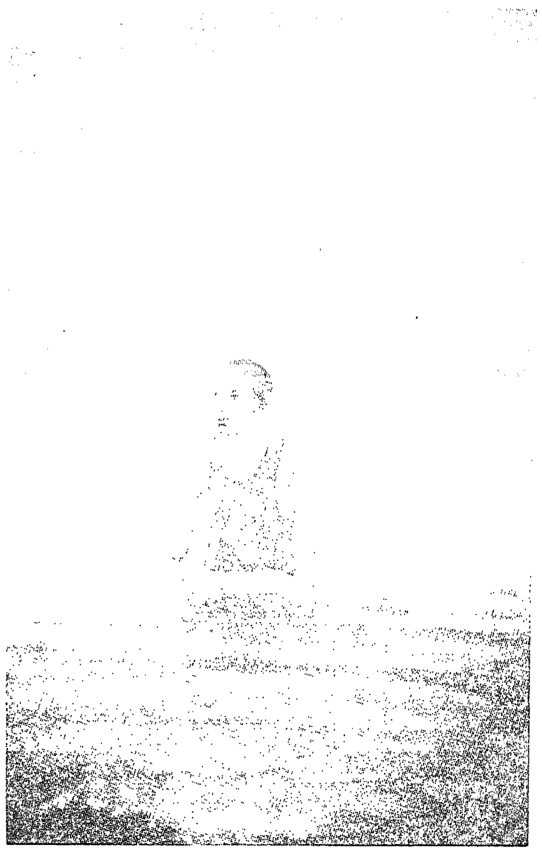

तैराक़ जवाहर

अरब राष्ट्रों से फिर से नाता जोड़ने जा रहा है। इंडोनेशिया के स्वतंत्रता के युद्ध में हिन्दुस्तान की गहरी दिलचस्पी रही है। हम आज उस देश को भी अपनी शुभ-कामनायें भेजते हैं।

पड़ोसी चीन, वह महान देश, जिसका अतीत महान था, आरंभ ही से हमारा मित्र रहा है। अब यह मित्रता और बढ़ेगी तथा निभेगी। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि चीन के घरेलू झगड़े शीघ्र ही समाप्त हो जायें, उस देश में एकता और प्रजातंत्र स्थापित हो जाय ताकि वह भी संसार में शांति और प्रगति के कार्य में हाथ बँटा सके।

हमारे लिए परमावश्यक कार्य उस कलह को मिटाना है जो आज हिन्दुस्तान में अपना बोल बाला किए हुए है। पारस्परिक झगड़ों से हम उस स्वतंत्रता का निर्माण न कर सकेंगे जिसका मुद्दतों से हमने स्वप्न देखा है। नाना प्रकार की राजनीतिक घटनाओं के बावजूद भी हम सब को यहीं रहना है और यहीं मिल कर गुजर करना है। हिंसा तथा घृणा से यह बात बदली नहीं जा सकती। ये कार्य भारत में होने वाले परिवर्तन को भी नहीं रोक सकते।

एटम-शक्ति

(पंडित नेहरू द्वारा)

परमाणु शक्ति की छान-बीन में फ़िलहाल हमको दूसरे देशों का अनुसरण भले ही करना पड़े किन्तु यह अनुसरण परिमाणु बम बनाने में न होगा। लेकिन इस मामले में हम किसी से पीछे नहीं रहना चाहते, क्योंकि यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि भावी दुनियां की रूप-रेखा निश्चित करने में यह परिमाणु शक्ति विस्तृत और प्रधान भाग लेगी। परिमाणु शक्ति द्वारा रचनात्मक कार्य किये जा सकते हैं, यानी इसे विध्वंसात्मक कार्यों में न लगा कर, रचनात्मक कार्यों में लगाया जा सकता है। इसके द्वारा उद्योग-धंधों का चाहे जहां तक विकास हो सकता है।

पिछले महीनों में भारत के विभिन्न भागों में जो बहुत सी अन्वेषण-शालायें खोलने की योजनायें बनाई गई हैं, उनमें से बहुतों को मैंने पढ़ा है और बहुतों की गति विधि पर नज़र भी रक्खी है। मेरी समझ में आजकल की हलचलों में सब से महत्वपूर्ण कार्य इस तरह की योजनाओं का प्रारंभ करना है, क्योंकि यही विशाल भारत के भावी विकास की नींव है।

भारत की द्रुततर प्रगति में धन की कमी के कारण उतनी रुकावट पैदा नहीं हुई है जितनी योग्य व्यक्तियों के अभाव के कारण। हम धन के अभाव की बहुत ज़्यादा शिकायत करते हैं किन्तु आदमी जब कोई काम करने पर उतारू हो जाता है तब धन की कमी नहीं रहती। युद्ध के लिए क्या कभी धन की कमी पड़ी है? सिर्फ रचनात्मक कार्य-क्रम के लिए ही धन की कमी की बात कही जाती है। मेरा विचार है कि जिन योजनाओं से भारत का विकास होना हो, उनके लिए धन की कमी हर्गिज़ नहीं होना चाहिए।

केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी में एम० एस० सी० की डिग्री प्राप्त करते समय

व्यक्तियों को कार्य के लिए उपयुक्त बनाने के लिए बहुत कुछ करना है, लेकिन जिन्हें हम कार्य की शिक्षा दे रहे हैं उन्हें कार्य शिक्षा के समय भी काम करने का मौक़ा देना चाहिए।

भारत में हमारे देश और देश-वासियों के संबंध में प्रमाणिक आंकड़ों और सूचनाओं का काफ़ी अभाव है। लेकिन जब तक ये आंकड़े एकत्रित न कर लिये जायँ तब तक हम कार्य न करें यह नहीं हो सकता। हम जो भी कार्य करें हमें बड़े पैमाने पर चालक-शक्ति चाहिए। अतएव हमको देश की चालक-शक्ति को बढ़ाना होगा। इस समय हमारे देश में चालक-शक्ति बहुत कम है, पर हमारे देश में चालक-शक्ति प्राप्त करने के विस्तृत और बड़े बड़े श्रोत हैं। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि भारत इस मामले में संसार के समस्त देशों से समृद्ध है। असलियत यह है कि सब चीजें हमारे पास हैं, उन्हें प्राप्त कर कार्य में लगाने का सवाल है।

मैं मानता हूँ कि भारत में फिलहाल हमें बहुत सी दिक्कतों का सामना करना है, लेकिन मैं यह नहीं मानता कि हम उन दिक्कतों से जल्दी छुटकारा नहीं पा सकते। मैं दिक्कतों की चर्चा करता हूँ तो मेरा मतलब सिर्फ़ टेकनिकल दिक्कतों से ही नहीं होता, बल्कि उन अनेक तरह की दिक्कतों से भी होता है जिन्हें वैज्ञानिक नहीं सोचते किन्तु उनके बारे में मुझे काफ़ी सोचना पड़ता है। सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि देश में हम जो कुछ करते हैं उसकी देश की जनता पर क्या प्रतिक्रिया होती है? जब तक जनता की सद्भावना और सहानुभूति हमारे साथ न होगी हम अधिक आगे न बढ़ सकेंगे। जनता हमें ब्रेक की तरह रोक देगी। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम जो कुछ भी करते हैं, वह देश की जनता को बतलायें और समझायें।

बहुत से लोग जो सामाजिक आचार-विचार और रहन-सहन के सम्बन्ध में सीमित हैं और पुराने दृष्टिकोणों को अपनाये हुए हैं उन्हें विज्ञान ने पहले भी कुछ हद तक देवताओं के त्रास से मुक्त किया है। लेकिन इस मामले में अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है और विज्ञान हमारी इस में सहायता करे यह हम जरूर चाहेंगे। लेकिन देवी-देवताओं के भय से भी अधिक भयंकर और एक भय है। वह भय स्वयं आदमी का अपना भय है। इस मामले में भी विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण सहायक हो सकते हैं।

कभी कभी मैं सोचता हूँ, विशेष कर तब जब विकसित भारत की मनोरम तस्वीर अपने सामने खींचता हूँ, कि काश मैं अधिक जवान होता। मेरे सामने भारत की वह तस्वीर रहती है जब कि उसके युवा और युवतियां आने वाले महान भारत को गढ़ रहे हैं, जिसका हम स्वप्न देख रहे हैं। फिर भी राष्ट्र-गठन के कार्य में भाग लेना काफ़ी गौरवजनक है; बहुतों को इससे काफ़ी संतोष मिला है। इस महान कार्य में थोड़ी बहुत सहायता कर सकने का आनंद मुझे आन्दोलित कर देता है।

अन्वेषण-शाला के मुहूर्त में शामिल होने के लिए आये हुए श्रमिक और सर्व साधारण को सहायक होना चाहिए। इस अन्वेषण-शाला का लक्ष्य भारत की दरिद्रता दूर करना है। सब का सहयोग और सहानुभूति वांछनीय है।

(३१ मार्च, १६४७ को पंडित नेहरू ने दिल्ली में समस्त एशिया के राष्ट्रों का एक सम्मेलन आमंत्रित किया था। एशिया के इतिहास में यह एक नई और अभूतपूर्व घटना थी। इस सम्मेलन के उद्घाटन के समय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने निम्नलिखित भाषण किया था।)

संयुक्त राष्ट्रों द्वारा यह प्रयत्न किया जा रहा है कि संसार में स्थायीरूप से शान्ति रहे। परन्तु संसार में स्थायी शान्ति तब तक असम्भव है जब तक एशिया में शान्ति स्थापित न हो जाय। यदि हम संसार में शान्ति चाहते हैं तो गुटबंदी से दूर रह कर हमें संसार के और विशेषतः एशिया के देशों का संगठन करना होगा और संकुचित राष्ट्रीयता से दूर रहना होगा। यद्यपि प्रत्येक देश के निजी मामलों में राष्ट्रीयता के लिए स्थान है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विकास के मामलों में राष्ट्रीयता के लिए कोई स्थान नहीं है। राष्ट्रीयता का प्रत्येक देश के जीवन में एक विशिष्ट स्थान है और प्रत्येक देश के व्यक्तिगत मामलों में राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देना सर्वथा उचित है परन्तु किसी देश की राष्ट्रीयता को इतना उग्ररूप नहीं धारण करना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय विकास में वह रोड़े अटका सके।

इस समय हम प्राचीन युग को समाप्त कर नवीन युग के द्वार पर खड़े हैं। एशिया ने दीर्घकालीन स्थिरता के उपरान्त सहसा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। एशिया के इस महाद्वीप ने, जिसमें मिश्र इत्यादि सभी देश शामिल हैं मानवता के विकास में अपना प्रमुख योग दिया है। वह एशिया ही है जहां सभ्यता का जन्म हुआ था और जहां के निवासियों ने मानव जीवन के अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य किये हैं। यहीं मानव मणि ने अनवरतरूप से सत्य का अनुसंधान किया था और मानवता की आत्मा आकाश दीप की भांति इसने

वेग से प्रज्वलित हुई थी कि उसने संपूर्ण संसार को प्रकाशमय कर दिया था। परन्तु कालान्तर में वही एशिया, जहां से सभ्यता और संस्कृति की प्रचंड धारायें समस्त दिशाओं में प्रवाहित हुई थीं, क्रमश इनक्लाब से हट गया और उसका समस्त विकास रुक गया। इसका परिणाम स्वभावतः यह हुआ कि अन्य महादेशों और विशेषतः यूरोप के लोग शक्ति-सम्पन्न होकर रंग-मंच पर आ चमके और उन्होंने विश्व के समस्त देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और वह महादेश एशिया, यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए अखाड़ा बन गया। यही नहीं शनैः शनैः दशा यहां तक पहुँची कि यूरोपीय देशों ने एशियाई देशों का मनमाना शोषण किया और एशिया यूरोप का क्रीड़ा-स्थल बन गया। परन्तु अब समय ने फिर पलटा खाया है। एशिया अपनी पूर्व स्थिति पर पहुँचने के लिए कटिबद्ध हो गया है। यूरोप और अमेरिका के नियंत्रण और बंधन से मुक्त होकर वह अपने समस्त साधनों का उपयोग अपने देशों के निवासियों के लिए चाहता है।

ऐसे महान अवसर पर हम लोग यहां एकत्र हुए हैं और निस्संदेह भारतवासियों के लिए यह महान गौरव का विषय है कि उन्हें दूर देशों से आए हुए अपने सहयोगी एशियावासियों का स्वागत करने और उनसे वर्तमान एवं भविष्य के सम्बन्ध में परामर्श करने का अवसर मिला।

यूरोप और अमेरिका को आश्वासन देते हुए नेहरू जी ने कहा "किसी राष्ट्र-विशेष के विरुद्ध हमारी कोई योजना नहीं है। हमारी महान योजना का लक्ष्य विश्व में सुख, शान्ति, उन्नति और समृद्धि का साम्राज्य स्थापित करना है। हमारा विचार अपने पैरों पर खड़े होने तथा उन अन्य लोगों को सहयोग प्रदान करने का है, जो हमारा साथ देने को तैयार हों।

एशियाई-सम्मेलन के सम्बन्ध में नेहरूजी ने कहा "इस सम्मेलन में न तो कोई नेता है और न कोई अनुयायी। समस्त एशियाई देशों को समानरूप से समान कार्य के लिए एक साथ कार्य करना है। भारत भी एशिया के विकास में महत्वपूर्ण भाग लेना चाहता है। यद्यपि भारत स्वतः अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता है किन्तु इस तथ्य के बावजूद वह एशिया में काम करने वाली अन्य शक्तियों के साथ कार्य करने को कटिबद्ध है। और वह एशिया की प्रगति में महत्वपूर्ण भाग लेगा।

विश्व इतिहास के इस संकटकाल में एशिया को अनिवार्यरूप से महत्वपूर्ण कार्य करना है। अब एशियाई देशों को कठपुतली बना कर यूरोप और अमेरिका अपना कार्य नहीं सिद्ध कर सकते। एशियावासियों को विश्व के मामलों में अपनी नीति स्वयं ही निर्धारित करनी है। हम एशियावासी स्वयं ही अपनी तकलीफों से पीड़ित हैं, किन्तु फिर भी संपूर्ण एशिया की आत्मा एवं दृष्टिकोण शान्तिमय है और अन्तराष्ट्रीय मामलों के क्षेत्र में आकर एशिया विश्व-शान्ति की स्थापना के संबंध में अपना गहरा प्रभाव अवश्य डालेगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

संसार में स्थायी शान्ति तभी हो सकती है, जब समस्त संसार के सभी राष्ट्र स्वतंत्र हो जायँ और सभी प्राणियों

को स्वतंत्रता एवं व्यक्तिगत सुरक्षा प्राप्त हो। अतः शान्ति तथा स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करते समय हमें सभी लोगों के राजनीतिक एवं आर्थिक पहलुओं पर भी ध्यान देना होगा। एशिया के देश बहुत पिछड़े हुए हैं और उनके जीवन का मान अन्य महादेशों के लोगों के समान नहीं है। इन असमानताओं के प्रश्न को हमें तत्काल हल करना होगा। हमें सभी मनुष्यों के लिए समान आदर्श रख कर अपने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचे को खड़ा करना होगा, ताकि वे उन समस्त भारों से मुक्त हो जायँ, उनसे जिनका व्यक्तित्व दबा हुआ है।

इस समय एशिया में हम सर्वत्र कष्टों और मुसीबतों का सामना कर रहे हैं। भारत में भी झगड़े-फ़साद का वातावरण क़ायम है। परन्तु इससे हमको हतोत्साह नहीं होना चाहिये। महान-संक्रान्ति काल में ऐसी घटनाओं का होना स्वाभाविक है। एशिया के लोगों की नसों में अब नव-स्फूर्ति संचारित हो गई है। जनता जाग्रत अवस्था में है और अपना वैध-अधिकार मांग रही है। समस्त एशिया में परिस्थितियां अत्यन्त गंभीर हैं, किन्तु हमें उनसे भयभीत नहीं होना चाहिये। उनका स्वागत करना चाहिये, क्योंकि उन्हीं के सहारे हमको नव-एशिया का निर्माण करना है।

एशियाई सम्मेलन बड़ा महत्वपूर्ण है। एशिया बहुत बड़ा महाद्वीप है और यद्यपि उसके विभिन्न भाग एक दूसरे से बहुत भिन्नता रखते हैं किन्तु फिर भी इनमें एक ऐसा समान भाव है जिसने सब को एक दूसरे के साथ बांध रक्खा है। जिसका प्रमाण यह है कि एक साधारण निमंत्रण पर एशियाई देशों के इतने अधिक प्रतिनिधि यहां आकर एकत्र हो गये।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सम्मेलन से भारत में बड़ा उत्साह पैदा हुआ है। सम्मेलन में राजनीतिक मामलों पर विचार हुआ है। इस सम्मेलन के फलस्वरूप एशियाई सम्बन्ध-सम्मेलन नामक एक संस्था स्थापित हुई है। मुझे आशा है यह संस्था बराबर उन्नति करेगी।

भारत और एशिया के अन्य देश इस समय सभी तरह की कठिनाइयों से गुज़र रहे हैं, परन्तु सभी जगह महान रचनात्मक शक्तियां काम कर रही हैं। भारत को पंजाब तथा अन्य स्थानों के भयानक उपद्रवों के कारण वहां से आये हुए ३० लाख शरणार्थियों को फिर से बसाने और उनके लिए सभी व्यवस्थायें करने का काम करना पड़ा है और लगभग इतनी ही संख्या में भारत से मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने का प्रबंध करना पड़ा है। यह कार्य ऐसा था जिसमें भारत सरकार को बहुत शक्ति और साधन लगाने पड़े हैं।

एशिया ने प्राचीन समय में अनेक महत्वपूर्ण काम किये हैं। इधर पिछले ३०० वर्षों से उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। एशिया के सभी बड़े और छोटे देश अंगड़ाई ले रहे हैं और उस स्थित पर पहुँच रहे हैं जबकि पश्चिम के देश एशिया को अलग रख कर कोई भी समस्या हल नहीं कर सकते।

वैरिस्टर नेहरू

'वे कर्मयोगी हैं'

श्री कैलाश नाथ काटजू

प्रयाग का रहने वाला न होने के कारण मेरा और जवाहरलाल नेहरू का सम्पर्क उस समय हुआ जिस समय सन् १६१४ में इलाहाबाद हाईकोर्ट में मैंने अपनी वकालत शुरू की । उन्होंने दो वर्ष पहिले वकालत शुरू करदी थी । जहां तक मुझे याद है प्रत्येक व्यक्ति जवाहरलाल नेहरू के विषय में ऊँची बातों की भविष्यवाणी करता था । मैं और जवाहरलाल नेहरू उस समय भिन्न प्रकार के जीवन व्यतीत करते थे । उनका संसार 'आनन्द-भवन' था और मैं एक छोटे से बँगले में रहता था । हम लोग अदालत में मिलते थे और बहुत से मुक़दमों को हम लोगों ने मिल कर किया था । उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था, लेकिन राजनीति उन्हें प्रारम्भ ही से अदालत के बाहर खींच रही थी । ज़लियान वाले बाग़ के मार्शल-ला के कारण अदालत ने एक बहुत बड़ा वकील खो दिया ।

उन्होंने अपने को सर्व प्रथम होमरूल-आन्दोलन में लगाया । इस आन्दोलन में जी-जान से लग गये । यद्यपि उनके राजनीतिक कामों का तरीक़ा पुराने ढंग से बिलकुल भिन्न था फिर भी वे शीघ्रता से आगे बढ़ रहे थे । रौलटबिल और पंजाब की दुखद घटनायें एक के बाद एक हुई और जवाहरलाल इस तूफ़ान में कूद पड़े । वे भारतवर्ष के सार्वजनिक जीवन के अगुआ बन गये और हम लोग प्रयाग में रह कर उन्हें गर्व और स्नेह की दृष्टि से देखने लगे । मैं कभी कभी उनके साथ भिन्न भिन्न कांग्रेस कमेटियों में काम करता था । उनका कोई भी कार्य छिपा न होता था ।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि उन्होंने इतनी जल्दी देश के नवयुवकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया ; नौजवान नेहरू सभी नौजवानों के प्राण बन गये और स्वयं उनकी अवस्था इस विषय में विचारणीय

नहीं रही। वे इस समय ६० वर्ष के हैं किन्तु अब भी उनमें वही जवानी मालूम पड़ती है तथा अब भी विश्व भर में वे नौजवानों के नेता माने जाते हैं।

जवाहरलाल में कुछ बड़ी विशेषतायें हैं; ईमानदारी, निस्स्वार्थ सेवा और आत्मबल उनमें विशिष्टरूप से हैं। वे राजकुमारों की भांति पाले गये हैं। उन्होंने ऊँचे सामन्तशाही स्कूल में इंगलैंड में शिक्षा पाई है। बचपन से ही वे पाश्चात्य ढंग का जीवन व्यतीत करने के आदी रहे हैं। इस सम्बन्ध में उनकी तुलना गौतम बुद्ध से की जा सकती है। गौतम के पिता ने सदैव इस बात की प्राणपण से चेष्टा की कि उनका पुत्र सिद्धार्थ न बीमार हो, न और न मृत्यु को प्राप्त हो। इनके पिता चाहते थे कि वे जीवन भर रँगरेलियों में मस्त रहें। किन्तु गौतम बुद्ध ने मानव-कल्याण के लिए घर-द्वार, धन और सुख सभी का त्याग कर दिया। इसी प्रकार पंडित नेहरू ने प्रपीड़ित, शोषित और ग़रीबी से आर्द्र किसानों की करुण आवाज़ सुनी, और उनकी पुकार पर उन्होंने अपनी वकालत, आराम, सुख सभी कुछ छोड़ दिया जिसके पाने के लिए उस अवस्था के लोग लालायित रहते हैं। यह विख्यात कथा है। यह बात नहीं है कि जवाहरलाल जीवन की इन बढ़िया चीज़ों को पसंद नहीं करते—वे साफ़ सुथरे और ऊँचे ढंग से रहना पसंद करते हैं; उन्हें साधारण जीवन पसंद नहीं है; वे गांव में रहना पसंद नहीं करते। किंतु महात्मा गांधी की भांति उनका हृदय किसानों के लिये भटकता है। किसान भी उन्हें अपने उद्धारक की दृष्टि से उसी प्रकार उनकी ओर देखते हैं और उनसे ऐसा चिपटना चाहते हैं जैसे एक डूबने वाला अपने बचाने वाले के चिपटता है। मुक्ति दिलाने की भावना ने ही उन्हें भारतीयों का इतना प्रिय-पात्र बना दिया है। भारत में त्याग का महत्व है। जवाहरलाल नेहरू ने उनके लिए प्रत्येक वस्तु का त्याग किया है, अतएव किसानों के हृदय में उनकी मूर्ति सदा के लिए घर कर गई है। यह एक महान अनुभव की बात है कि जब पंडित नेहरू बोलते हैं तो भारतीय श्रोता, विशेष कर किसान, उनके मुँह की ओर बराबर एक विचित्र भाव से देखते रहते हैं। वे उनकी ओर इस प्रकार देखते हैं जैसे कोई फ़रिश्ता उनकी बुराइयों को दूर करने का संदेश दे रहा हो। वे बार बार जेल गये हैं; और प्रत्येक बार जब वे स्वतंत्र हुए हैं और लोगों के बीच पहुँचे हैं तो लोगों की उनके प्रति स्नेह-धारा सी बहने लगी है। मेरा विचार है कि गांधी जी को छोड़ कर संसार में ऐसा कोई धार्मिक भविष्यवक्ता या भारत में शिक्षक नहीं हुआ जिसके प्रति लोगों में इतना व्यक्तिगत स्नेह उत्पन्न हुआ हो।

यद्यपि यह कुछ अजीब सी बात मालूम होगी, किन्तु संभवतयः यह बिल्कुल सत्य है कि यदि तुम जवाहरलाल नेहरू से यह कहो कि 'आप एक धार्मिक व्यक्ति हैं', तो वह पूर्णरूप से असहमत होंगे। मैं उनके धार्मिक-विश्वासों को ठीक ठीक नहीं बता सकता। वे तार्किक भी हो सकते हैं और मानव-धर्म पर विश्वास करने वाले हो सकते हैं। किन्तु धर्म, अपने साधारणरूप में, पंडित नेहरू को प्रभावित नहीं करता। न वे मंदिर में जाते हैं और न प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं। वे अपने भाषणों में सर्व शक्तिशाली ईश्वर, दैव तथा अन्य देवताओं की दुहाई देना अधिक पसंद नहीं करते। जहां तक मैं समझता हूँ वे यह समझते हैं कि ईश्वर का कार्य कुछ और ही है तथा हमको

वैधानिक वेष भूषा

छोटी छोटी बातों में जबरदस्ती उसका नाम न लाना चाहिये। यदि ऊँचे भावों पर सोचा जाय तो वे निश्चितरूप से एक धार्मिक व्यक्ति हैं। भगवद्‌गीता के अनुसार, निरंतर कर्म में लीन रहना जिससे दूसरों का उपकार हो, किसी व्यक्ति विशेष की महत्वाकांक्षा, सुख और चिन्ता के प्रति उदासीन रहना, और बिना फल की आशा से कर्म करना ही सब से बड़ा धर्म है, और इन विशेषताओं को देखते हुए पं० नेहरू एक धार्मिक व्यक्ति ही हैं। वे निरंतर कर्म करने के साकाररूप हैं; वे विश्राम करना नहीं जानते। कर्म करते रहना उनका स्वभाव ही है। वे स्वार्थ से घृणा करते हैं। उनकी शक्ति अपूर्व है और उसका प्रयोग वे निस्स्वार्थ कर्म में करते हैं। उनका कर्म का उद्देश्य केवल भारत के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करना है।

मेरे विचार से जवाहरलाल कर्मयोगी हैं। यह हो सकता है कि वे पूर्णरूपेण कर्मयोगी न हों। वे अपनी पसंद का काम न होते देख कर उत्तेजित हो उठते हैं; निस्संदेह वे कतिपय बातों से घृणा भी करते हैं। उनकी ये कमजोरियां देश भर में प्रसिद्ध हैं। दुर्व्यवहार और अनियंत्रण देख कर वे अपना धैर्य्य खो देते हैं और उसके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई कर बैठते हैं तथा उत्तेजक भाषा का प्रयोग भी कर देते हैं। किन्तु यह सब क्षणिक होता है और वे शीघ्र ही प्रसन्नता प्रकट करते हुए मैत्री भाव प्रदर्शित करने लगते हैं।

वे हमारे बीच में एक महान अन्तर्राष्ट्रीय विचार रखने वालों में से हैं। जब हम लोग केवल भारत-संबंधी समस्याओं में लीन रहते हैं, तब वे ऊँचे दृष्टिकोण के साथ सांसारिक घटनाओं पर विचार करते हैं तथा उस ऊँचे सम्बन्ध के विषय में सोचते हैं जिससे हम बंधे हुए हैं। उनके समान दूरदर्शी व्यक्ति संसार में कम होंगे जो आने वाली घटनाओं का अनुमान ठीक ठीक लगा लेते हैं। उन्होंने बड़ी-बड़ी यात्रायें की हैं, तथा अमेरिका और यूरोप के प्रमुख व्यक्तियों से जितना सम्पर्क क़ायम रखा है उतना भारतवर्ष से कदाचित किसी ने भी नहीं। मेरा विश्वास है कि वे उन तीन प्रसिद्ध भारतीय व्यक्तियों से हैं जिन्हें विश्व-ख्याति प्राप्त है और सर्वत्र प्रसिद्ध हैं—मेरा अभिप्राय तीन व्यक्तियों से महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा जवाहरलाल नेहरू का है।

स्वतंत्र भारत की घोषणा

(१५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतंत्र हो गया । लगभग २०० वर्षों की परतंत्रता के बाद स्वतंत्र हुए देश के प्रथम प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू हुए । युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले सेनापति को ही शासन और निर्माण का काम देश ने सौंप दिया । प्रधान मंत्री की हैसियत से दिये गये पंडित जवाहरलाल नेहरू के संदेश को हम नीचे दे रहे हैं ।)

हिन्दुस्तान गहरी नींद तथा संघर्ष के बाद आज जाग्रत तथा स्वतंत्र होकर खड़ा हुआ है । अतीत की कुछ बातें अभी तक हमारे साथ हैं, और हमने जो प्रतिज्ञायें पिछले दिनों में की हैं उन्हें पूरी करने के लिए हमको अभी बहुत कुछ करना है । हमारे लिए इतिहास फिर नये सिरे से प्रारम्भ हो रहा है । हम भविष्य में जिस प्रकार रहेंगे, और कार्य करेंगे उसे भावी इतिहासकार लिखेंगे ।

आज का दिन हमारे लिए, एशिया के लिए तथा सारे संसार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आज एक नये नक्षत्र का जन्म हो रहा है । एक नई आशा साकार हो गई है तथा हमारा बहुत दिनों का स्वप्न आज पूरा हो रहा है । हमारी यह इच्छा है कि यह नक्षत्र कभी न डूबे तथा हमारी आशायें कभी नष्ट न हों ।

हमारी स्वतंत्रता काले बादलों से घिरी हुई है और हमारे बहुत से भाई दुःख और कष्ट में पड़े हुए हैं; हम कठिन समस्याओं से घिरे हुए हैं फिर भी हम स्वतंत्र हो जाने से प्रसन्न हैं । इस स्वतंत्रता के साथ साथ हमारे ऊपर उत्तरदायित्व भी आगया है । इस उत्तरदायित्व का वहन हमको एक स्वाधीन तथा अनुशासनशील राष्ट्र के सदृश करना है ।

आज हमारा ध्यान सब से पहिले इस स्वाधीनता के स्थापक, राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की ओर जाता है जिन्होंने भारतीय आत्मा की साकार प्रतिमा के रूप में स्वतंत्रता की मशाल सदा ऊँची रक्खी और हमारे चौमुखी

बैरिस्टर द्वय
(मोतीलाल जी और जवाहर)

अंधकार को दूर किया। हम उनके अयोग्य अनुगामी रहे हैं; उनके बताये हुए उपदेशों तथा उनके बताये हुए मार्ग से भटक गये हैं; परन्तु हम ही नहीं वरन् हमारी आगे आने वाली सन्तान भी भारत के इस महान पुत्र के संदेश को भविष्य में सदा हृदयगम रक्खेगी। राष्ट्र पिता गांधी जी द्वारा प्रज्ज्वलित की गई स्वतंत्रता की मशाल हम कभी बुझने न देंगे चाहे कितने ही तूफान क्यों न आजायें।

इसके बाद हमारा ध्यान स्वतंत्रता के उन अज्ञात सैनिकों की ओर आकर्षित हो जाता है जिन्होंने बिना किसी प्रशंसा या पुरस्कार की आशा के भारत की आमरण सेवा की है उन्होंने हंसते हंसते माता की चरणों पर अपने प्राण भेंट किये हैं।

हम अपने उन भाई-बहिनों को भी नहीं भूल सकते जो राजनीतिक सीमाओं द्वारा आज हमसे अलग हो गये हैं और दुर्भाग्यवश आज इस स्वाधीनता-समारोह में भाग नहीं ले सके हैं। वे हमारे हैं और चाहे जो भी हो हमारे बने रहेंगे। हम उनके दुःख और सुख के साथी रहेंगे।

भविष्य हमारी ओर देख रहा है। हम सर्वसाधारण को–किसानों और मजदूरों को–दरिद्रता, अज्ञान तथा रोगों से लड़ने के लिये एक समृद्ध लोक-तंत्रवादी तथा प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करेंगे। हम ऐसी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं का निर्माण करने के लिये जिससे प्रत्येक नर-नारी को सामाजिक न्याय मिल सके सदा आगे बढ़ेंगे और प्रत्येक दिशा में जीवन के स्तर को ऊँचा करेंगे। हमको कठिन श्रम करना है। हम जब तक अपनी प्रतिज्ञ पूरी न कर लेंगे तथा जब तक भारत की जनता को निर्दिष्ट स्थान पर न पहुँचा देंगे, कभी विश्राम न ग्रहण करेंगे

हम महान देश के नागरिक हैं। हमको शीघ्रता से आगे बढ़ना है। हमको उच्च आदर्शों का पालन करना है। हम चाहे जिस धर्म के अनुयायी हों पर हैं भारत माता की संतान। देश पर हम सबका समान अधिकार तथा दायित्व है। हम साम्प्रदायिकता तथा संकीर्णता को प्रोत्साहित नहीं कर सकते, क्योंकि जिस राष्ट्र के लोग संकीर्ण मनोवृति के होते हैं वह देश महान राष्ट्र नहीं बन सकता।

हम संसार के सभी राष्ट्रों के प्रति अपनी शुभकामना प्रकट करते हैं। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम शान्ति स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र को आगे बढ़ाने में उनके साथ हैं।

हम अपनी चिर पुरातन तथा चिर नवीन मातृभूमि को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि हम उसकी सेवा में अपना जीवन लगा देंगे।

आज इस अवसर पर हम अपने उन भाइयों को भी संदेश पहुँचाना चाहते हैं जो संसार के अन्य दूर देशों में बसे हुए हैं। आज सारे भारत में, समस्त एशिया में और सारे संसार में एक महत्वपूर्ण अवसर उपस्थित हुआ है। लम्बे काल के कष्ट सहन और बलिदान के बाद आज भारत स्वतंत्र हो गया है। आज भारत ही में नहीं सारे पूर्व में एक नया नक्षत्र उदय हो रहा है, संसार में एक नई आशा ने जन्म लिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन भारत-

विदेशों में रहने वाले अपने पुत्रों को स्नेहपूर्ण शुभ कामनायें भेज रही है। विदेशों में रहने वाला प्रत्येक भारतीय भारत का प्रतिनिधि है और उसे सदा याद रखना चाहिये कि देश की प्रतिष्ठा उसके हाथ में है। भारत-माता की कोई भी संतान चाहे वह जहां हो राष्ट्रीय-सम्मान अथवा अपनी स्वाधीनता के विरुद्ध कोई काम न करे। विदेशों में रहने वाले भारत के समस्त पुत्रों और पुत्रियों का यही कर्तव्य है कि वे अपनी स्वाधीनता की रक्षा करें और दूसरों की स्वाधीनता का सम्मान करें।

पण्डित नेहरू और थियोसफ़ी

जब वे ग्यारह वर्ष के थे तो उन्हें एक आयरिश अध्यापक श्री फर्डीनैंड ब्रुक्स पढ़ाने के लिये रक्खे गये। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने उन्हें पं० मोतीलाल नेहरू से कह कर रखवाया था। श्रीयुत ब्रुक्स पक्के थियोसोफिस्ट थे। उन्होंने पंडित नेहरू में पुस्तकें पढ़ने की आदत डाली तथा सुन्दर सुन्दर पुस्तकें पढ़ने के लिए दीं। सब से अधिक प्रभाव उन पर थियोसोफी का पड़ा। मिस्टर ब्रुक्स के कमरे में थ्योसोफिस्टों की साप्ताहिक बैठकें होती थीं। पंडित नेहरू भी वहीं बैठ कर उनके भाषण सुना करते थे। धीरे धीरे उनमें भी थियोसोफिस्ट विचार उत्पन्न होने लगे। उसमें आध्यात्मिकवाद और अवतार के संबंध में ही चर्चा होती थी। उसमें कर्म के सिद्धांत पर बहस हुआ करती थी। मैडम ब्लावाल्की तथा अन्य सुप्रसिद्ध थियासोफिस्टों के अतिरिक्त हिन्दू धर्म-संबंधी, बुद्ध के 'धम्म-पद' तथा अन्य विद्वानों की कृतियों पर भी बहस चलती रहती थी। पंडित नेहरू अधिक समय तो न पाते थे किन्तु उन्हें यह सब वार्तालाप बहुत प्रभावकारी और प्रिय मालूम पड़ता था। वे धीरे धीरे इन सिद्धान्तों को विश्व-रहस्य जानने की कुँजी समझने लगे। इस अध्ययन ने पंडित नेहरू के मस्तिष्क में हिन्दू-धर्म की विशालता बिठा दी। वे अपने को भी अपनी अवस्था वाले लड़कों से कुछ अधिक गंभीर और आगे समझने लगे।

उन्हीं दिनों श्रीमती ऐनी बेसेन्ट इलाहाबाद आईं और उन्होंने थियोसोफी के सिद्धान्त के संबंध में कई भाषण दिये। उनके व्याख्यानों का पंडित नेहरू पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी में सम्मिलित होने का दृढ़ निश्चय किया। उस समय उनकी अवस्था तेरह वर्ष की थी। उन्होंने पिता के पास जाकर अनुमति माँगी। पंडित मोतीलाल नेहरू उनकी बात सुनकर हँस दिये तथा उन्हें थियोसोफिकल सोसायटी का सदस्य बनने की आज्ञा दे दी। वे इस सोसायटी को कुछ अधिक मदद न देते थे। पंडित नेहरू को इस बात से बड़ा धक्का लगा। वे पिता में सब गुणों के होते हुए भी उनमें आध्यात्मिकता का अभाव अनुभव करने लगे।

पंडित मोतीलाल नेहरू बड़े पुराने थियोसोफिस्ट थे और वे उस समय उसके सदस्य थे जब मैडेम ब्लावास्की

भारत में थीं। धर्म की अपेक्षा उनके रहस्यमय चरित्र ने ही उन्हें थियोसोफी की ओर अधिक आकृष्ट किया था। वे शीघ्र ही उससे अलग हो गये। उनके बहुत से साथी अब भी सोसायटी के सदस्य थे तथा सोसाइटी की दृष्टि में आध्यात्मिक रूप से वे काफ़ी ऊपर उठे हुए समझे जाते थे।

जवाहरलाल इस प्रकार थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य होगये। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने स्वयं उन्हें शिक्षा दी थी। जवाहरलाल इस समारोह से अत्यन्त ही प्रभावित हुए थे। वे काशी में होने वाले थियोसोफिकल सम्मेलन में भी सम्मिलित हुए थे और उन्होंने कर्नल आलकाट को भी देखा था। उनके सुन्दर सी डाढ़ी थी।

पंडित नेहरू ने यह स्वीकार किया है कि यद्यपि मैं उस समय तेरह वर्ष का था, किन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि थियोसोफिकल सोसाइटी का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा उससे मेरी भावनायें ऊँची उठीं।

मि० ब्रुक्स के जाते ही उनका सम्बन्ध सोसाइटी से विच्छेद-सा होगया। विलायत पढ़ने के लिए इंगलैंड चले गये। उनका मत है उसके बाद थियोसोफिस्टों के प्रति मेरी भावना ऊँची न रही क्योंकि उनमें बलिदान और त्याग की अपेक्षा आरामतलबी की भावना अधिक है किन्तु श्रीमती बेसेन्ट का मैं सदा प्रशंसक रहा।

'मैं व्यक्ति से अधिक हूँ'

—नेहरू

(गोरखपुर की अदालत में नेहरू का बयान)

मेरी स्पीचों की जो रिपोर्टें पेश की गई हैं उनमें जो ग़लतियां बतलाई जाती हैं उनके विषय में मैं कोई सफ़ाई पेश करना नहीं चाहता। इसका अर्थ यह है कि रिपोर्ट फिर से लिखी जाय। इससे आपका और मेरा दोनों ही का वक़्त बरबाद होगा। मैं अपने बचाव के लिए कुछ नहीं कहना चाहता; मैं जो कुछ भी कहूँगा उससे आपका कार्य कुछ सरल ही हो जायगा। मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि मेरे खिलाफ़ कौन-सा अभियोग है मुझे यह मालूम हुआ कि वह अभियोग भारत सुरक्षा आर्डीनेंस से संबंधित है। वह युद्ध के संबंध में है जिसमें कहा गया है कि जनता को उसकी मर्जी के खिलाफ़ युद्ध में न घसीटा जाय। अगर मेरे ऊपर यही अभियोग लगाया गया है तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। इसको सिद्ध करने के लिए व्यर्थ की लिखी गई रिपोर्ट की क्या आवश्यकता है। कांग्रेस का प्रस्ताव तो स्पष्ट है। मैं उस प्रस्ताव को मानता हूँ और उस पर चलना अपना कर्तव्य समझता हूँ, मैं इस संदेश को देश-वासियों के सामने रखना चाहता हूँ।

कांग्रेस ने यदि मुझे या श्री विनोबा भावे को इस कार्य के लिए चुना है तो अपना निज का मत प्रकट करने के लिए नहीं। हम उनके प्रतीक हैं जो मुल्क के लिए बोलते हैं। हमारा व्यक्तित्व साधारण समझा जा सकता है किन्तु जनता के प्रतिनिधि की हैसियत से हमारा स्थान बहुत ऊँचा है। उन्हीं लोगों के नाम पर हमने उनकी स्वतंत्रता के अधिकारों पर ही ज़ोर देकर कहा है कि उन्हें अधिकार है कि वे स्वयं फैसला करें कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है। कोई भी व्यक्ति या उनसे बनाया हुआ दल जिसे भारतीयों ने अधिकार नहीं दिया है और न वह यहां की जनता के प्रति उत्तरदायी ही हैं, अपना निर्णय जनता पर नहीं लाद सकता। यह और भी मज़ेदार बात है कि ऐसे कार्य को आत्म-निर्णय और प्रजातंत्र के नाम पर किया जा रहा हो। हम स्वयं अपने निर्णय पर आ रहे थे, हमने बातचीत द्वारा एक सम्मानपूर्ण समझौते के लिए भरसक प्रयत्न किया। हमने असफल होकर ही यह निर्णय

किया है। हम ब्रिटिश सरकार के, जिनके बंधन में हम अब तक हैं, साम्राज्यवादी शोषण को कभी स्वीकार नहीं कर सकते, उसका नतीजा कुछ भी क्यों न हो।

भारत में बहुत से लोग हैं, भारतीय भी अँग्रेज भी, जो सदैव मेरी तरह फासिज्म और नात्सीवाद के विरुद्ध रहे हैं। मैं स्वाभाविकतः फासीज्म और नात्सीवाद के विरुद्ध रहा हूँ और मैंने इस संबंध में ब्रिटिश सरकार की फासीज्म-प्रियता तथा उसकी खुशामद की नीति की अलोचना की है। मैंने देखा है कि किस प्रकार मंचूरिया-आक्रमण, अबीसीनिया, स्पेन और चीन के साथ केवल नाजियों को प्रसन्न करने के लिए ही विश्वासघात किया है तथा किस प्रकार देशों की स्वतंत्रता को कुचला गया है। किन्तु मैंने अनुभव कर लिया है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद की नींव खोखली और कमजोर पड़ गई है।

जब तक नाजियों को प्रसन्न करने की नीति का संबंध मंचूरिया, अबीसीनिया, जेकोस्लोवाकिया, स्पेन के साथ था, तब तक ब्रिटेन के प्रधान मंत्री उसका अनुसरण करते रहे, लेकिन जब यह आफ़त उनके सिर पर पहुँच गई और ब्रिटिश साम्राज्य के लिए स्वयं खतरा पैदा हो गया, तब स्वयं उन्होंने युद्ध-घोषणा कर दी। अब ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए दो ही रास्ते हैं। या तो वह अपने पुराने रवैये को जारी रक्खे या साम्राज्यवाद का अंत करके वह विश्व की स्वतंत्रता और क्रांति का अगुआ बने। उन्होंने पहिला ही रास्ता चुना है, किन्तु बात वे विश्व-स्वतंत्रता की करते हैं जो केवल यूरोप तक ही सीमित है। इससे अभिप्राय यही है कि उनका साम्राज्य चिर-स्थायी रहे।

भारत में युद्ध-कालीन सरकार का एक वर्ष देखा। धारा सभायें स्थगित करदी गई हैं तथा गिरे हुये ढंग की शासन-प्रणाली को चालू कर दिया गया है। प्रेस की स्वतंत्रता कुचल दी गई है। यदि आने वाली स्वतंत्रता की यही भूमिका है तब जब इंगलैंड एक फासिस्ट राज्य हो जायगा तब उसकी क्या दशा होगी?

युद्ध द्वारा विनाश का प्रारम्भ हो गया है। जिन्हें इस युद्ध में कष्ट उठाना पड़ रहा है उनके साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। जब तक वर्तमान प्रणाली को अन्त कर देना ही इस युद्ध का उद्देश्य न होगा, और प्रस्तावित प्रणाली का उद्देश्य नयी व्यवस्था के आधार पर स्वाधीनता न होगी तब तक इसी प्रकार के युद्ध होते रहेंगे और सर्वनाश जारी रहेगा।

मैं इसीलिये कहता हूँ कि हमको युद्ध से अलग ही रहना चाहिए तथा हमारे देश-वासियों को इस युद्ध में धन और जन किसी प्रकार से भी युद्ध-प्रयत्नों में सहायता न करना चाहिये। यह हमारा कर्तव्य है। युद्ध के लिए जिस प्रकार जबरन जनता से धन वसूल किया गया है उसे हम कभी भूल नहीं सकते। कोई भी आत्म-सम्मान रखने वाला व्यक्ति इस प्रकार की जबरदस्ती सहन नहीं कर सकता। भारतीय जनता कभी इसे बरदाश्त न कर सकेगी।

मैं आपके सामने इस राज्य के विरुद्ध कुछ अपराध करने के कारण व्यक्तिगतरूप से खड़ा हूँ। आप इस राज्य के प्रतीक हैं, लेकिन मेरी हैसियत एक व्यक्ति से अधिक है। मैं भी इस समय भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधि की

बैरिष्टर जवाहरलाल

हैसियत से खड़ा हूँ। इस राष्ट्र ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अलग होने का निर्णय कर लिया है; उसका संकल्प भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने का है। आप मुझ में करोड़ों भारतीयों को देखें।

आज मैं आपके सामने अभियुक्त की हैसियत से खड़ा हूँ किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद स्वयं विश्व की अदालत के सामने अभियुक्त बना खड़ा हुआ है। आज संसार की शक्तियां अदालत के क़ानूनों से अधिक शक्ति रखती हैं।

विश्व का भावी इतिहास कहेगा कि इस सुप्रीम अदालत के सामने ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटेन की जनता हार गयी क्योंकि वह बदलती हुई 'दुनियां के साथ न चल सकी। इतिहास इस कमज़ोरी के कारण गिरने वाले साम्राज्यों पर हँसेगा। इससे कुछ खास कारण और खास परिणाम निकलते हैं। हमको कारण मालूम हो चुका है। उसका परिणाम शीघ्र ही सामने आने वाला है।

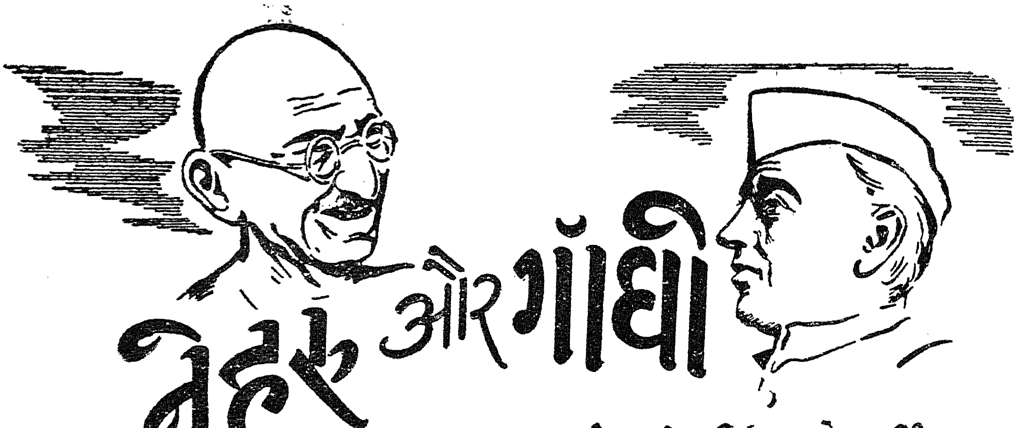

नेहरू और गाँधी

श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी

कदाचित भारतवर्ष महात्मा गांधी को कभी न भूल सकेगा। जो कुछ उन्होंने देश को दिया है वह भुलाया नहीं जा सकता। जवाहरलाल नेहरू देश के भविष्य का संचालन करेंगे। स्वातंत्र्य-संग्राम के दो ही लक्ष्य हैं—किसानों की हित-रक्षा तथा सर्व साधारण की स्वतंत्रता। इस सम्बन्ध से जवाहरलाल नेहरू हमारे उपदेशक हैं। उन राजनीतिज्ञों पर जिन पर देश के पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्णय आकर पड़ेगा जवाहरलाल नेहरू नेत्रत्व करेंगे।

इस देश की जनता महात्मा गांधी को पूजती है, पंडित जवाहरलाल नेहरू को देख कर हर्ष-ध्वनि करती है तथा उन लोगों के प्रति वफ़ादारी प्रकट करती है जो लोग जेल में हैं या जिन पर दमन किया जाता है। जनता देश पर प्राण देने वाले के प्रति श्रद्धा प्रकट करती है तथा सुभाष बोस और इण्डियन नेशनल आर्मी के संचालकों की प्रशंसा के पुल बांधती है।

कांग्रेस के लखनऊ के अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने प्रथम बार समाजवाद का संदेश दिया था। इसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा था। इस बात को लेकर देश में उत्साह की धूम मच गई। इस विषय में प्रचार के लिए न जाने कितनी पुस्तकें लिखी गईं तथा शिक्षित भारतीयों ने इसका गहरा अध्ययन भी किया। संसार के अन्य देशों में भी इसकी चर्चा हुई। कांग्रेसी संस्थाओं में भी नवजीवन का संचार होने लगा। इस बात को लेकर आल इंडिया कांग्रेस-कमेटी ने लोगों को वैदेशिक, आर्थिक और राजनैतिक शिक्षायें देने का काम सँभाला। छोटे से छोटे गांव में भी एक कांग्रेस कमेटी की स्थापना हो गई जिसके द्वारा कांग्रेस का संदेश और स्वतंत्रता की भावना का प्रचार किया गया।

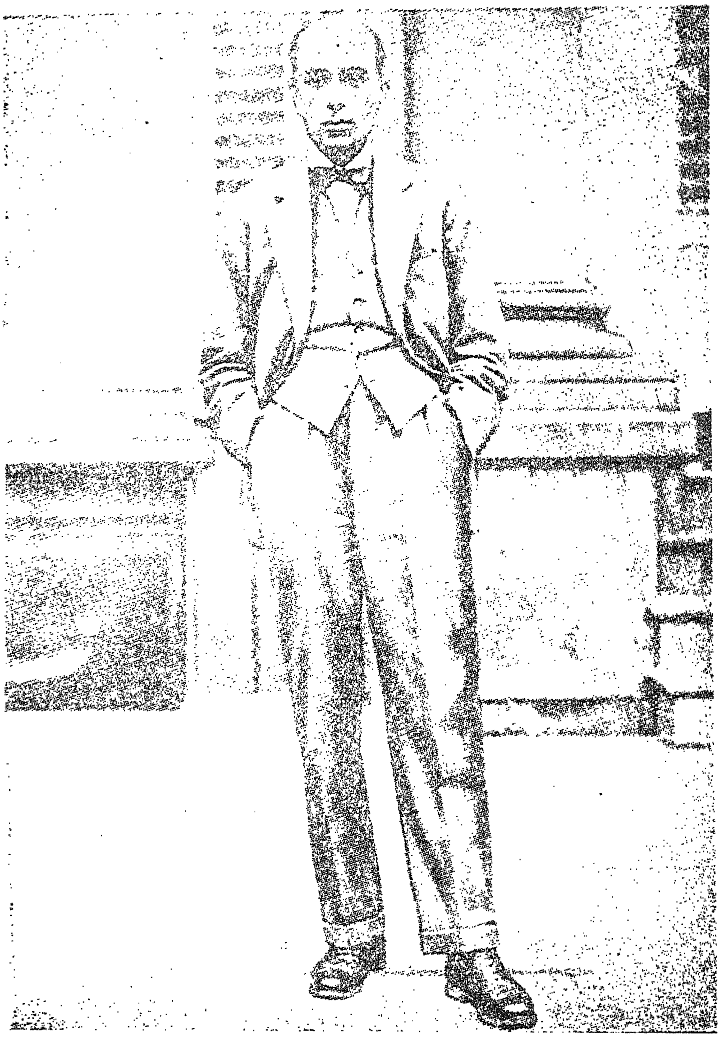

नागरिक जवाहर

जवाहरलाल नेहरू का सिद्धांत है कि चिन्हों को नहीं वरन् रोग की जड़ को ही नष्ट करना चाहिए। वे साम्यभाव का प्रचार करते हैं। उनका कहना है कि विपत्तियां भी सब के लिये समान हैं। यदि भूख का प्रश्न है तो वह हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए समान है। देश राष्ट्र के निर्माण और पतन दोनों को ही प्रभावित करते हैं। व्यक्तिगत लाभ और पद सफलता की बातें नहीं हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू के ये ही भाव हैं।

जवाहरलाल नेहरू किसी बात का पहिले ही से निर्णय नहीं कर लेते। सफलता उन्हें आकर्षित करती है। वे उसका माप-दण्ड रखते हैं। वे स्वतंत्र-भारत का चित्र खींचते रहते हैं। व यहां के लोगों के रहन-सहन को ऊँचा उठाने की बातें सोचते हैं। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि सभी लोग बारी बारी से कार्य करते हैं और एक निश्चित काल तक। वे देश के रहन सहन को ऊँचा उठाने की बात सोचते रहते हैं। उनकी इन भावनाओं को सहयोग भी मिला है तथा इस ओर वैज्ञानिकों, अर्थ-शास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों का ध्यान भी आकर्षित हुआ है।

जहां तक भूखों और नंगों को अन्न-वस्त्रादि मिलने का तथा दमन कारियों को नष्ट करने का प्रश्न है वे निरंतर इसी मे जुटे रहते है। अप्रभावशालिता को वे सहन नहीं कर सकते। योग्यता को वे बड़ा आकर्षक गुण समझते हैं। वे बड़ी रात व्यतीत हो जाने पर भी गंभीर मुखड़े के साथ राजनैतिक वक्तव्य लिखते रहते हैं।

जवाहरलाल नेहरू के विषय में बहुत सी विचित्र कथायें प्रचलित हैं। उनके अनेक गुणों ने उन्हें विश्व-प्रिय बना दिया है। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए कार्य ही नहीं किया है वरन् उन्हें इसमें प्रसन्नता ही होती है। उन्होंने कभी इस बात पर रोना नहीं रोया कि अमुक कार्य करने का समय निकल गया और न उन्होंने कभी अपने भाग्य ही को कोसा। वे हिम्मत और सुदृढ़ हृदय से सदैव आगे बढ़े और अपने देशवासियों को साथ ही लेकर चले। गांधीजी की पुकार पर उन्होंने जनता का नेतृत्व किया। गांधीजी ने सदैव आज्ञा जारी करने और आन्दोलन के रोकने की आज्ञा ही का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर रक्खा। उन्होंने युद्ध को महत्वपूर्ण बनाने का कार्य अपने ऊपर लिया, असफलताओं को अपनी ही कमजोरी समझा तथा समझौता करने का भी भार स्वयं अपने ऊपर लिया। जवाहरलाल तो सदैव समझौते के प्रति उदासीन ही रहे।

हम जानते हैं जो लोग भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं वे प्रायः यह नहीं समझते कि उनके बलिदानों का वास्तव में क्या मूल्य है। उद्देश्य, लक्ष्य, प्रयत्न, रहन-सहन के भाव तथा कष्ट सहने की शक्ति उनके लिए एक से मिल कर हो जाते हैं। उनका जीवन एक सा हो जाता है।

जवाहरलाल के लिए कोई भी कार्य करना कठिन नहीं है। वे अखिल भारत-संबंधी प्रस्तावों को तैयार करेंगे किन्तु यह वाक्य कहने में वे सदैव गर्व अनुभव करते हैं कि 'मेरे प्रान्त में तथा मेरे नगर इलाहाबाद में———'।

अपने नगर में वे एक साधारण से साधारण कांग्रेसमैन से भेंट करने में प्रसन्न होते हैं। प्रासिक झण्डा-भिवादन के लिए वहां वे साधारण से साधारण स्थान में जाकर उपस्थित होंगे।

वे प्रजातंत्रवाद के घोर समर्थक हैं। वे व्यक्ति की अपेक्षा संस्था के प्रति वफादार होने का उपदेश देते हैं, चाहे स्वयं अपना उनका ही व्यक्तित्व क्यों न हो।

वे सफल सभापति हैं। यदि उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनका सहकारी उनकी अमुक नीति का संचालन सफलता के साथ कर लेगा तो वे उसके नेतृत्व का भार उस पर पूर्णरूप से छोड़ देते हैं। वे निष्कर्ष को ही महत्व देते हैं उसके विस्तृत विवरण पर नहीं जाते। वे यह नहीं चाहते कि कोई भी पदाधिकारी लम्बे काल तक एक पद पर रहे। वे पदों के उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए सदैव नये कार्यकर्ताओं को पसंद करते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा न होने से संस्थाओं को विशेष व्यक्तियों पर निर्भर हो जाना पड़ता है और उनकी शक्ति कम हो जाती है; हम संस्थाओं को बल देते हैं और उनसे बल पाते हैं तथा उसी के द्वारा अपनी शक्ति का अन्दाज लगाते हैं। व्यक्ति और संस्था दोनों परस्पर एक दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं। जवाहरलाल के अनुयायी किसी व्यक्ति के प्रति वफ़ादार नहीं हैं।

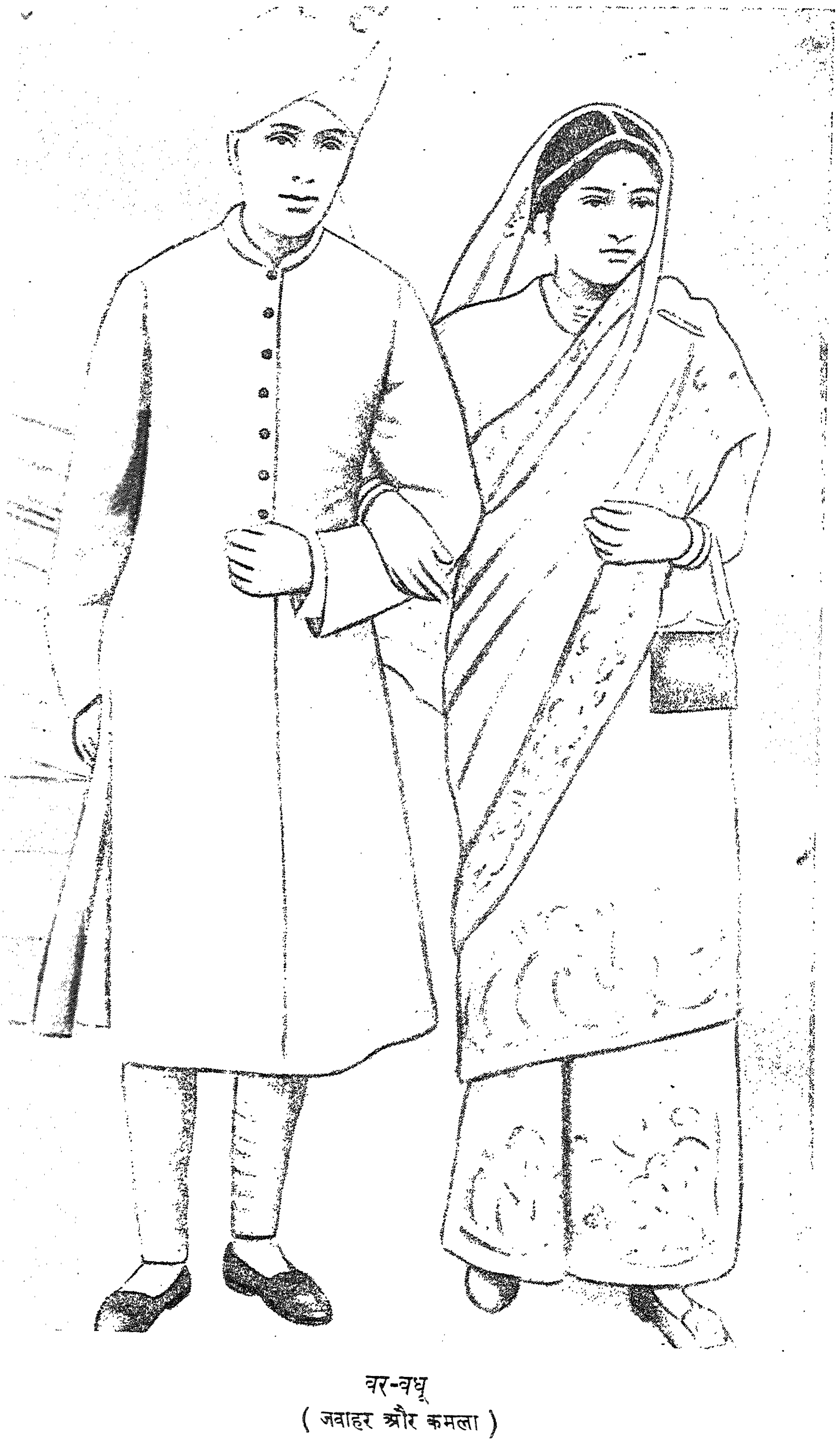

वर-वधू
(जवाहर और कमला)

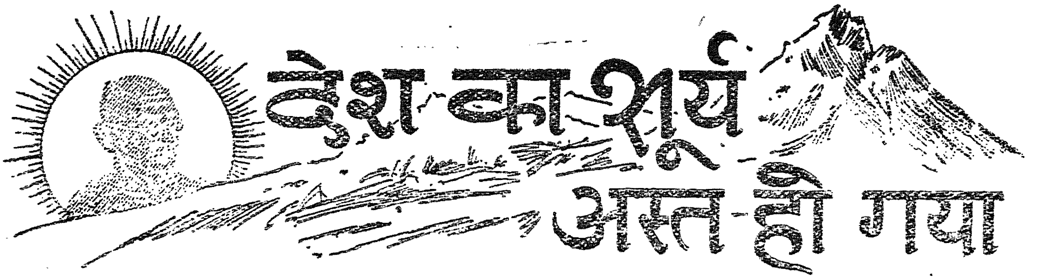

नेहरू जी ने भारतीय पार्लियामेंट में महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—हमारी शान चली गई। जो सूर्य हमारे देश को उष्णता तथा प्रकाश प्रदान करता था वह अस्त हो गया। हम शीत तथा अंधकार में कांप रहे हैं। फिर भी हमको अपने अंदर इस प्रकार का भाव नहीं लाना है। जब हम अपने हृदयों को देखते हैं तो अब भी उसमें वह प्रज्वलित अग्नि पाते हैं जिसे वे सुलगा गये थे; और यदि वह अग्नि हमारे प्राणों में इसी भांति शेष रही तो हमारे देश में अंधकार नहीं होगा। उसका स्मरण कर, उनके मार्ग का अनुसरण कर हम अपने प्रयत्नों से फिर प्रकाश-युक्त हो सकते हैं।

महात्मा गांधी की हत्या का यह कायड केवल एक पागल आदमी का काम नहीं है—वह हिंसा और घृणा के किसी ऐसे वातावरण का काम है जो देश में पिछले कई महीनों से चल रहा है। उस वातावरण से हम लोग घिरे हुए हैं और यदि हमको वह काम पूरा करना है जो बापू हमारे सामने रख गये हैं तो हमको उस वातावरण का सामना करना पड़ेगा। जहां तक इस सरकार का संबंध है वह मुझे विश्वास है कोई प्रयत्न उठा न रखेगी, क्योंकि यदि हम इन बुराइयों का मूलोच्छेदन नहीं करते तो निस्संदेह हम इस सरकार में रहने योग्य नहीं हैं और न हम उस महान दिवंगत आत्मा के अनुयायी होने योग्य तथा प्रशंसा के पात्र हैं।

इस सभा में यह प्रथा रही है कि महान दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। मुझे स्वयं इस बात का पूरा निश्चय नहीं है कि यहां इस अवसर पर मेरे लिए या किसी अन्य के लिए कुछ अधिक कहना ठीक है। मुझे निजी तौर पर भारत सरकार के प्रधान के नाते एक बात की बड़ी लज्जा है कि हम अपनी सब से बड़ी निधि की रक्षा नहीं कर सके। हम पिछले महीनों में कितने ही बेगुनाह मनुष्यों, स्त्रियों और बच्चों की रक्षा करने में असमर्थ रहे हैं। यह बात हम सब के लिए बड़े शर्म की है। यह महान व्यक्ति जिसका हम सब परिचित-अपरिचित सम्मान करते थे केवल इसलिए जाता रहा कि हम उसकी रक्षा का पर्याप्त प्रबंध नहीं कर सके। यह मेरे लिए एक भारतीय के नाते बड़ी लज्जा की बात है कि एक भारतीय ही ने इस महान विभूति-पर हाथ उठाया।

लोगों की प्रशंसा हम कुछ चुने हुए शब्दों में करते हैं किन्तु गांधी जी की प्रशंसा हम कैसे करेंगे और उनकी महानता का माप किस प्रकार कर सकेंगे क्योंकि वे उस मिट्टी के नहीं बने थे जिससे हम सब लोग बने हैं। वे आये और काफ़ी समय तक जीवित रह कर चले गये। उनके लिए हमारी प्रशंसा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में ही उससे कहीं अधिक प्रशंसा प्राप्त की थी जितनी इतिहास के किसी भी जीवित मनुष्य को मिली है। समस्त संसार ने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया है और हम सब उसमें जोड़ ही क्या सकते हैं? हम लोग, जो कि उनके बच्चे हैं, और शायद उनके शरीर से उत्पन्न बच्चों से भी अधिक निकट के बच्चे रहे हैं, उनकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं?

जो हमारी शान थी वह चली गई। जो सूर्य हमारे जीवन को चमका रहा था वह अस्त हो गया और हम सब अंधकार और शीत में कांप रहे हैं। जो शान हमने उनके जीवन के समय में देखी है उससे उन्होंने तथा अपने दैवी प्रकाश से हम में से बहुतों को प्रभावित किया है। उस प्रकाशपूर्ण अग्नि की कुछ चिनगारियां हमने ग्रहण की हैं; उनसे हमको बल प्राप्त हुआ है और हम उनके ही ढंग पर कुछ हद तक चले हैं, इसीलिए यदि हम उनकी प्रशंसा करते हैं तो अपनी ही प्रशंसा करते हैं।

महापुरुषों और प्रमुख व्यक्तियों की स्मृति में कांसे और संगमरमर की मूर्तियां बनाई जाती हैं, परन्तु इस दैवी ज्योति के मनुष्य ने अपने जीवन में ही करोड़ों आदमियों के हृदय में अपनी स्मृति बना ली थी। उनका नाम न केवल राज महलों और कुछ चुने हुये स्थानों तथा एसेम्बलियों में बल्कि घर घर और साधारण झोपड़ों तक पहुँचा था। गांधी जी ने अपने जीवन के पिछले तीस वर्षों में इस देश का बहुत कुछ निर्माण किया था और सर्वोच्च श्रेणी का त्याग किया जिसकी समता संसार के किसी भी भाग में नहीं मिल सकती। उन्होंने इस युग के अपने लोगों की त्रुटियों के लिए कष्ट सहे और वे कष्ट केवल इसलिए सहे कि जो रास्ता उन्होंने दिखाया उससे हम हटे और अन्त में उन्हीं के एक बच्चे का हाथ उनकी ओर उठा।

महात्मा गांधी प्राचीन भारत के और यदि मैं कहूँ कि भावी भारत के भी सब से बड़े प्रतीक थे तो अतिशयोक्ति न होगी। यह ईश्वरीय दूत अपने जीवन काल में जैसा महान रहा है अपनी मृत्यु से उससे भी अधिक महान हो गया।

हम सदा उनके लिए शोक करेंगे, क्योंकि हम मनुष्य ही हैं और अपने प्रिय को भूल नहीं सकते, पर मैं यह जानता हूँ कि वे यह नहीं चाहते थे कि हम उनके लिए शोक करें। उनकी आंखों में आंसू कभी उनके अत्यन्त प्रिय और निकटवर्ती के चले जाने पर भी नहीं आया; उसके महान कार्य करने की दृढ़ता अवश्य आई। अतः हम यदि उनके लिए शोक मनायेंगे तो वे अप्रसन्न होंगे। हमारा उनके प्रति ठीक सम्मान यही होगा कि जिस कार्य को वे इतनी दूर लाकर बिना पूरा किये छोड़ गये हैं, उसे पूरा करने की हम प्रतिज्ञा करें और पूरा करने में हम अपना जीवन समर्पित कर दें।

अन्तर्राष्ट्रीय नेहरू

(श्री एफ़० आर० मोरेस)

कुछ महीने पहले मैं एक दावत में जवाहर लाल से मिला था। वे उस समय योरप से लौटे थे। वहां उन्होंने स्पेन के मोर्चे का भी निरीक्षण किया था। जिस समय मि० चेम्बरलेन, लंडन वेटर्स गार्डन और म्यूनिक की यात्रायें कर रहे थे, पण्डित नेहरू लंडन में थे और बढ़ते हुए संघर्ष का अध्ययन कर रहे थे।

इसमें सन्देह नहीं कि स्पेन ने उनके ऊपर गहरा प्रभाव डाला था। उनके निकट लोकतंत्र का प्रश्न मनुष्यत्व और उत्थान का प्रश्न था। मोर्चे की परिस्थिति और लोकतंत्र शक्तियों के साहस एवं उत्साह के संबंध में बड़ी उत्सुकता के साथ बातें करते थे।

उनका कहना था "यदि शस्त्र और भोजन मिलते रहें तो कोई कारण नहीं है कि उनको (लोकतंत्र वादी शक्तियों को) विजय प्राप्त न हो"। चिन्तित होने पर भी वे प्रसन्न चित्त थे। वहां वे ला पैशनारा से मिले थे, "एक अपूर्व स्त्री है" कहते हुए उसके साथ उन्होंने अपनी भेंट का वर्णन विस्तार के साथ किया है। स्पेन के वेदनापूर्ण नाटक ने उनको चिन्ताकुल बना रक्खा था।

आठ महीने भी न बीते होंगे, मुझे उनसे मिलने का फिर समय मिला। उस बीच में बहुत-कुछ हो चुका था। लोकतंत्रवादी स्पेन पराजित हो चुका था; मैड्रिड पर फ्रांको का अधिकार था, ला पैशनारा को देश छोड़ देना पड़ा था। सुदूर पूर्व में जापान विरोधों के बाद भी भयंकर रक्तपात की ओर अग्रसर हो रहा था। विपदाओं ने चीन में जड़ जमा ली थी, जेकोस्लोवेकिया समाप्त हो चुका था।

नेहरू पर इन घटनाओं ने आश्चर्यजनक प्रभाव डाला था। काल्पनिक सहयोग की अपेक्षा, संसार की घटनाओं के साथ, एक विचारशील भारतीय का संबंध अधिक गंभीर है। नेहरू के सामने वे प्रमुख प्रश्नों के रूप में हैं, जिन्होंने गंभीरतापूर्वक उनके व्यक्तिगत जीवन के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। उन्होंने प्रायः कहा है "विपदायें

सर्वत्र एक सी हैं। चीन, जेकोस्लोवेकिया और स्पेन जैसे देशों के प्रति समवेदना और सहायता से भारत को निरीह क्यों रहना चाहिये?"

मैंने सुना है कि जब वे स्पेन से लौटते समय वैलडियर में बोले थे और उन्होंने खाद्य सामग्री के जहाज बाहर भेजे जाने का अनुरोध किया था, मुख पर उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की इस भावुकता ने उनके दृष्टिकोण में एक गंभीर छाप डाली है। हाल ही में एक प्रमुख कांग्रेसी नेता ने मुझसे कहा था, "नेहरू केवल भारत में ही सीमित नहीं हैं। उनका हृदय और मस्तिष्क बाहर भी काम कर रहा है। लोकतंत्रवादी स्पेन की पराजय उनके जीवन की व्यक्तिगत वेदना थी। वे उसे भूल नहीं सके"।

बम्बई में होने वाली एक पार्टी मीटिंग के समय की एक घटना, मुझे एकमित्र की बताई हुई याद आती है। हम लोग किसी समस्या पर बात कर रहे थे। नेहरू वहां उपस्थित थे। एकाएक वे उठे और घूमते हुए उन्होंने चीन की कठिनाइयों पर बातें कीं। यदि मैं बाहर जा सकता, उन्होंने कई बार कहा। हम लोगों ने आश्चर्य चकित होकर सुना। उसमें मार्मिकता थी। नेहरू में भावनाओं की अधिकता है जो कभी-कभी घबड़ाहट पैदा कर देती है।

क्या उनकी भावनायें उनके विवेक पर शासन करती हैं? कई बातों में ऐसा ही है। उदाहरण के रूप में मि० गांधी के प्रति उनकी श्रद्धा में अत्यधिक भावपूर्ण सन्तोष है। किन्तु अधिकांश भावुकों से भिन्न, नेहरू अपनी भावनाओं को सचेत और जागरित रखते हैं।

एम० एन० राय ने इस बात को स्पष्ट करते हुए एक बार कहा था: "नेहरू इसके संबंध में भिन्न हैं। उनके कार्यों में सिद्धान्तों और प्रमाणों का आधार रहता है जिनके आगे उनको झुकना कठिन होता है"।

जहां विवेक और भावना का मिलन होता है उसका प्रभाव अटूट होता है। यह बात तीव्र बुद्धि और गहन भावों के व्यक्ति में अधिक होती है। नेहरू के संबंध में भी प्रायः ऐसा ही है। फिर भी ऐसे समय आते हैं, जब लोग अनुभव करते हैं कि उनका विवेक उनकी भावनाओं के प्रतिकूल होता है। इस दशा में उन्हें महान दुख होता है। जब उनके सामने कोई समस्या उपस्थित होती है, वे प्रायः शंकाओं से पीड़ित हो उठते हैं।

किसी बात का निश्चय कर लेने की, शीघ्र निश्चय कर लेने की, योग्यता नेतृत्व का मुख्य चिन्ह है। यहीं पर नेहरू असफल होते हैं। वे समय को पहचानने का प्रयत्न करते हैं, वास्तविक मार्ग को खोजने के लिये वे अधिक उधेड़-बुन में पड़ते हैं और फैबियस की भांति कदाचित विलम्ब के द्वारा वे विजयी होना चाहते हैं। नेहरू को कोई भी अवसरवादी कहने का साहस नहीं कर सकता। जो सत्य है, वह कभी भी अमान्य नहीं हो सकता। नेहरू की मानसिक पवित्रता पर कोई शंका नहीं हो सकती और वह अपवाद से परे हैं। उनके विवेक और भावों का संघर्ष वास्तविक है और वह बढ़ेगा।

इसके सम्बन्ध में उनकी आत्मकथा से कुछ पंक्तियां लेना अनुचित न होगा। उन्होंने लिखा है "मैं बार-बार

तीन व्यक्तियों का परिवार
(जवाहर, कमला और इंदिरा)

इस बात को स्वीकार करता हूँ कि बहुत सी ऐसी समस्यायें हैं जिनमें केवल मस्तिष्क ही काम नहीं करता। यदि तुम्हारा हृदय नहीं चाहता तो विलियम जेम्स के कथनानुसार तुम्हारा मस्तिष्क विश्वास उत्पन्न करने में तुम्हारा साथ नहीं देगा। भावनाएँ साधारण दृष्टिकोण पर शासन करती हैं और मस्तिष्क पर उनका अधिकार होता है। हमारी बातचीत चाहे वह धर्म सम्बन्धी हो, राजनीति सम्बन्धी हो अथवा अर्थ सम्बन्धी। वास्तव में वह सदा भावना पर निर्भर होती है। जैसा कि शापेनहार ने कहा है—"मनुष्य जो चाहता है कर सकता है, परन्तु वह जो कुछ चाहने की इच्छा करेगा, उसको चाह नहीं सकता"।

आश्चर्य तो यह है कि नेहरू स्वयं अपनी इस धारणा के अनुसार चल नहीं सके और यदि कभी ऐसा हुआ तो भारत का इतिहास ही बदल जायेगा।

भारतीय मंच पर वे चुने हुए लोगों में से हैं। उन्नतशील परिवार में उन्होंने पालन-पोषण पाया है। रोम के अमीरों की भांति उनमें कुछ असहनशीलता और स्वाभिमान भी है। परन्तु सर्वसाधारण की दृष्टि में वे ऐसे नहीं हैं।

कुछ वर्ष पहले की बात है, जेनेवा में पण्डित मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू से स्पेन के प्रोफेसर राजनीतिज्ञ सेनर मैडरियागा की भेंट हुई थी, जिसकी चर्चा करते हुए उसने कहा था "वे देखने में स्पेन-निवासी मालूम होते हैं और दोनों ही अत्यंत मनोहर, विशेष कर जवाहरलाल नेहरू। वे पिता की अपेक्षा अधिक प्रवीण हैं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते?"

प्रवीण? कितने ही व्यक्ति इस पर प्रश्न करेंगे। परन्तु जवाहरलाल की भावुक मनोवृत्ति में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता।

किसी सार्वजनिक सभा में अथवा एक बैठक में उनको ध्यान से देखिये। अपने सुन्दर और कोमल हाथों के साथ वे स्पेन-निवासी अमीर मालूम होंगे जैसा कि मैडिरियागा ने उनको समझा था। पर वे परिवर्तन प्रिय हैं और इसीलिये वे भिन्न हो सकते हैं। कभी-कभी उनके दबे हुए भाव बंधन तोड़ देते हैं और वे उदासीनतापूर्ण निर्बलता अथवा प्रशंसा में बह जाते हैं। एक कांग्रेस के महानुभाव ने मुझसे कहा था: "आनन्द-भवन में उनका सर्वस्व खो चुका है। अपने विशाल भवन में एकान्त अवस्था में वे रहा करते हैं। उनकी पत्नी का देहावसान हो चुका है। माता भी इस असार संसार से विदा हो चुकी हैं। उनकी लड़की घर से दूर कहीं विदेश में है। उनकी दोनों बहनें इलाहाबाद से बाहर रहती हैं। इतने विस्तृत भवन में उनका इस प्रकार आश्रयहीन होकर रहना अत्यन्त वेदनापूर्ण है"।

इसको सभी अनुभव करेंगे कि नेहरू आज कांग्रेस में व्यथित हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे बाहर प्रसन्न हो सकेंगे। नेहरू के अभाव में कांग्रेस के अस्तित्त्व की उसी प्रकार कल्पना नहीं की जा सकती, जिस प्रकार राजकुमार के अभाव में "हैमलेट" की। वे उस संस्था के अंग हैं और उनके नेत्रों में सब से पहले उसका महत्त्व है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि नवीन घटनाओं ने उन्हें अत्यन्त पीड़ा पहुँचायी है और कुछ अंशों में उनकी परिस्थिति संकटपूर्ण बन गयी है। इस अवस्था में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के साथ उनकी दिलचस्पी का अर्थ क्या उनकी मुक्ति के रूप में है ? मैं इस पर विश्वास नहीं करता। उनकी दिलचस्पी में सत्य है और उनकी भावनायें एक निश्चित सिद्धान्त के सांचे में ढली हैं। उनका उत्साह अकृत्रिम है; उनके वह शब्दों में सचाई है। उनमें वह विश्वास है जो पर्वतों को स्थानान्तरित कर सकता है।

‘वह सिंह जिसकी शक्ति वृद्धावस्था ने क्षीण कर दी थी’

'तुम स्वर्णाक्षरों में लिखी जाओगी' माँ !

महान नागरिक

(श्री होरेस अलेक्ज़ेण्डर)

महान व्यक्तियों के सम्बन्ध में उनके जीवन-काल में ही कुछ लिखने की आधुनिक प्रथा मुझे पसंद नहीं, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। किसी महारथी के सम्बन्ध में कुछ अच्छी बातें, उस समय तक नहीं कही जा सकतीं जब तक कि वह युद्ध क्षेत्र की धूल और उसके कोलाहल से कहीं दूर नहीं चला जाता। यदि कोई किसी की प्रशंसा करने में वस्तु स्थिति की सीमा उल्लंघन करता है तो वह प्रशंसा, उस व्यक्ति के चित्र के रूप में नहीं स्वीकार की जा सकती।

मैं यहां पर उनमें से कुछ बातों पर प्रकाश डालना चाहता हूँ जो मुझे आलोचना के लिए विवश करती हैं। नेहरू के भाषणों और उनकी रचनाओं को पढ़ कर मैं प्रायः अपने आप कह उठता हूं "किसी भी घटना का वे एक ही पहलू देखते हैं और उनकी वाक-पटुता उन्हें उस ओर खींच ले जाती है"। परन्तु मेरी इन बातों का अर्थ ही क्या होता है? केवल इतना ही कि एक व्यक्ति ऐसा है जिसकी प्रवृत्ति उदार है और जो अत्यन्त धैर्यवान है। अन्याय, अत्याचार और दरिद्रता के नीचे चीखते हुए, भारतीय जन-समाज के प्रति वे कितनी जलन और पीड़ा के साथ चिन्तित हैं। इन बातों का दीप्त ज्ञान 'पब्लिक स्कूल' के समर्थक अंगरेज़ों की दृढ़ता, उदासीनता, उपेक्षा और संयमशीलता पर भी जो उन्हें अत्यन्त प्रिय है, विजय प्राप्त करता है। मैं सचेत और सावधान अवस्था में स्वीकार करता हूँ कि उनके क्रोध को झुलसाने वाली तीव्र ज्वाला के पांच सेकेण्ड भी, उन व्यक्तियों को जो उबाने वाले तर्क से, जिनको अत्याचार पर कभी क्रोध नहीं आता, कहीं अधिक मूल्यवान हैं।

दृष्टान्त के रूप में मुझे कई घटनायें याद आती हैं। योरप के चर्च-जीवन में अत्यन्त प्रसिद्ध और पश्चिम के युवक जीवन का सुन्दर ज्ञान रखने वाले, मेरे एक मित्र क़रीब दस-बारह साल पहले नेहरू से मिले थे। नेहरू के संबंध में उनकी आलोचना का अभिप्राय इस प्रकार है, "वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जो आज के युवकों की कल्पना, उनकी श्रद्धा और उनके आदर्श पर अपना अधिकार जमा सकते हैं। वे दीनों के संरक्षक हैं।

एक बार नेहरू ने नरसिंघम में हमारे यहां अतिथि बनकर मुझको और मेरी पत्नी को सम्मानित किया था।

एक चुनाव चल रहा था और उपन्यासकार—नओमी मिचेसन के पति, मजदूर दल के उम्मेदवार थे। नओमी मिचेसन बुलाने के लिए आईं। जैसे ही नेहरू से उनका परिचय कराया गया, वे जमीन पर बैठ गयीं।

"यह विचित्र व्यवहार क्यों" स्वयं खड़े हुए नेहरू ने पूछा। उनके स्वर से कुछ व्यग्रता टपक रही थी।

"यही उचित मालूम हुआ" उत्तर मिला।

सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की आवश्यकता पर तमाम बातें करने वाले हम में से अनेक लोग, जिन्होंने स्वयं उनके लिये कभी कोई कष्ट उठा कर अपने सिद्धांतों के प्रति, अपनी सत्यता नहीं प्रकट की, जब किसी ऐसे व्यक्ति के सामने आते हैं, जो प्रसन्नतापूर्वक बार-बार जेल गया हो और जिसने अपना मान घटाने अथवा अपने सिद्धांतों पर सन्धि करने की अपेक्षा, जीवन के अधिक वर्ष जेल में बिता दिये हों, तो उसको ऐसा करना ही उचित मालूम होता है।

क्या नेहरू को स्वतंत्रता के आनन्द और सुख उसी प्रकार प्रिय नहीं है जैसे कि हम सब को? निश्चय ही वे उनको प्रिय हैं, किंतु अपने व्यक्तिगत सुख की अपेक्षा भय और दरिद्रता से पीड़ित लाखों और करोड़ों की संख्या में स्त्रियों और पुरुषों को स्वतंत्र-भारत की स्वतंत्रता उनको अधिक प्रिय है। इंगलैंड में ऐसे लोग हैं जिनमें कुछ प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ भी हैं और भारत में ऐसे पदाधिकारी तथा अन्य व्यक्ति हैं, जो यह बतायेंगे कि भारतीय इस बात को पसंद करते हैं कि उनको जेलों में भेजा जाय, क्योंकि इससे उनके सम्मान की वृद्धि होती है। असेम्बली के चुनाव के नामकरण के पहले एक सप्ताह का कारावास अपने ऊपर स्वयं लेने की चेष्टा तो जान बूझकर होती है। परन्तु लोग दूरस्थ उद्देश्यों के लिए प्रत्येक वर्ष जेल नहीं जाते। जो लोग इस प्रकार की आलोचनायें करते हैं, वे केवल अपनी तुच्छता प्रकट करते हैं।

नेहरू में अधिकांश भारतीय विद्यार्थियों की अपेक्षा, युवावस्था में राजनीतिक जागरण की भावना बहुत कम थी। मुझे उनकी बतायी हुई एक बात याद है। कैम्ब्रिज में जब वे "मैगपी एण्ड स्टम्प" के लिये, जो ट्रिनटी कालेज डिबेटिंग सोसायटी का नाम है, चुने गये थे, उनके ऊपर केवल इसी लिये जुर्माना किया गया था कि वे उसके सम्पूर्ण कार्य में एक बार भी बोलने में असमर्थ रहे। भारत के दीनों के निष्ठुर भाग्य को देखने और अनुभव करने के बाद ही उनके हृदय में राजनीतिक अग्नि प्रज्वलित हुई है।

उन्होंने सदा राष्ट्रवाद के परे देखा है। वे संसार के नागरिक हैं। आज संसार की सम्मतियों में उनके साहसपूर्ण और स्वार्थहीन आत्मा की आवश्यकता है। संसार की शान्ति के मुख्य शिल्पियों में से एक वे भी हो सकते हैं।

मैं प्रायः ऐसे पश्चिमीय आलोचकों से मिला हूँ, जो पूछते हैं "गांधी और नेहरू एक दूसरे के अत्यन्त समीप सहयोगी हैं, यह किस प्रकार संभव है? गांधी एक धार्मिक व्यक्ति हैं, नेहरू वैज्ञानिक सत्य को महत्व देते हैं; गांधी औद्योगिकता के प्रसारक तथा मध्यमकाल के समर्थक हैं, नेहरू एक नवीन मार्क्सवादी और व्यापार-वृद्धि के दृढ़

निश्चयी; गांधी एक शांतवादी हैं, नेहरू आधुनिकता के रंग में रंगी हुई भारतीय सेना के मुख्य नायक हैं। निश्चय ही यह एक स्वार्थपूर्ण अधार्मिक संधि है, जो शीघ्र ही टूटने को बाध्य होगी" ।

परन्तु नहीं, यह तो एक धार्मिक संधि है; क्योंकि यह उन अटूट शक्तियों पर निर्भर है जो उपर्युक्त विभिन्नताओं से कहीं अधिक गम्भीर हैं। सामाजिक जीवन में न्याय और पवित्रता के प्रति वे दोनों ही व्यक्ति समान रूप से उत्सुक हैं। दोनों ही एक दूसरे की निस्वार्थ परायणता और समर्पित होने की भावना को पहचानते हैं। वास्तव में दोनों ही आपस के सम्मान और मित्रता के आत्मीय बंधन में बंधे हुये हैं। भाग्यशाली है यह देश जहां इस महान चरित्र के दो नेता हैं ।

'जो कहते हैं वही करते हैं'

(स्व० रामानंद चट्टोपाध्याय)

पंडित नेहरू के भाषणों में निर्भीकता तथा सदाशयता रहती है। उनके वक्तव्य साहित्यिक गुणों से पूर्ण तथा राजनीतिज्ञता से भरे होते हैं। उनमें बे सिर-पैर की बातें नहीं होतीं। पंडित नेहरू जो कहते हैं वही करते हैं; उनकी वक्तृता में तत्व रहता है। उनकी घोषणा उस व्यक्ति की घोषणा होती है जो सत्य का आश्रय लेकर चलता है। वे घुमा-फिरा कर बात नहीं कहते, जो कुछ वे कहते हैं वही उनके हृदय की आवाज़ है। उनके वक्तव्य पढ़ कर देशवासियों को गर्व से भर जाना चाहिये, हम पंडित नेहरू के देश के हैं यह बात क्या कम गौरवपूर्ण है?

वे देश के लिए प्राण देने वाले नवयुवकों के महान प्रशंसक हैं। उनका विश्वास है कि देश में सामाजिक तथा आथक उन्नति पर ही उसकी स्वतंत्रता निर्भर है। भारत का बिगड़ा हुआ सामाजिक ढांचा ही उसकी अवनात का प्रमुख कारण है। सामाजिक और आर्थिक समानता पर उनका दृढ़ विश्वास है।

वे समझते हैं कि आगे चल कर आर्थिक संघर्ष हो सकता है देश में, साम्प्रदायिक नहीं। उनका समाजवाद और लोक-तंत्रवाद पर दृढ़ विश्वास है। वे नैतिकता के नाते हिंसा को बुरा समझते हैं। साथ ही साथ उनका यह भी विश्वास है कि बिना देश की स्वतंत्रता प्राप्त किये देश में किसी भी प्रकार के अन्य सुधार असंभव हैं।

वे समझते हैं कि हिंसा के पथ पर चल कर हमको सफलता नहीं मिल सकती, किन्तु यदि भविष्य में ऐसा अवसर आजाय कि हिंसा के द्वारा ही कांग्रेस या राष्ट्र को स्वतंत्रता मिलने के उपाय सुगम हों तो उस मार्ग को भी ग्रहण करने में पीछे न हटना चाहिये। हिंसा बुरी है, किन्तु दासता उससे भी अधिक बुरी वस्तु है। निरुद्देश्य तथा यत्र-तत्र हिंसात्मक कार्रवाइयां करते रहना हमारे लिए घातक है तथा उससे हम कमजोर हो जाते हैं।

सुविख्यात बहिन

(श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित)

अपना चित्र

(पण्डित नेहरू लगातार दो वर्ष तक कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। तीसरी बार भी सारा भारत उन्हीं के सिर पर ताज रखना चाहता था। पण्डित नेहरू श्रमित थे तथा विश्राम चाहते थे। और कोई उपाय न देख कर उन्होंने कदाचित अपनी आलोचना का भार स्वयं अपने ऊपर लिया। यह लेख 'माडर्न रिव्यू' में स्वयं उन्होंने 'चाणक्य' के नाम से लिखा था। पंडितजी ने स्वयं अपनी आलोचना इस लेख में कितनी सफलता के साथ की है। स्वयं अपना चित्र खींच कर पंडितजी ने इस प्रकार के लेख का एक उदाहरण उपस्थित किया है।)

"राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय"! तेज़ी के साथ भीड़ से निकलते हुए राष्ट्रपति ने ऊपर देखा। उनके हाथ ऊपर की ओर उठ गये और अभिवादन के लिए जुड़ गये। उनका पीला किन्तु गम्भीर चेहरा, मधुर हास्य के साथ आभापूर्ण हो उठा। उनके इस हास्य में अप्रकट स्नेह की मर्यादा थी। जिनके नेत्रों ने उनकी इस मुद्रा को देखा वे स्वयं मुसकुरा उठे। हास्य की रेखा से साथ तुरंत ही 'जय-घोष' के तुमुलनाद से आकाश गूँज उठा।

क्षण भर में हास्य की रेखा तिरोहित हो गई। सारा मुख-मंडल फिर चिन्तायुक्त और गम्भीर हो उठा। समारोह को देख कर हृदय में अज्ञात भावों का प्रादुर्भाव हुआ और मुखाकृति ज्यों की त्यों हो गई। ऐसा अनुभव होने लगा मानों उनके हास्य और आह्लाद के अन्तर में स्थायीत्व न था। उनकी, उस जन समूह की—जिसके वे प्राण बन गये थे—सद्भावना ग्रहण करने की, एक क्रिया मात्र थी। यही था न?

उन्हें फिर देखो! एक विराट जुलूस है; लाखों की संख्या में स्त्री और पुरुष उनकी कार को घेरे हुए हैं और श्रद्धा के स्वर में उनकी जयजयकार कर रहे हैं। वे सँभल कर कार में खड़े होगये। प्रत्यक्षरूप से वे तन कर खड़े हुए जिससे वे कुछ अधिक लम्बे ज्ञात होने लगे थे। अशान्त भीड़ में भी अविचलित गंभीरतापूर्वक खड़े हुए वे एक देवता के रूप में भासित हो रहे थे। उनके मुख पर सहसा फिर हास्य प्रस्फुटित हो उठा। इस हास्य में आनन्द और गंभीरता का सम्मिश्रण था। उक्त हास्य का अभिप्राय बिना जाने ही जन-समूह भी सुहासित हो उठा; हजारों व्यक्तियों से घिरी हुई उनकी वह देव-मूर्ति, उस जन-समूह से अपनापन स्थापित करने के लिए, धीरे धीरे

मानव-मूर्ति में परिणत होने लगी। जन-समूह भी साथ ही साथ इस अपनेपन को अपनाने के लिए अपने उस 'प्राण' के प्रति उत्सुक और आह्लादित हो उठा। फिर सहसा हास्य का अंत हो गया और उनका मुख फिर पहिले की भांति पीत और गम्भीर हो गया।

इस प्रकार का दृश्य स्वाभाविक है अथवा एक सार्वजनिक नेता का जनसमूह को अपनी ओर आकर्षित करने का कौशल मात्र? कदाचित ये दोनों ही बातें ठीक हैं और अधिक दिनों के अभ्यास के कारण ऐसा स्वाभाविक-सा हो गया है। सब से सुन्दर अभ्यास तो वह होता है जिसमें कृत्रिमता का सर्वथा अभाव होता है, और जवाहरलाल ने बिना उन क्रियाओं के जो एक अभिनेता के लिये अनिवार्य हैं, यह सब कर लेना भलीभांति सीख लिया है। बिना किसी चाहना और भावना के ही वे सार्वजनिक मंच पर अपनी परिपूर्ण कला के साथ अभिनय कर लेते हैं। उनका यह प्रदर्शन उनको और देश को किस ओर ले जायगा? उनकी इस निरीह भावना में कौन-सा लक्ष्य अदृश्य है? उनके इस अभिनय में किस प्रकार की लालसायें, महत्वाकांक्षायें तथा अभिलाषायें अन्तर्हित हैं?

फिर भी ये प्रश्न रोचक ही होंगे, क्योंकि जवाहरलाल में वह व्यक्तित्व है जो जिज्ञासा और मस्तिष्क को बरबस आकर्षित करता है। साथ ही साथ ये प्रश्न हमारे लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि भारत की वर्तमान और भावी दोनों ही स्थितियों से उनका अटूट सम्बन्ध है। उनके पास वह शक्ति है जिससे भारत का महान हित हो सकता है और उसका दुरुपयोग किये जाने से भारी हानि की भी आशंका है। अतएव हमको इन प्रश्नों के लिए उत्तर अवश्य खोजना चाहिए।

लगभग दो वर्षों से वे कांग्रेस के सभापति हैं; कुछ लोगों की धारणा है कि वे कांग्रेस की कार्य-समिति में दूसरों के द्वारा निर्धारित व्यवस्था को कार्यरूप में परिणत करते रहने के कारण ही वहां टिके हुए हैं। फिर भी वे दृढ़ता और धैर्य के साथ अपने व्यक्तिगत सम्मान और प्रभाव को बढ़ाने के लिये जनता तथा भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोगों से मिलते-जुलते रहते हैं। वे किसानों, मजदूरों, जमीदारों, पूँजीपतियों, व्यापारियों, ब्राह्मणों, अछूतों मुसलमानों, सिक्खों, पारसियों, ईसाइयों और यहूदियों से—जो भारतीय जीवन में विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व हैं—मिलते-जुलते और संपर्क स्थापित करते रहते हैं। इन सब से वे विभिन्न भाषाओं में बात करते हैं तथा उनको अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। अपनी अवस्था के प्रतिकूल उत्साह के साथ वे भारत की विस्तृत भूमि का तूफ़ानी दौरा करते हैं तथा सर्वत्र असाधारण सम्मान और स्वागत प्राप्त करते हैं। सुदूर उत्तर से कन्याकुमारी तक विजयी जुलियस सीजर की भांति वे अपनी ख्याति और भ्रमण-कथा को स्थापित करते चले जाते हैं। क्या यह सब उनकी एक अस्थिर भावना है जो उनको प्रसन्न बनाने का काम करती है अथवा कोई गंभीर, युक्तसंगत, अज्ञात शक्ति की रचना है जिसके विषय में वे स्वयं कुछ नहीं जानते। या यह कोई उस शक्ति की प्रेरणा है, जिसका वर्णन उन्होंने अपनी आत्म-कथा में किया, जो उन्हें एक भीड़ में ले जाती है और उन्हें अपने ही प्रति फुसफुसाने की शक्ति प्रदान करती है कि :—

'मनाव जीवन के उतार और चढ़ाव को मैंने अपने करतल-गत रखने और उनके प्रति अपनी अभिलाषा को आकाश के तारों में प्रतिबिम्बित किया है' ।

यदि यह कल्पना ठीक न हो तो ? महान और सुन्दर कार्य करने की क्षमता रखने वाले जवाहरलाल की कोटि के व्यक्ति प्रजातंत्रवाद में अरक्षित रहते हैं। वे अपने को प्रजातंत्रवादी तथा समाजवादी कहते हैं, और वास्तव में जो कुछ वे कहते हैं वैसा है भी, किन्तु प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जानता है कि अन्ततोगत्वा मस्तिष्क हृदय का दास है, और मनुष्य की अदमनीय इच्छाओं की पूर्ति के लिए तर्क को सदा अनुकूलता पैदा करना पड़ती है। साधारण परिवर्तन मात्र ही से, मन्थर गति से चलने वाले प्रजातंत्रवाद को एक कोने में रख कर जवाहरलाल नेहरू डिक्टेटर बन जा सकते हैं। इतना होने पर भी वे प्रजातंत्रवाद तथा समाजवाद की भाषा का प्रयोग करते रह सकते हैं तथा इसी प्रकार के नारे भी बुलन्द करते हैं। हम जानते हैं कि प्रजातंत्रवाद और समाजवाद का किस प्रकार आश्रय लेकर फ़ासिज़्म आगे बढ़ा और बाद में यह कृत्रिम आवरण उतार कर फेंक दिया।

वास्तव में जवाहरलाल न तो स्वभाव से ही फ़ासिस्ट हैं और न उस पर विश्वास ही रखते हैं। वे फ़ासिज़्म की असंस्कृत अप्रौढ़ता के अत्यधिक विरोधी हैं। उनका चेहरा और सिर बतलाता है :—

'व्यक्तिगत जीवन में सार्वजनिक जीवन की अपेक्षा सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत जीवन अधिक महत्वपूर्ण होता है'।

फासिस्ट जीवन सार्वजनिक जीवन होता है किन्तु न तो वह व्यक्तिगत रूप में सुखकर होता है और न सार्वजनिक रूप में। जवाहरलाल के गुण और स्वर में स्पष्टरूप से अपनापन है। सार्वजनिक क्षेत्र में बोलने के समय उनके मुख और स्वर का जो रूप और भाव होता है, उसका ठीक वही रूप अलग अलग व्यक्तियों से बातचीत करने के समय भी उनका रहता है। उनकी भावपूर्ण मुख-मुद्रा को देख कर और उनकी बातों को सुनकर कोई भी आश्चर्य कर सकता है कि आखिर रहस्य क्या है ? किस प्रकार उनके विचार, उनकी इच्छायें, उनकी उलझनें और पीड़ायें दब कर शक्ति और चेतना के रूप में परिणत हुई हैं; जीवन की कितनी अभिलाषाओं को उन्होंने निराश्रित बनाया है ? सार्वजनिक सभा में भाषण देने के समय उनकी विचारधारा उनको संयमित बनाये रखती है। परन्तु दूसरे अवसरों पर उनकी मुखाकृति उनकी वास्तविक स्थिति का परिचय कराती है क्योंकि उनका मस्तिष्क उस समय कल्पना के क्षेत्र में विचरण करने लगता है। क्षण भर के लिये उस समय वे अपने मित्र को भूल कर मस्तिष्क में उपजने वाली कल्पनाओं में व्यस्त हो जाते हैं। क्या वे जीवन की कठोर और प्रचण्ड यात्रा में छूट जाने वाले मानव-जीवन के सम्पर्कों के प्रति सोचते हैं ? क्या वे उनके इच्छुक हैं ? क्या वे अपने निर्माण किये हुए भविष्य के और स्वेच्छा से अंगीकृत कठिनाइयों और उन पर होने वाली सफलताओं के स्वप्न देखते हैं ? उन्हें भली प्रकार जान लेना चाहिये कि उन्होंने अपने जीवन का जो मार्ग चुना है उसमें कहीं पर विश्राम नहीं है और उस सफलता का अर्थ होता है एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व। जैसा कि अरब-निवासियों से लारेंस ने कहा है कि :

'क्रांतिकारी के विश्राम का कोई स्थान नहीं हो सकता, और न प्रसन्न करने वाली उनके लिए कोई परिस्थिति ही हो सकती है'।

उसके लिए प्रसन्नता नहीं होती वरन् प्रसन्नता से कहीं अधिक विस्तृत और विशाल उसके जीवन के उद्देश्य की सफलता होती है, यदि उसका समय उदार तथा अनुकूल हो।

जवाहरलाल फासिस्ट नहीं हो सकते। विस्तृत लोक-प्रियता, अपने उद्देश्य के प्रति शक्ति, पूर्व इच्छा, स्फूर्ति, स्वाभिमान, संगठन करने की क्षमता, योग्यता और दृढ़ता आदि वे सभी स्वाभाविक गुण उनमें विद्यमान हैं जो एक डिक्टेटर के लिये आवश्यक होते हैं। सर्वसाधारण के लिये उनके हृदय में स्नेह है; साथ ही निर्बल और अयोग्य के प्रति उनमें घृणा का भाव रहता हैं। उनके क्रोध की ज्वाला से लोग पूर्व से परिचित हैं। यदि उसके रोकने की चेष्टा की जाती है तो उनके ओठों का विकम्पन क्रोध की उग्रता का परिचय देता है। किसी भी कार्य को परिपूर्ण और सम्पन्न पाने की उनकी तीव्र अभिलाषा तथा अप्रिय वातावरण को मिटा कर उसके स्थान पर नवीन रचना करने की उनकी आदत को प्रजातंत्र की धीमी चाल सहन नहीं है। वे उसका स्वरूप कुछ भी रख सकते हैं किन्तु वे चाहेंगे यही कि उनकी इच्छा के अनुकूल ही सब कुछ हो। साधारण स्थिति में वे एक योग्य और सफल संचालक हैं, किन्तु इस विप्लव-काल में कैसरशाही सदा आगे रहती है और फिर क्या यह संभव नहीं है कि जवाहरलाल अपने को कैसर समझें?

यहीं पर जवाहरलाल और साथ में भारत के लिये भी भय है। भारत को कैसरशाही के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती। जो कुछ हो भी सकती है वह भी बहुत साधारण और साथ ही साथ स्वाधीनता-प्राप्ति में भी विलंब होगा।

लगातार दो वर्षों से जवाहरलाल कांग्रेस के सभापति रहे हैं तथा कुछ बातों में उन्होंने देश के लिये अपनी आवश्यकता इतनी अनिवार्य बना दी है जिससे लोगों का प्रस्ताव है कि वे तीसरी बार भी कांग्रेस के सभापति चुने जायँ; किन्तु इस प्रकार का कार्य भारत और जवाहरलाल दोनों ही के प्रति एक प्रकार का अपकार-सा करना होगा। उनको तीसरी बार चुन कर हम एक ही व्यक्ति को कांग्रेस में अधिक महत्व देंगे और कांग्रेस के इस चुनाव को कैसरशाही के रूप में लोगों को सोचने का मौक़ा देंगे। ऐसा करके हम जवाहरलाल में ग़लत भावनाओं को प्रोत्साहित करेंगे और उनके हृदय में 'अहं' भाव तथा अहंकार उत्पन्न कर देंगे। उनको इस बात का विश्वास हो जायगा कि भारत को संभालने और गंभीर प्रश्नों को हल करने योग्य कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। हमको पिछले उन दिनों की स्मृति को न भूलना चाहिये जब जवाहरलाल ने पूरे सत्रह वर्षों तक कांग्रेस के अन्तर्गत प्रमुख कार्यों का संपादन किया है। वे सोचते होंगे कि इस पद पर उनका होना अनिवार्य है और किसी व्यक्ति को ऐसा सोचने का मौक़ा न मिलना चाहिये। लगातार तीसरी बार भी जवाहरलाल को कांग्रेस-सभापति के रूप में भारत स्वीकार नहीं कर सकता।

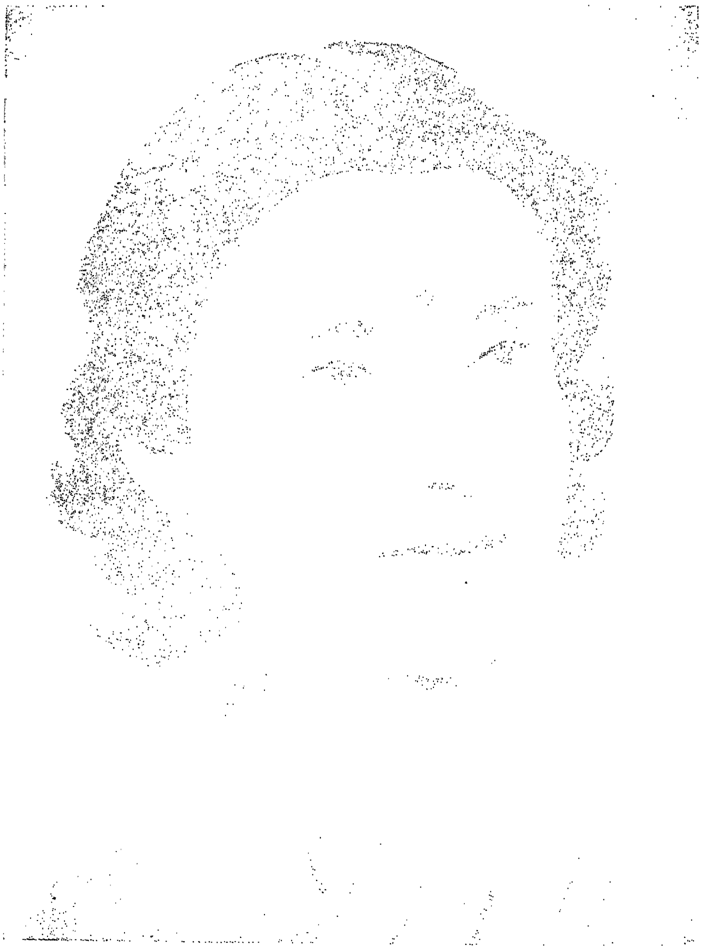

पंडित नेहरू की छोटी बहिन
(श्रीमती कृष्णा हठीसिंह)

श्रीयुत हठी सिंह--पंडित नेहरू के बहनोई

इस संबंध में एक कारण भी है। जवाहरलाल में बोलने की शक्ति है किन्तु वे बहुत श्रमित और उत्साह-हीन हैं। यदि वे लगातार सभापति के पद पर चुने जायेंगे तो निस्संदेह उनकी शक्तियों का ह्रास होगा। सभापति चुने जाने के पश्चात् उनको विश्राम मिलने की संभावना नहीं है। इस चुनाव में उनको रोक कर बढ़ती हुई शान्ति और निर्बलता से हम उनकी रक्षा कर सकते हैं। और एक बहुत बड़े बोझ तथा उत्तरदायित्व से उनको अलग रख कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये अवसर दे सकते हैं। भविष्य में उनके द्वारा होने वाले एक अच्छे कार्य की आशा रखने का हमको अधिकार है। हमको उसे नष्ट न होने देना चाहिये और न अधिक महत्व तथा प्रशंसा के द्वारा उन्ही के जीवन का क्षय करना चाहिये। यदि उनमें किसी प्रकार का अहंकार है तो वह अनावश्यक और अहितकर है, उसका अवरोध होना ही चाहिये। हमको क़ैसर की आवश्यकता नहीं है।

लाठी चार्ज का अनुभव

साइमन-कमीशन लखनऊ में आने वाला था और स्थानीय कांग्रेस-कमेटी ने उसके बहिष्कार के लिए जोरदार तैय्यारियां कर ली थीं। उसके आने के पहिले ही बड़े बड़े जुलूसों, सभाओं तथा प्रदर्शनों की योजना बना ली गई थी और उसका रिहर्सल भी कर लिया गया था। मैं लखनऊ गया तथा इनमें उपस्थित भी था। इन शांतिपूर्ण तथा सुव्यवस्थित प्रदर्शनों की सफलता की आशा से अधिकारी बौखला उठे। उन्होंने नाना प्रकार की आज्ञायें निकाल कर रोड़े अटकाना प्रारम्भ किया। इस संबंध में मुझे भी एक नया अनुभव हुआ। पुलिस द्वारा मेरे शरीर पर भी बेटन और लाठी चार्ज किया गया।

सवारियों के आने-जाने में बाधक समझ कर जुलूसों पर रोक लगाई गई। हमने शिकायत का मौका न देने की गरज से यह तय किया कि हम सोलह सोलह व्यक्तियों के जत्थों में होकर सभा की ओर उन रास्तों से होकर जायेंगे जिसमें अधिक भीड़ भी न हो। क़ानूनी तौर पर यह भी सरकारी आज्ञा को भंग ही करना था क्योंकि झण्डा लिए हुए सोलह आदमियों का यह जुलूस ही था। मैं भी इसी प्रकार के जत्थे का नेतृत्व कर रहा था और थोड़ी ही दूर पर एक दूसरा जत्था आ रहा था जिसका नेतृत्व मेरे साथी पं० गोविन्द बल्लभ पन्त कर रहे थे। मेरा जत्था जब उस सन्नाटे वाले मार्ग पर लगभग २०० गज आगे बढ़ गया तब हमको घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई दी। मैंने पीछे घूम कर देखा। लगभग दो तीन दर्जन घुड़सवार हम लोगों पर आक्रमण करने के लिए पीछे दौड़े आ रहे थे। वे शीघ्र हमारे निकट आ गये तथा घोड़ों ने हमारे १६ व्यक्तियों के छोटे जुलूस को भंग कर दिया। घुड़सवार पुलिस वालों ने हमारे स्वयंसेवकों को बेटन और बन्दूकों के कुन्दों से मारना शुरू कर दिया। कुछ स्वयं-सेवक भाग कर किनारे चले गये तथा कुछ छोटी छोटी दुकानों में घुस गये। उनका पीछा किया गया तथा उन्हें पीटा गया। मैंने बीच सड़क पर अपने को अकेला पाया। कुछ गजों के फासिले पर हर तरफ़ पुलिस वाले स्वयंसेवकों को पीट रहे थे। मैंने सड़क की ओर से किनारे हट जाने का इरादा किया जिससे मुझे कोई देख न सके,

किन्तु शीघ्र ही मेरा विचार बदला। मैंने फ़ौरन निर्णय कर लिया कि यह कार्य मेरे योग्य नहीं है। इस निर्णय में कुछ सेकेंड ही लगे किन्तु अपने मस्तिष्क के इस संघर्ष का मैंने अनुभव अवश्य किया। मेरे अहंकार ने कायरता का मार्ग ग्रहण करना कदाचित् पसंद नहीं किया। मैं ऐसा कुछ निर्णय कर पाया ही था कि मैंने देखा कि एक घुड़सवार मेरी ओर अपनी नई सी लम्बी संगीन ताने चला आरहा है। मैंने उससे जाने के लिए कहा और अपना सिर दूसरी ओर कर लिया। सने मेरी पीठ पर दो धक्के मारे। मैं भौचक्का सा रह गया और मेरा सारा शरीर कांप गया, किन्तु मुझे यह देखकर अचम्भा भी हुआ और संतोष भी कि मैं वहां से भागा नहीं, वरन् वहीं खड़ा रहा।

पुलिस वहां से हट कर आगे बढ़ी और हमारा रास्ता रोक लिया। हमारे स्वयंसेवक भी वहीं आकर इकट्ठे होने लगे। इनमें बहुतों के रुधिर बह रहा था और कितनों ही के सिर फट गये थे। पंत जी और उनके जत्थे के स्वयंसेवक भी हम में आ मिले थे। उन पर भी आक्रमण किये गये थे। हम सब लोग पुलिस के सामने मुँह कर के जमीन पर बैठ गये। हम लोग लगभग एक घंटे तक बैठे रहे; अँधेरा हो चला था। दूसरी ओर बड़े बड़े अफ़सर आकर इकट्ठे हो गये थे। यह समाचार फैल जाने से जनता की भी बड़ी भारी भीड़ इकट्ठा हो गई थी। अंत में हमको अपने मार्ग पर जाने देने के लिये अधिकारी राजी हो गये, और हम लोग उसी मार्ग की ओर चल दिये। वे ही घुड़सवार हम लोगों के पथ-प्रदर्शक से बन कर चले जिन्होंने थोड़ी देर पहिले हम लोगों पर आक्रमण किया था।

मैं इस प्रकार लाठी-चार्ज सहन कर सकता था और इसीलिये मैं शारीरिक कष्ट को शीघ्र ही भूल गया। पूरी घटना के बीच, जबकि मुझ पर लाठियों का प्रहार हो रहा था, मेरा मस्तिष्क बिल्कुल साफ़ था और मैं अपने विचारों को साफ़ साफ़ अनुभव कर रहा था। दूसरे दिन होने वाली बड़ी परीक्षा के लिये आज का रिहर्सल मेरे लिये बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ। दूसरे ही दिन साइमन-कमीशन आने वाला था और उसी के लिये वे सब बड़ी तैयारियां हो रही थीं।

पिता जी उस समय प्रयाग में थे, मुझे इस बात का डर था कि मेरे ऊपर आक्रमण की खबर पढ़ कर वे तथा मेरा परिवार अवश्य व्यग्र हो उठेगा। मैंने उन्हें उसी दिन शाम को टेलीफ़ोन द्वारा सूचना दे दी थी कि सब राजी-खुशी है और चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। किन्तु इससे पिता जी की चिन्ता कम न हुई; रात भर नींद न आने के कारण उन्होंने आधी रात को ही लखनऊ जाना तय कर लिया। आखिरी गाड़ी छूट गई थी अतएव वे कार-द्वारा ही रवाना हो गये। १४६ मील की यात्रा समाप्त करते हुए वे सवेरे ५ बजे लखनऊ पहुँच गये। वे बुरी तरह थक गये थे।

इस समय हम लोग जुलूसों में स्टेशन जाने की तैयारी कर रहे थे। कल की घटना से लखनऊ के रहने वालों में इतना उत्साह पैदा हो गया था कि हमको और कुछ तैयारी करने की आवश्यकता ही न रह गई थी।

सूर्य निकलने के पहिले ही अगणित जनता स्टेशन के ऊपर उमड़ चली। असंख्य जुलूसों के अतिरिक्त कांग्रेस के दफ्तर से प्रमुख जुलूस उठा जिसमें सम्मिलित होने वालों की संख्या हजारों में थी और वे लोग चार-चार की क़तार में चल रहे थे। हम लोग इसी जुलूस में थे। स्टेशन के निकट पहुँचते ही पुलिस ने हमारा जुलूस रोका। यहां काफी लम्बा-चौड़ा मैदान था, और हम लोग लाइन बांध कर खड़े हो गये। यहीं हमारा जुलूस खड़ा रहा और आगे बढ़ने की कोई चेष्टा हम लोगों ने नहीं की। यह स्थान पैदल और घुड़सवार पुलिस से भरा हुआ था तथा फौज भी मौजूद थी। जनता की भीड़ बढ़ती ही गई। सहसा हम लोगों ने भीड़ में भगदड़ सी देखी। घुड़सवार और पैदल पुलिस ने हम लोगों की भीड़ पर घोड़े दौड़ा कर आक्रमण कर दिया था। न जाने कितने लोग घोड़ों से कुचल डाले गये। न जाने कितने निर्दोष व्यक्ति घायल हो गये, और बहुत से अब भी घुड़सवारों द्वारा कुचले जाकर पड़े हुए कराह रहे थे। इस प्रकार यह स्थान एक युद्ध-क्षेत्र सा बन गया था। हम इस दृश्य को अधिक देर तक न देख सके क्योंकि शीघ्र ही इन घुड़सवारों ने हम लोगों पर भी हमला कर दिया था। हम लोग अपने स्थानों पर दृढ़ खड़े रहे। और हमको पीछे हटते न देख कर घोड़े अपने पिछले पैरों पर खड़े हो गये और उनके अगले खुर हवा में हम लोगों के सिरों पर छा गये। अब हम लोगों को लाठी से पीटना प्रारम्भ होगया था। हम लोगों पर घुड़सवार और पैदल दोनों प्रकार की पुलिस ने बैटन और लाठियों से आक्रमण किया था। मैंने उसी स्थान पर खड़े रहने का निश्चय कर लिया था। न झुकना है और न पीछे हटना है। लाठियों के प्रहार से मुझे धुँधला-सा नज़र आने लगा था; रह रह कर एक निष्क्रिय क्रोध भी आ जाता था और प्रतिहिंसा की भावना जाग्रत हो उठती थी। मैंने सोचा कि घोड़े पर चढ़े हुए अफ़सर को ज़मीन पर गिरा कर स्वयं मैं घोड़े पर आसानी से सवार हो सकता हूँ, किन्तु इतने दिनों की ट्रेनिंग और नियंत्रण ने मुझे ऐसा करने से रोका और मैंने अपना हाथ तक ऊपर नहीं उठाया। अपने चेहरे को लाठी की मार से एकाध बार बचाने के लिये हाथ उठाया भी। साथ ही साथ मैं जानता था कि हिंसा का आश्रय लेने से बड़ी भारी दुर्घटना की आशंका है। गोली चला दी जाती और हमारे बहुत से आदमी मौत के घाट उतार दिये जाते।

थोड़ी देर बाद, जो कि बहुत बड़ा समय मालूम पड़ा, यद्यपि यह सब कुछ मिनटों के अन्दर हुआ, हमारी लाइन धीरे धीरे पीछे हटने लगी, किन्तु टूटी नहीं। इससे मैं अकेला अपने स्थान पर खड़ा रह गया और मेरे ऊपर लाठियों के अधिक प्रहार होने लगे। इस समय किसी ने मुझे जबरदस्ती उठा लिया और पीछे ले गया। मुझे बड़ा क्रोध आया। मेरे कुछ नौजवान साथियों ने, यह समझ कर कि मुझे मार डालने के लिए यह हमला किया जा रहा है, मेरे साथ यह कार्यवाही की थी।

पहिले वाले स्थान से लगभग सौ फीट पीछे हट कर हमारा जुलूस फिर पंक्ति बांध कर खड़ा हो गया। पुलिस भी हट कर लगभग ५० फीट के फ़ासिले पर पंक्ति बना कर खड़ी हो गई। हम लोग वहीं खड़े रहे; इस बीच इन सब उपद्रवों की जड़ साइमन-कमीशन चुपचाप आध मील दूर से ही निकल गया। इस पर भी वे

पंडित नेहरू की एक मात्र संतान
(श्रीमती इंदिरा गाँधी)

प्रदर्शनकारियों के काले झण्डों से अपने को बचा न सके। थोड़ी देर बाद हम लोग पूरे जुलूस के साथ कांग्रेस के दफ्तर लौट आये और वहां हमारा जुलूस भंग हो गया। मैं फौरन पिताजी से मिला जो चिन्ता के साथ मेरी राह देख रहे थे।

जब उत्तेजना समाप्त हो गई तो मेरे सारे शरीर में थकावट और पीड़ा मालूम पड़ने लगी। शरीर के प्रत्येक भाग में दर्द हो रहा था और मेरे सारे शरीर में लाठियों की मार से घाव हो गये थे। सौभाग्यवश कहीं कोई बड़ा घाव न हुआ था। हमारे बहुत से साथी दुर्भाग्यवश अधिक घायल हो गये थे। पंडित गोबिन्दबल्लभ पंत पर सब से अधिक मार पड़ी थी क्योंकि वे ६ फीट के लम्बे, चौड़े आदमी थे। उनके इतनी चोट लगी थी कि वे बरसों तक न तो अपनी पीठ सीधी कर सके और न जन-कार्य में अधिक भाग ले सके। मेरा शरीर अधिक दृढ़ था और मार सहन कर सकता था। मुझे मार खाने से अधिक उन पुलिस वालों और विशेष कर के उन अफ़सरों का चेहरा याद रहा जो हम पर हमला कर रहे थे। यूरोपियन सार्जेण्टों ने ही अधिक कस कर हम लोगों को मारा था, भारतीय पुलिस ने अधिक उत्साह इसमें न दिखाया था। उन यूरोपियन अफ़सरों के चेहरे हम लोगों के प्रति घृणा से भरे हुए थे और वे लोग हमारे ऊपर क्रोध से पागल हो गये थे। उनमें न तो इंसानियत रह गई थी और न सहानुभूति की कोई किरण शेष रह गई थी।

हम लोग अंध-भक्तों की तरह देश के लिए लड़ रहे थे। हमारा कारण और फल से क्या सम्बन्ध था?

भारतीय स्वतंत्रता-दिवस की पहली वर्षगांठ के अवसर पर लंदन के अलवर्ट हाल में बोलते हुए भारत के अंतिम वाइसराय लार्ड माउँटबेटन ने कहा :—

'भारत के नेता भारतीय-संघ की समस्याओं को, जो इतनी उलझी हुई हैं जितनी हजार वर्ष पहिले स्वतंत्रता पाये हुए देश की भी नहीं हो सकतीं, बड़ी तत्परता से सुलझा रहे हैं। भारत सरकार को साम्प्रदायिक दंगों, अकाल तथा शरणार्थियों-जैसी भयंकर समस्याओं के होते हुए शासन की एक मेशीनरी बनानी पड़ी है; और उन्होंने सफलतापूर्वक इन समस्याओं को हल किया है। नेहरू की सरकार ने सैकड़ों सुधार की योजनायें बनाई हैं। इन योजनाओं को नये यंत्रों के द्वारा कार्यान्वित करने में इतना श्रम किया गया है जितना कभी नहीं किया गया था। इन योजनाओं द्वारा ५० वर्षों में जोधपुर और बीकानेर के रेगिस्तान भी उपजाऊ जमीन होकर लहलहा उठेंगे।

पं० नेहरू की भरि भरि प्रशंसा करते हुए लार्ड माउँटबेटन ने कहा 'भारत का सौभाग्य है कि उसे पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसा प्रथम प्रधान मंत्री मिला है। उन्होंने अपने बल पर चल कर ही अपना महत्व स्थापित किया है। यह सत्य है कि पंडित नेहरू से बड़ा राजनीतिज्ञ मैंने जीवन में नहीं देखा; उनका जैसा मित्र भी आज तक माउँटबेटन-परिवार को नहीं मिला। हमारा पंडित नेहरू से बड़ा कोई मित्र नहीं है'।

टोरोन्टो में कैनेडियन प्रदर्शनी के अवसर पर बोलते हुए २५ अगस्त १६४८ को लार्ड माउँटबेटन ने कहा 'श्री राजगोपालाचारी तथा पंडित नेहरू-जैसे भारतीय नेताओं पर मेरी अटूट श्रद्धा है। भारत के शासन का भार मुख्यतः पंडित जवाहरलाल नेहरू के कन्धों पर है। मेरे मत से पंडित नेहरू संसार के सबसे बड़े जीवित राजनीतिज्ञ हैं।

जीव-जन्तुओं के मित्र जवाहर।

मैं देहरादून जेल की उस छोटी सी कोठरी में लगभग साढ़े चौदह महीने रहा और यह अनुभव करने लगा कि जैसे यह मेरा ही घर हो। उसके प्रत्येक भाग से मैं परिचित हो गया। सफेद दीवालों, छत और कीड़ों द्वारा खाई हुई धन्नियों पर पड़ी हुई प्रत्येक रेखा और बिन्दु से मैं परिचित हो गया। जेल में निजी कार्यों से अधिक अवकाश मिलने के कारण हम प्रकृति के अधिक निकट होते चले गये। अपने सामने आने-जाने वाले जानवरों और कीड़ों को हम बड़ी उत्सुकता से देखते थे। जैसे जैसे इस ओर मेरी उत्सुकता बढ़ती गई वैसे ही वैसे मैं अपनी कोठरी और उसके बाहर आंगन में रहनेवाले कीड़ों-मकोड़ों में दिलचस्पी लेने लगा। मैंने अनुभव किया कि मेरी वह शिकायत गलत थी कि मेरा आंगन सूना और उजड़ा हुआ है क्योंकि मैंने यह पाया कि वह जीवों से भरा हुआ था। यह सब रेंगने, फिसल कर चलने वाले और उड़ने वाले कीड़े-मकोड़े मेरे दैनिक जीवन में बिना किसी प्रकार का हस्तक्षेप किये हुए रह रहे थे। तब कोई कारण न था कि मैं उनसे किसी प्रकार की छेड़-छाड़ करता। हां, किन्तु खटमलों, मच्छरों और मक्खियों से मुझे निरन्तर युद्ध करना पड़ता था। बर्रों को मैं तरह दे जाता था क्योंकि मेरी कोठरी में सैकड़ों भरी पड़ी थीं। जब कभी मुझे ऐसा अनुभव होता था कि किसी बर्र ने मेरे डंक मार दिया है तो उसमें और मुझ में थोड़ी लड़ाई हो जाती थी। एक बार क्रोध में आकर मैंने सभी बर्रों को समाप्त कर देना चाहा किन्तु उन्होंने अपने इस अस्थायी घर की रक्षा के लिये मुझ से काफी युद्ध किया जिसमें कदाचित उनके अण्डे रखे थे। अन्त में मैंने हार मान ली और यह तय किया कि यदि वे मुझे किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें तो मैं उन्हें शान्ति के साथ रहने दूंगा। उसके बाद एक वर्ष से अधिक मैं उस कोठरी में उन बर्रों से घिरा हुआ रहता रहा किन्तु उन्होंने कभी मुझ पर आक्रमण नहीं किया। हम एक दूसरे का सम्मान करने लगे थे।

चमगादड़ों को मैं पसन्द नहीं करता किन्तु मुझे उनका भी स्वागत करना पड़ता था। वे शाम के अन्धेरे में बिना किसी प्रकार का शोर किये हुए उड़ा करते थे। मुझे उनसे बड़ा भय लगता था। वे चेहरे से एक इंच ऊपर उड़ कर निकल जाते थे और मुझे भय लगता था कि मेरे कहीं काट न लें। बड़े बड़े चमगादड़ हवा में ऊपर ही उड़ा करते थे।

मैं चीटियों, सफेद चीटियों और दूसरे कीड़े-मकोड़ों को भी ध्यान से देखा करता था। छिपकलियां, जो इन कीड़ों की तलाश में शाम को निकल कर बाहर आ जाती थीं, अपने अपने शिकारों की तलाश में एक दूसरे से

भिड़ती थीं और इस प्रकार अपनी पूंछ हिलाया करती थीं जिसको देखकर मुझे बड़ा आनंद आता था। वे प्रायः बरोंके पीछे न पड़ती थीं किन्तु एक दो बार मैने उन्हें बड़ी सावधानी से इन बरों को सामने आकर पकड़ते देखा।

जहां पर वृक्ष थे वहां मैंने गिलहरियों के झुण्डों को भी स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करते देखा। वे बड़ी साहसी थीं और हमारे पास आ जाती थीं। लखनऊ जेल में जब मैं घंटों बिना हिले डुले बैठा पढ़ता रहता था गिलहरी मेरे पैरों पर चढ़ कर गोद में आ बैठती थी और मेरे मुँह की ओर देखने लगती थीं। और तब वह मेरी आंखों की ओर गौर से देखती थीं और अनुभव करती थीं कि मैं वृक्ष नहीं हूँ। वह मुझे चाहे जो कुछ भी समझती हों मैं नहीं बता सकता। क्षण भर के अन्दर ही वह भयभीत होकर भाग खड़ी होती थीं। कभी कभी गिलहरियों के छोटे छोटे बच्चे पेड़ों से नीचे गिरते रहते थे तब उनकी मां उनके पीछे दौड़ी हुई आती थीं और उन्हें गेंद-सा अपने मुँह में दबा कर सुरक्षित स्थान पर ले जाती थी। कभी-कभी बच्चे खो भी जाया करते थे। हमारे एक साथी ने इस प्रकार के तीन गिलहरियों के खोये हुए बच्चों को पाल रक्खा था। वे इतने छोटे थे कि उनको पालना एक कठिन समस्या बन गई। अन्त में हमने इस समस्या को बुद्धिमानी से हल किया। हमने उनको फ़ाउन्टेनपेन में स्याही भरने वाले फिलर से दूध पिला कर पाला।

अलमोड़ा की जेल को छोड़ कर जितनी जेलों में मैं गया वे सब कबूतरों से भरी रहती थीं। जेलों में हजारों कबूतर रहते थे और शाम को आकाश उनसे ढक-सा जाता था। कभी-कभी जेल के अफ़सर उन्हें मार कर खा भी जाते थे। कहीं-कहीं मैना भी रहती थीं जो प्रायः सभी जगह पायी जाती हैं। देहरादून जेल की मेरी कोठरी में मैना के एक जोड़े ने अपना घोंसला बना रक्खा था। मैं उनको खिलाया पिलाया करता था। वे इतने पालतू हो गये थे कि यदि सुबह या शाम को उन्हें चारा मिलने में जरा देर हो जाती तो वे चुपचाप आकर मेरे पास बैठ जाते और जोर जोर से चिल्ला कर अपना भोजन मांगने लगते थे। इस समय उनकी हरकतें और धैर्यहीन चिल्लाहट सुन कर बड़ा आनन्द आता था।

नैनी जेल में हजारों तोते थे। एक बहुत बड़ी संख्या मेरे बैरिक की दीवालों पर रहा करती थी। उनका प्रेम-सम्भाषण और प्रेमालाप एक देखने वाला दृश्य होता था। कभी कभी एक मादा तोते के लिए दो नर तोते भीषणरूप से लड़ते थे तब मादा तोता शान्ति के साथ बैठा हुआ युद्ध के निर्णय को देखा करता था और विजयी के साथ जाने को तत्पर रहता था।

देहरादून जेल में सैकड़ों प्रकार की चिड़ियां थीं। वे परस्पर गातीं, चिड़चिड़ातीं और मधुर ध्वनि करती थीं। इनमें सर्वश्रेष्ठ कोयल की पुकार रहती थी।

बरेली जेल में बन्दरों का एक प्रदेश बसा हुआ था और उनकी क़िस्में देखने योग्य थीं। एक घटना ने मुझ पर बड़ा प्रभाव डाला। एक बन्दर का बच्चा हमारी बैरिक के अन्दर आ गया और लौट कर फिर दीवाल पर

बस यही है पंडित नेहरू का छोटा-सा परिवार !

न चढ़ सका। वार्डरों और कैदियों ने उसको पकड़ लिया और एक रस्सी उसके गले में बांध दी। ऊँची दीवाल के शिखर से उस बच्चे के मां बाप ने यह सब कुछ देखा और उनका क्रोध बढ़ने लगा। एकाएक उनमें से एक बहुत बड़ा और मोटा बन्दर नीचे कूदा और उस भीड़ पर सीधा हमला किया जो उस बच्चे को घेरे हुए थी। यह एक बहुत ही बहादुरी का काम था क्योंकि वार्डर और कैदी हाथों में बड़े बड़े डंडे लिए हुए घुमा रहे थे। अन्त में इस अदम्य साहस की विजय हुई। मनुष्यों की भीड़ डरी और अपने डंडे छोड़ छोड़ कर भागी। इस प्रकार वह बड़ा बन्दर बच्चे को छुड़ा कर शान के साथ ले गया।

हमारी प्रायः ऐसे जानवरों से भी भेंट हो जाया करती थी जिनका हम स्वागत न कर सकते थे। हमारी कोठरियों में अक्सर बिच्छू घूमा करते थे। यह आश्चर्य की बात है कि उन्होंने कभी मेरे डंक नहीं मारा हालांकि वे मेरे बिस्तरों पर मिलते थे या उस किताब में मिलते थे जिसे मैं अचानक उठा लिया करता था। एक बार मैंने एक जहरीले बिच्छू को थोड़े समय के लिये बोतल में भर कर रख दिया और उसे मक्खियां खिलाता रहा। उसके बाद मैंने उसे एक डोरे में बांध कर दीवाल पर लटका दिया। थोड़ी ही देर बाद वह वहां से भाग खड़ा हुआ। इस स्वतंत्र बिच्छू से मेरी दोबारा मिलने की इच्छा न थी। अतएव मैंने अपनी कोठरी को अच्छी तरह साफ़ किया और उसकी हर जगह तलाश की किन्तु वह ग़ायब हो गया था।

मेरी कोठरी में और उसके समीप तीन चार सांप भी पाये गये। एक सांप के मिलने को खबर तो समाचार-पत्रों में भी छप गई थी। इस प्रकार की नई घटनाओं का मैं स्वागत भी किया करता था क्योंकि जेल जीवन एक-सा रहता है; और जो घटना इस एक से जीवन को भंग करती है उसका स्वागत किया जाता है। मैं सांपों का स्वागत नहीं करता किन्तु उनसे डरता भी नहीं हूँ जैसे कि अन्य लोग डरते रहते हैं। यद्यपि मैं उनके काटे जाने से डरता हूँ और यदि सांप को देखता हूँ तो उससे अपनी रक्षा भी करता हूँ लेकिन मेरे हृदय में घबड़ाहट या डर नहीं पैदा होता।

जितने जीवों और कीड़े-मकोड़ों से मेरी जेल के अन्दर भेंट हुई उतनी जेल के बाहर नहीं हुई।

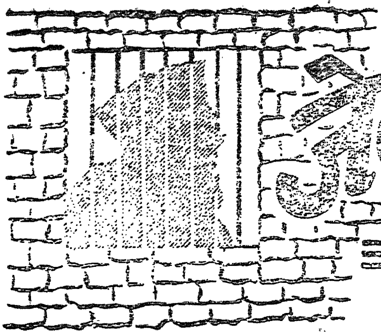

जेल के अनुभव

दिसंबर सन् १६२१ की बात है। पंडित नेहरू प्रयाग के कांग्रेस दफ्तर में काम कर रहे थे कि इतने ही में कुछ उत्तेजित-सा एक क्लर्क आया और उसने सूचना दी कि पुलिस ने दफ़्तर घेर लिया है और तलाशी लेना चाहती है। पंडित नेहरू के जीवन में इस प्रकार की यह एक पहली बात थी। किन्तु उन्होंने दृढ़ता के साथ उसका सामना करने का निश्चय किया।

वहां की तलाशी के बाद ज्योंही वे अपने घर पहुँचे उन्होंने देखा कि पुलिस वहां भी घेरा डाले पड़ी है और तलाशी ले रही है। इसके बाद पुलिस ने उन्हें तथा उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू को गिरफ़्तार कर लिया। यह गिरफ़्तारी प्रिंस आफ़ वेल्स के भारत के आगमन के बहिष्कारसंबंधी कार्य-क्रम के संबंध में हुई थी।

इस अभियोग में पंडित जवाहरलाल नेहरू को ६ मास का कारावास का दंड दिया गया था। पंडित नेहरू ने मुक़दमे में किसी भी प्रकार का भाग नहीं लिया था। उन पर हड़ताल कराने के लिए जनता में नोटिस बांटने का अभियोग लगाया गया था।

तीन ही मास बाद उन्हें जेल में सूचना दी गई कि उन्हें जो सज़ा दी गई है वह ग़लत है इसलिए वे छोड़ दिये जायेंगे।

किन्तु—

दूसरी जेल यात्रा

केवल ६ सप्ताह बाहर रहने के बाद वे फिर पकड़ लिए गये। उन्हें अलग अलग अभियोगों में तीन सज़ायें दी गईं। इस प्रकार सब मिला-जुला कर उन्हें एक साल नौ महीने की सज़ायें दी गईं।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के मास्को से वापस आने पर प्रधान मंत्री नेहरू जी अपनी वहिन को गले लगा रहे हैं।

जनवरी सन् १६२३ में वे लखनऊ जेल से अन्य सब राजनैतिक बंदियों के साथ छोड़ दिये गये। पंडित नेहरू ने अपने जेल के अनुभव के सम्बन्ध में लिखा है कि 'हम अपनी खुशी से जेल आये थे, और बहुत से स्वयंसेवक तो बिना बुलाये स्वयं जबरदस्ती भीतर घुस आये थे। इसलिये यह प्रश्न तो था ही नहीं कि कोई भाग जाने की कोशिश करता। अगर कोई बाहर जाना चाहता तो वह अपने अपराध के लिये खेद प्रकट करने मात्र ही से जा सकता था। भागने की कोशिश करने से तो बदनामी होती थी, और ऐसा कार्य करना सत्याग्रह-जैसे राजनैतिक कार्य से अलग हो जाने के समान था। लखनऊ जेल के सुपरिंटेंडेंट ने यह बात अच्छी तरह समझ ली थी और वह जेलर से कहा करता था कि अगर आप कुछ कांग्रेस-स्वयंसेवकों को भाग जाने देने में कामयाब हो सकें तो मैं आपको खान बहादुर बनाने के लिये सरकार से सिफ़ारिश करूंगा। हमारे साथ के ज़्यादातर कैदी जेल के भीतरी चक्कर की बड़ी बड़ी बैरकों में रक्खे जाते थे। हम में से १८ व्यक्तियों को, जिन्हें मेरे विचार से अच्छे बर्ताव के लिये चुना गया था, एक पुराने वीविंग-शेड में रक्खा गया था। इसके साथ एक बड़ी खुली जगह थी। मेरे पिताजी, मेरे दो चचेरे भाई और मेरे लिये एक अलग सायबान था जो क़रीब क़रीब २० X १६ फ़ुट था। हमको एक बैरक से दूसरी बैरक में आने-जाने की आज़ादी थी। संबंधियों से काफ़ी भेंट करने की आज्ञा मिल जाती थी। अखबार आते थे और नई गिरफ़्तारियों तथा हमारी लड़ाई की प्रगति के समाचारों से जोश का वातावरण रहता था। आपसी बातचीत और बहस में बहुत वक़्त जाता था। मैं पढ़ना या दूसरा ठोस कार्य कुछ न कर पाता था। मैं सुबह का वक़्त अपने सायबान को अच्छी तरह साफ़ करने और धोने में, पिताजी के और अपने कपड़े साफ़ करने में तथा चरखा कातने में गुज़ारा करता था। शुरू के कुछ हफ़्तों में हमको अपने स्वयंसेवकों के लिये, या उनमें से जो अपढ़ थे उनके लिये, हिंदी, उर्दू और दूसरे प्रारंभिक विषय पढ़ाने के लिये क्लास खोलने की आज्ञा मिल गई थी। तीसरे पहर हम 'वाली-बाल' खेला करते थे।

तीसरी जेल-यात्रा

सन् १६२३ के अन्तिम महीने में नाभा में सिक्ख-आन्दोलन के संबंध में गिरफ़्तार किये गये। उन्हें नाभा-राज्य की आज्ञा-भंग करने के अभियोग में ६ मास का कारावास का दण्ड दिया गया। दूसरे अन्य अभियोग में उन्हें लगभग २ वर्ष का कठोर दंड दिया गया।

इस विषय में पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'सारे दिन हम हवालात में बंद रक्खे गये और शाम को हमें क़ायदे से स्टेशन ले जाया गया। श्री सन्तानम् और मुझको एक ही हथकड़ी डाली गई। उनकी बाईं कलाई मेरी दाहिनी कलाई से बांध दी गई थी, और हथकड़ी की जंजीर हमें ले चलने वाले पुलिस वाले ने पकड़ ली। जैतों के बाज़ारों से इस प्रकार जाते हुए मुझे बार बार कुत्तों के जंजीर पकड़ कर ले जाने की याद आती थी। आरंभ में तो हम झल्ला उठे, मगर फिर हमने सोचा कि यह घटना बड़ी मजेदार है और हम इसका मज़ा लेने लगे। ...... जेल में हम लोग एक बहुत ही रद्दी और गंदी कोठरी में रक्खे गये। वह छोटी सी और सीलवाली

कोठरी थी। उसकी छत इतनी नीची थी कि उस तक हमारा हाथ करीब-करीब पहुँच जाता था। हम जमीन पर ही सोये और मैं बीच बीच में एकाएक जाग उठता था, और तब मालूम होता कि मेरे मुँह पर से कोई चूहा या चुहिया निकल गई है।

आगे चल कर रियासतों की अदालतों का चित्र खींचते हुए पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'मजिस्ट्रेट या जज बिल्कुल अपढ़ मालूम पड़ता था। निःसंदेह अंग्रेजी तो वह जानता ही न था, मगर मुझे शक है कि वह अपनी अदालत की भाषा उर्दू लिखना शायद ही जानता हो। हम उसे एक सप्ताह से अधिक देखते रहे और इस अर्से में उसने एक भी लाइन नहीं लिखी। अगर उसे कुछ लिखना होता था तो वह सरिश्तेदार से लिखवाता था। हमने कई छोटी छोटी अर्जियां पेश कीं। वह उन वक्त उन पर कोई हुक्म न लिखता था। वह उन्हें रख लेता था और दूसरे दिन उन्हें निकालता था। उनपर किसी और के ही लिखे हुए नोट रहते थे'।

पंडित नेहरू को नाभा में सजा न भुगतनी पड़ी और शीघ्र ही वे जेल से रिहा कर दिये गये।

चौथी जेल यात्रा

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के संबंध में १४ अप्रैल सन् १९३० ई० को पंडित नेहरू चौथी बार गिरफ्तार कर लिए गये। वे रायपुर (मध्य-प्रांत) की एक कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए रेलगाड़ी पर सवार हो रहे थे। उसी दिन नमक-कानून भंग करने के अभियोग में उन्हें ६ मास का कठिन कारावास का दंड दे दिया गया। वे नैनी सेन्ट्रल जेल में रक्खे गये।

इस जेल-यात्रा के संबंध में पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'मैं क़रीब सात साल के बाद जेल गया था, और जेल-जीवन की स्मृतियां कुछ-कुछ धुँधली हो गई थीं। मैं नैनी सेन्ट्रल जेल में, जो प्रांत का एक बड़ा जेलखाना है, रक्खा गया था। वहां मुझे अकेले रहने का नया अनुभव मिला। मेरा अहाता बड़े अहाते से, जिसमें कि बाइस या तेईस सौ बन्दी थे, अलग था। वह एक छोटा सा गोल घेरा था, जिसका व्यास लगभग एक सौ फीट था और जिसके चारों तरफ़ क़रीब पन्द्रह फ़ीट ऊँची गोल दीवार थी। उसके बीचों बीच एक मटमैली और भद्दी सी इमारत थी, जिसमें चार कोठरियां थीं। मुझे इनमें से दो कोठरियां, जो एक दूसरे से मिली हुई थीं, दी गईं। एक नहाने धोने वगैरः के लिए थी। दूसरी कोठरियां कुछ वक्त तक खाली रहीं।.........गरमी का मौसम प्रारम्भ हो गया था और मुझे रात को अपनी कोठरी के बाहर खुले में सोने की आज्ञा मिल गई थी। मेरा पलंग भारी जंजीरों से कस दिया गया था ताकि मैं कहीं उसे लेकर भाग न जाऊँ, या शायद इसलिए कि पलंग कहीं अहाते की दीवार पर चढ़ने की सीढ़ी न बना लिया जाय। रात भर अजीब तरह की आवाजें आया करती थीं।

१० अगस्त को पंडित नेहरू स्पेशल ट्रेन द्वारा पूना ले जाये गये। वहां गांधी-इर्विन-संधि के संबंध में यरवदा जेल में महात्मा गांधी, श्री बल्लभ भाई पटेल तथा श्रीमती सरोजिनी नायडू से उनकी भेंट कराई गई।

१६ अगस्त को पंडित नेहरू फिर पूना की यरवदा जेल से नैनी जेल वापिस लाये गये।

११ अक्टूबर को सज़ा की अवधि पूरी हो जाने पर वे नैनी जेल से छोड़ दिये गये।

पांचवीं जेल-यात्रा

१६ अक्टूबर सन् १६३० ई० को एक सभा से घर लौटते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू फिर गिरफ़्तार कर लिए गये। वे फिर सेंट्रल जेल आगये।

उन्हें दफ़ा १२४ के अभियोग में १८ मास का कठोर दण्ड और ५००) जुर्माना, नमक-कानून के मुताबिक ६ महीने की कठोर क़ैद और १००) जुर्माना तथा १६३० के आर्डिनेंस ६ के मातहत ६ मास का कारावास तथा १००) जुर्माने की सजायें दी गईं। कुल मिला कर दो वर्ष की सज़ा भुगतने को थी।

इस अवधि में पंडित नेहरू ने जेल में राजनैतिक बंदियों के बेंत लगाने वाली बर्बर प्रथा के विरोध-स्वरूप ७२ घंटे का उपवास किया।

पं० मोतीलाल नेहरू की हालत चिन्ताजनक होने के कारण २६ जनवरी १६३१ को वे नैनी सेंट्रल जेल से छोड़ दिये गये।

छठी जेल-यात्रा

२६ दिसम्बर सन् १६३१ ई० को प्रयाग के निकट इरादतगंज स्टेशन पर बम्बई जाते हुए पंडित नेहरू छठी बार गिरफ़्तार कर लिए गये। वे श्री तसद्दुक अहमद शेरवानी के साथ बम्बई में लंदन से लौटते हुए महात्मा गांधी से मिलने जा रहे थे।

४ जनवरी सन् १६३२ को उन्हें दो साल की सख़्त क़ैद और ५००) जुर्माने का दंड दिया गया।

इस जेल के अनुभव के सम्बन्ध में पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'इस तरह हम नैनी जेल में बाहर के झगड़ों से अलग पड़े हुये थे, फिर भी उनमें सैकड़ों तरह से उलझे हुए रह रहे थे। हमने अपने को सूत कातने, पढ़ने या दूसरे कामों में लगाये रक्खा, और कभी कभी हम दूसरे मामलों पर भी बातचीत करते थे। हम हमेशा यही बात सोचा करते थे कि जेल की चारदीवारी के बाहर क्या हो रहा है। उससे हम अलग भी थे और फिर भी उसमें शामिल थे'।

६ सप्ताह नैनी जेल में रहने के बाद उनका तबादिला बरेली जिला जेल में कर दिया गया। उनकी तंदुरुस्ती फिर गड़बड़ रहने लगी। उन्हें रोज बुखार आ जाता। जब गरमी ज़्यादा बढ़ी तो ४ मास बाद ही उनका तबादिला देहरादून जेल में कर दिया गया। वहां वे लगभग १४ मास रहे और पूरी अवधि समाप्त करके छूटे।

सातवीं जेल-यात्रा

किन्तु छूटने के ५ महीने बाद ही वे फिर पकड़ लिये गये।

माता स्वरूपरानी की हालत चिन्ताजनक होने के कारण ३० अगस्त को वे देहरादून से नैनी जेल लाकर छोड़ दिये गये।

आठवीं जेल-यात्रा

१२ फरवरी सन् १९३४ को पंडित नेहरू फिर गिरफ़्तार कर लिये गये। वे कलकत्ते के एक वारंट के आधार पर आनंद-भवन ही में गिरफ्तार किये गये थे।

उसी रात को वे कलकत्ते ले जाये गये तथा शुरू में उन्हें प्रेसीडेन्सी जेल में रक्खा गया। १६ फरवरी को ही उन्हें दो वर्ष की सजा दे दी गई।

थोड़े ही दिनों में उनका तबादिला अलीपुर जेल में कर दिया गया।

नवीं जेल-यात्रा

अक्टूबर सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह के संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू गिरफ़्तार कर लिये गये। उन्हें एक व्याख्यान देने के अभियोग में पकड़ा गया तथा चार वर्ष की सख्त सजा दी गई।

पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'अक्टूबर सन् १९४० से हम लोग एक साल से ऊपर जेलों में रहे। जो कुछ खबरें हमको मिल सकती थीं उनकी मदद से हम लड़ाई का रुख, हिन्दुस्तान तथा सारी दुनियां की घटनाओं को समझने की कोशिश करते थे। हमने प्रेसीडेंट रुज़वेल्ट की चार आज़ादियों की बात पढ़ी, एटलांटिक चार्टर की बात सुनी और फिर कुछ ही दिनों बाद मि० चर्चिल की वह शर्त भी सुन ली कि यह चार्टर हिन्दुस्तान पर लागू नहीं होगा। जून १९४१ में सोवियत रूस पर हिटलर के अचानक हमले से हम लोग कांप उठे। तब से चिन्ता और उत्सुकता के साथ लड़ाई की हालत में तेजी से होने वाली तब्दीलियों पर आंख लगाये रहे'।

४ दिसम्बर सन् १९४१ को हम में से बहुत से लोग छोड़ दिये गये।

उनकी अन्तिम जेल-यात्रा

पंडित जवाहरलाल नेहरू अन्तिम बार ९ अगस्त सन् १९४२ को प्रातःकाल बम्बई में गिरफ़्तार कर लिये गये।

उनकी गिरफ़्तारी के सम्बन्ध में उनकी छोटी बहिन श्रीमती कृष्णा हठीसिंह ने अपनी पुस्तक 'विथ नो रीग्रेट' में लिखा है—'९ अगस्त १९४२ को ठीक पांच बजे सुबह बम्बई की पुलिस अचानक हमारे घर पहुँची। उसके

नाना की गोद में

पास जवाहर और राजा (मेरे पति) की गिरफ़्तारी के वारंट थे। आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के जलसों में कई दिन के भारी काम की वजह से हम सब थकान से चूर थे। रात को हम सब बहुत देर तक बैठे हाल की बातों पर बहस करते रहे। आधी रात को हमारे मेहमान चले गये थे; फिर मैं, जवाहर और राजा एक घंटे और बातें करते रहे। फिर हम सब सो गये। रात को इतनी देर तक जागने के बाद बड़े तड़के जगाया जाना ही काफ़ी बुरा था। पर अपने दरवाज़े पर उस समय पुलिस को मौजूद पाना उससे भी ज़्यादा बुरा था। जब दरवाज़े की घंटी बजी तो मैं गहरी नींद में थी; फिर भी मैं घंटी सुनते ही उठ बैठी और मुझसे किसी के यह कहने की जरूरत न पड़ी कि पुलिस आगई है। उस वक्त सिवाय पुलिस के और आ भी कौन सकता था। मैं जल्दी से जवाहर के कमरे में गई यह सोच कर कि वारंट सिर्फ़ उन्हीं के लिये होगा। वे बहुत ज़्यादा थके हुए थे, इसलिये उनकी आंखें भी नहीं खुल रही थीं, और न वे अभी ठीक से जग ही पाये थे। चन्द मिनट के भीतर हमारा घर भर जाग गया। जब हमने समझ लिया कि होनहार होकर ही रहती है तो हम सब जवाहर का सामान बांधने में उन्हें मदद देने लगे। राजा भी कुछ किताबें जमा करने में हाथ बँटा रहे थे कि मेरी भतीजी इंदिरा ने कहा 'राजा भाई, आप क्यों तैयार नहीं हो रहे हैं?' यह सुन कर मैंने तेज़ी से पलट कर पूछा "किस लिए?" झट से इंदिरा ने कहा 'इनके लिए भी तो वारंट है'। न मालूम क्यों हममें से किसी को यह खयाल नहीं था कि पहिले ही हल्ले में वर्किंग कमेटी के सदस्यों के अतिरिक्त और लोगों को भी गिरफ्तार कर लिया जायगा। पर हम लोग ग़लती पर थे। राजा ने भी अपना सामान ठीक किया और बहुत जल्द वे दोनों जाने के लिये तैयार होगये। हमने उन्हें विदा किया और पुलिस अफ़सर अपने पहरे में उन्हें उनकी गाड़ियों तक ले गये। जवाहर को किसी अज्ञात स्थान के लिये ले जाया जा रहा था तथा राजा को यरवदा सेंट्रल जेल पूना में। हमने उन दोनों को नमस्कार किया और सब यह सोचते हुए वापस लौटे कि न मालूम इस बार भविष्य में हम सब की क़िस्मत में क्या लिखा है'।

इस बार पंडित नेहरू अहमदनगर के क़िले में रक्खे गये, अनिश्चित काल के लिए।

२८ मार्च सन् १९४५ में वे नैनी सेंट्रल जेल लाये गये। वहां से वे बरेली के निकट इज्ज़तनगर सेंट्रल जेल में ले जाये गये। यहां वे लगभग दो मास रहे। यहां से वे फिर अल्मोड़ा जेल लाये गये।

ठीक १०४१ दिन बाद वे १५ जून को छोड़ दिये गये। यह उनकी सब से लम्बी अवधि जेल में रहने की थी।

× × ×

इस प्रकार पंडित जवाहरलाल नेहरू नौ बार ब्रिटिश सरकार के मेहमान होकर जेलों में रहे। बीच में एक बार वे नाभा-स्टेट की जेल में भी कुछेक दिनों के लिए रहे।

अपनी इन यात्राओं में वे अधिकांशतः नैनी सेंट्रल जेल, लखनऊ जेल, देहरादून जेल, अल्मोड़ा जेल, अलीपुर जेल, बरेली सेंट्रल जेल तथा अहमदनगर के क़िले में रहे।

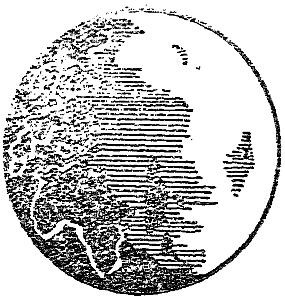

विदेश का जीवन

मई सन् १९०५ में पंद्रह वर्ष की अवस्था में पहिली बार पं० जवाहरलाल नेहरू विदेश गये। उनके साथ उनके पिता, मां तथा छोटी बहिन कृष्णा नेहरू भी थीं। वहां वे हैरो में पढ़ने के लिये दाखिल हुए। उनका परिवार तो यूरोप भ्रमण के बाद हिन्दुस्तान लौट गया किन्तु वे अब इंगलैंड में विद्यार्थी की हैसियत से रहने लगे।

पहिले तो उनकी वहां अधिक तबियत न लगी; उन्हें घर की याद सताती और कुछ अकेलापन-सा अनुभव होता था। धीरे धीरे उनका मन लगता गया और पढ़ने-लिखने तथा खेल कूद में पड़ कर वे घर को भूलने लगे। अंग्रेजी विद्यार्थियों से उनका अधिक मेल न बैठता था क्योंकि जवाहरलाल में सदा यह भावना घर करती रहती थी कि मैं इन लोगों में से नहीं हूँ और यहां के लोग भी मेरी बाबत यही विचार रखते होंगे।

खेल-कूद में वे काफी हिस्सा लेते थे। यद्यपि लेटिन न जानने के कारण उन्हें नीचे दरजे में भरती किया गया था फिर भी उन्हें जल्दी ही तरक्की मिल गई। वे कई बातों में अधिक जानकारी रखते थे — राजनीति में उन्हें प्रारंभ से ही दिलचस्पी थी। वे अपने सहपाठियों की अपेक्षा अधिक पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ते थे। उसी वर्ष जब इंगलैंड में आम चुनाव हुआ तो उसमें जवाहरलाल नेहरू ने काफी दिलचस्पी ली। एक बार कक्षा में उनके अध्यापक ने ब्रिटेन की सरकार के विषय में विद्यार्थियों से कई प्रश्न पूछे। अध्यापक क बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि जवाहरलाल को छोड़ कर और कोई भी विद्यार्थी उनके प्रश्नों का उत्तर न दे सका।

राजनीति के अतिरिक्त उन्हें हवाई जहाजों के विषय में जानने का बड़ा शौक था। एक दिन जोश में आकर उन्होंने अपने पिता को लिख दिया कि मैं हर सप्ताह आप से हवाई जहाज द्वारा आकर मिल जाया करूँगा।

धीरे धीरे हैरो में उनका मन लग गया। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद जब सन् १९०७ में हिन्दुस्तान से बड़ी बड़ी राजनीतिक खबरें आने लगीं तो उनका मन बेचैन होने लगा। उनका मन अब हैरो में न लगता था, वे विश्व-विद्यालय में जाना चाहते थे। बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र में उस समय बड़ी बड़ी घटनायें हो रही थीं। बंगाल

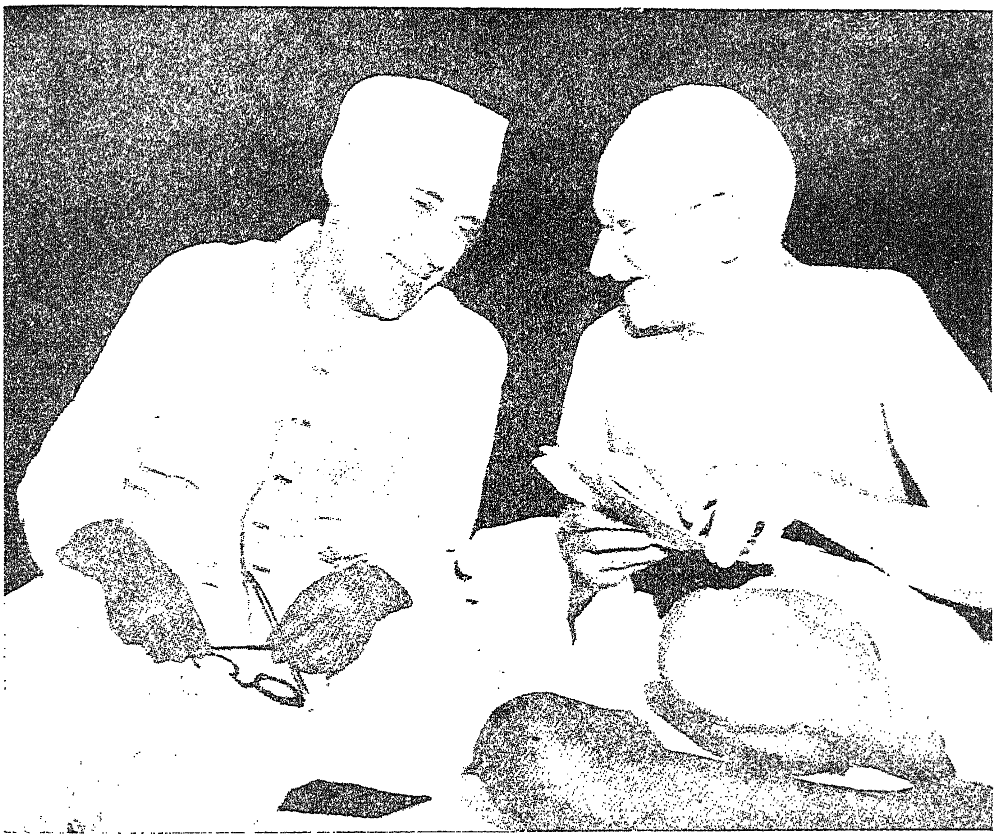

महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू
(गुरु-शिष्य)

में क्रांति मची हुई थी, पूना से तिलक का नाम चमक रहा था तथा पंजाब में लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को देश-निकाला दिया जा चुका था। जवाहरलाल पर इन बातों का भारी असर पड़ रहा था, किन्तु हैरो में उन्हें ऐसा कोई भी व्यक्ति न दिखलाई पड़ा जिससे वे इस संबंध में बात भी कर सकें।

अक्टूबर सन् १९०७ के आखीर में वे केम्ब्रिज चले गये तथा वहां के ट्रिनटी कालेज में भरती हो गये। अब उनका वास्तविकरूप से कालेज-जीवन प्रारम्भ था। वे वहां आकर बड़े प्रसन्न रहने लगे। उन्हें यहां बहुत से मित्र मिल गये। यहां पर उनका काफ़ी मानसिक विकास हुआ। उन्होंने रसायन-शास्त्र, भगर्भ-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र का अध्ययन किया। प्राकृतिक-विज्ञान की ओर उनकी बड़ी अभिरुचि थी। वे छुट्टियों में लंदन जाते तथा वहां लोगों से राजनीति तथा अर्थ-शास्त्र के संबंध में वाद-विवाद करते। यहीं से उनका राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हो जाता है।

वे तीन साल तक केम्ब्रिज में रहे। उन्होंने लिखा है कि 'केम्ब्रिज में या छुट्टियों में लंदन में अथवा दूसरी जगहों मे मुझे जो लोग मिले उनमें से बहुत से विद्वतापूर्ण ग्रन्थों के बारे में, साहित्य और इतिहास के बारे में, राजनीति और अर्थ-शास्त्र के बारे में बातचीत करते थे। पहले पहल तो ये बड़ी-बड़ी बातें मुझे बड़ी मुश्किल मालूम हुई, परन्तु जब मैंने कुछ किताबें पढ़ीं, तब सब बातें समझने लगा, जिससे मैं कम से कम अन्त तक बात करते हुए भी साधारण विषयों में से किसी के बारे में अपना घोर अज्ञान ज़ाहिर नहीं होने देता था। हम लोग नीत्शे और बर्नार्ड शा की भूमिकाओं तथा लाज डिकिन्सन की नई से नई पुस्तकों के बारे में बहस किया करते थे। उन दिनों केम्ब्रिज में नीत्शे की धूम थी। हम लोग अपने को बड़ा अक़्लमन्द समझते थे और स्त्री-पुरुष संबंधी तथा सदाचार आदि विषयों पर बड़े अधिकाररूप से, शान के साथ बातें करते थे। और बातचीत के सिलसिले में हैवलाक एलिस, एविंग और वीनिंगर के नाम लेते जाते थे। हम लोग महसूस करते थे कि इन विषयों के सिद्धांतों के बारे में हम जितना जानते हैं, विशेषज्ञों को छोड़ कर और किसी को उससे ज़्यादा जानने की जरूरत नहीं है'।

इधर हिन्दुस्तान अपने को राजनीतिक आन्दोलन के लिए तैयार कर चला था। उसने विदेशी शासन को अभिशाप समझना प्रारम्भ कर दिया था। देश में दमन प्रारम्भ हो गया था और लोकमान्य तिलक को पकड़ लिया गया था। भारतीय विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की ओर झुक चले थे। इसकी प्रतिक्रिया इंगलैंड में रहने वाले भारतीयों में भी प्रारम्भ हो गई थी। पंडित नेहरू उस समय अपनी गणना तिलक के गरम दल में करने लगे थे।

केम्ब्रिज में भारतीयों की एक मजलिस थी। इस मजलिस में भारतीय राजनीति पर काफ़ी गरम बहस हुआ करती थी। इसमें विद्यार्थी प्रमुखरूप से भाग लेते थे। बाद में चल कर ये ही विद्यार्थी सिविल सर्विस के सदस्य बन कर भारत आये तथा दमन में सरकार का हाथ बँटाया। इन्हीं दिनों केम्ब्रिज में पंडित नेहरू का कुछ प्रमुख भारतीय नेताओं से साक्षात्कार हुआ। इनमें श्री विपिनचंद्रपाल, लाला लाजपतराय तथा श्री गोपालकृष्ण गोखले

भी थे। पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'विपिनचंद्रपाल से हम अपनी एक बैठक में मिले। वहां हम सिर्फ एक दर्जन के क़रीब थे, लेकिन उन्होंने तो ऐसी गर्जना की कि मानों वह दस हजार की सभा में भाषण दे रहे हों। उनकी आवाज इतनी बुलन्द थी कि मैं उनकी बात को बहुत ही कम समझ सका। लालाजी ने हमसे अधिक विवेकपूर्ण ढंग से बातचीत की और उनकी बातों का मुझ पर बहुत असर पड़ा। मैंने पिताजी को लिखा था कि विपिनचंद्रपाल के मुक़ाबिले मुझे लालाजी का भाषण बहुत अच्छा लगा। इससे वे बड़े खुश हुए क्योंकि उन दिनों उन्हें बंगाल के आग-बबूला राजनीतिज्ञ अच्छे नहीं लगते थे'।

श्री सैफुद्दीन किचलू, डा० सैय्यदमहमूद और श्री तसद्दुक़अहमद शेरवानी उनके समकालीन थे। इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस एस० एम० सुलेमान भी उस समय केम्ब्रिज ही में थे।

बीस वर्ष की अवस्था में उन्हें केम्ब्रिज की डिग्री मिली। इसके बाद वे वकालत पढ़ने लगे। सन् १६१२ में उन्होंने बैरिस्टरी पास कर ली। लगभग सात वर्ष तक विलायत में रह कर वे भारत लौट आये।

मार्च सन् १६२६ में वे दूसरी बार विदेश गये। इस बार उनकी पत्नी और पुत्री भी साथ थीं। इस यात्रा का उद्देश्य अपनी रुग्ण पत्नी का इलाज तथा भारतीय राजनीति से कुछ काल के लिए विश्राम लेना था। पंडित नेहरू ने इस यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए स्वयं लिखा है कि 'डाक्टरों ने सिफ़ारिश की कि कमला का इलाज स्वीजरलैंड में कराया जाय। यह बात मुझे ख़ुद भी पसंद आई, क्योंकि मैं ख़ुद भी हिन्दुस्तान से बाहर चला जाना चाहता था। मेरा दिमाग़ साफ़ नहीं था। कोई साफ़ रास्ता दिखाई नहीं देता था। मैंने सोचा कि अगर मैं हिन्दुस्तान से दूर पहुँच जाऊँ तो चीज़ों को और अच्छी नज़र से देख सकूंगा और अपने दिमाग के अंधेरे कोने में रोशनी पहुँचा सकूंगा।

इस बार पंडित नेहरू सपरिवार अधिकतर स्वीजरलैंड में ही रहे। जिनेवा और मोण्टाना के पहाड़ी सेनेटोरियम ही में उनका समय व्यतीत हुआ। इस बीच में उन्होंने फ्रांस, इंगलैंड और जर्मनी की भी सैर की।

इन दिनों उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कोई खास घटना नहीं हुई। वे समाचार-पत्रों में भारतीय समाचार बड़ी उत्सुकता के साथ पढ़ते रहते थे यहीं पर उनसे कुछ ऐसे व्यक्तियों से भेंट हुई जो हिन्दुस्तानी सरकार-द्वारा क्रान्तिकारी समझ कर भारत से निकाल दिये गये थे। वे यहां पर रोम्या रोलां तथा राजा महेंद्र प्रताप से भी मिले।

एक वर्ष नौ महीने यूरोप में रह कर पंडित नेहरू भारतवर्ष लौट गये।

कमला नेहरू की अन्तिम घड़ियों के समय वे सितम्बर सन् १६३५ में फिर यूरोप गये। उस समय वे ब्लाक्फॉरेस्ट/स्वार्ट्ज्वाल्ड (जर्मनी) के बेडनवाइलर स्थान में रहे। उस समय यूरोप में अशान्ति के बादल लहरा रहे थे। अबीसीनिया पर इटली के बम बरस रहे थे।

उसके बाद स्वीज़रलैंड में श्रीमती कमला नेहरू का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु २८ फरवरी १६३६ में लोज़ान नामक स्थान में हुई। यहीं पर उन्हें सूचना मिली कि वे दूसरी बार इंडियन नेशनल कांग्रेस के सभापति चुन लिये गये हैं, अतएव वे हवाई जहाज़ द्वारा हिन्दुस्तान लौट आये।

रास्ते में रोम में, उन्हें सिन्योर मुसोलिनी से भेंट करने के लिये संदेश मिला, किन्तु उन्होंने उनसे भेंट नहीं की।

नेहरू का परिवार

अलभ्य पिता

पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने पिता के एक मात्र पुत्र हैं। इनके पिता स्वं० पंडित मोतीलाल नेहरू भारत की उन विभूतियों में से थे जिन पर सदैव देश को गर्व रहेगा। उन्होंने कानपुर के स्कूल तथा इलाहाबाद के कालेज में शिक्षा पाई थी। वे पहिले फ़ारसी और अरबी पढ़ते रहे—अंग्रेजी शिक्षा तो उन्होंने बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ की थी। तेज़ मिज़ाजी, अक्खड़पना और खेल-कूद में पटु होने के कारण उन्हें उनके अंग्रेज़ प्रोफेसर बहुत पसंद करते थे। प्रारम्भ में ही पढ़ने में अधिक ध्यान न देने पर भी अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर वे पास होते ही चले गये। बी० ए० के पास जाकर गाड़ी रुक गई। पहिला पर्चा बिगड़ जाने के कारण उन्होंने बी० ए० की परीक्षा ही नहीं दी।

बी० ए० की आशा छोड़ कर अब वे वकालत की ओर जुटे। हाईकोर्ट की वकालत के इम्तिहान में वे बैठे और प्रथम श्रेणी में पास हो गये। उन्हें इस पर स्वर्ण-पदक भी दिया गया। सबसे पहिले उन्होंने अपनी वकालत कानपुर में प्रारम्भ की किन्तु तीन साल बाद ही वे प्रयाग चले आये और हाईकोर्ट में प्रेक्टिस करने लगे। इसी समय उनके बड़े भाई पंडित नन्दलाल का स्वर्गवास होगया और पंडित मोतीलाल नेहरू के ऊपर सारे परिवार के भरण-पोषण का भार आ पड़ा।

पंडित नेहरू की बुद्धि विलक्षण और तीव्र थी। शीघ्र ही उन्हें वकालत में महान सफलता मिली। थोड़े ही दिनों में वे प्रयाग के, फिर प्रान्त के और बाद में एक विश्व-विख्यात वकील होगये।

पं० मोतीलाल बहुत ही ऊँचे स्वभाव के व्यक्ति थे। वे बड़े आदमियों की संगत करते, बुद्धिमानों से संपर्क

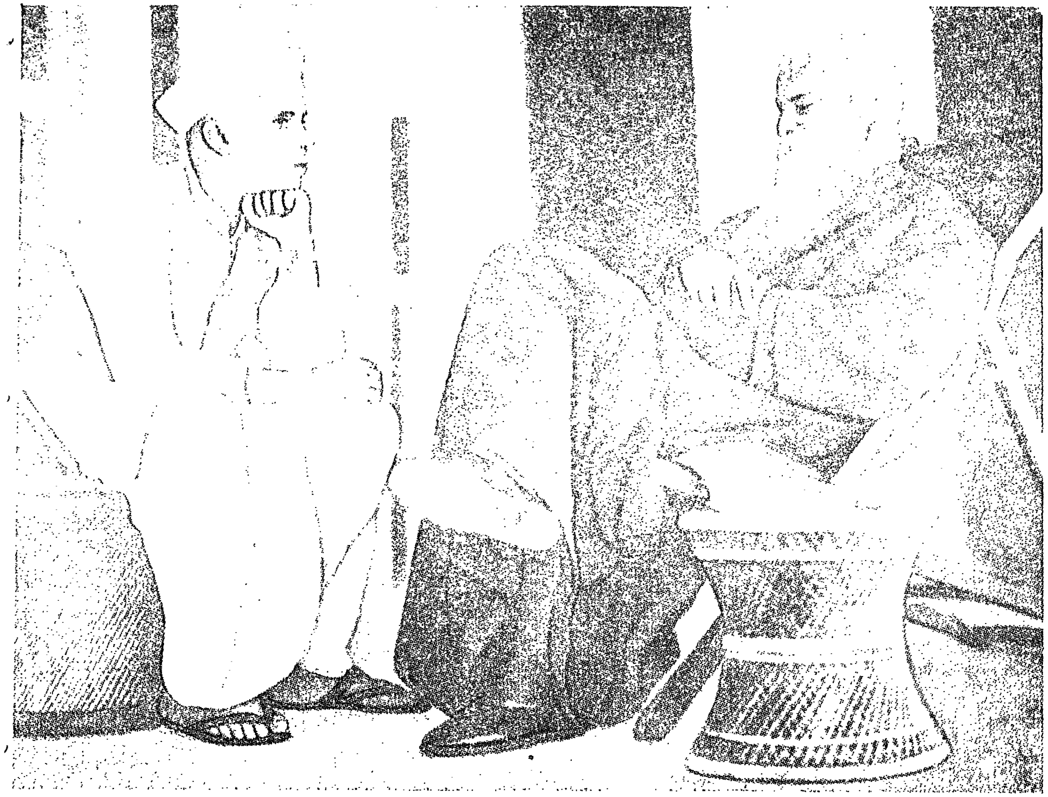

जवाहर लाल और विश्व कवि

बढ़ाते तथा ऊँचे ढंग से रहना पसंद करते थे । वे हँसने में बेजोड़ थे, सारे प्रयाग में उनकी हँसी प्रसिद्ध थी। जब उन्हें क्रोध आता था तो वे बड़े भयानक हो उठते थे ।

वे प्रारम्भ ही से राष्ट्रवादी थे, किन्तु किसी के नीचे रह कर उन्हें काम करना पसंद न था । यही कारण है कि प्रारम्भ में उन्होंने कांग्रेस के किसी कार्य में कोई खास दिलचस्पी नहीं ली । वे किसी की सहायता या मेहरबानी प्राप्त करके ऊपर उठना न चाहते थे । वे बल, साहस और बुद्धिमत्ता के अवतार थे, जिस काम में जुट जाते उसमें सफलता अवश्य प्राप्त करते थे ।

सन् १९१९ में वे कांग्रेस के अमृतसर-अधिवेशन के सभापति हुए तथा कांग्रेस-आन्दोलन के सम्बन्ध में सन् १९२१ में गिरफ़्तार कर लिए गये । पं० मोतीलाल अब देश की उग्र राजनीति में आ गये थे और उनका प्रिय पेशा वकालत उनसे अलग हो गया था ।

सन् १९२९ की कलकत्ता-कांग्रेस के वे सभापति थे । वे जेल में रहने योग्य न थे, अतएव वहां के अनुपयुक्त वातावरण ने उनका स्वास्थ्य नष्ट कर दिया और इसी के कारण सन् १९३१ में उनका स्वर्गवास हो गया ।

उनके सम्बन्ध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि 'उनका डील-डौल तो भव्य मगर चेहरा भाव-शून्य दिखाई देता था, क्योंकि वरम आ जाने से चेहरे पर भाव प्रकट नहीं हो पाते थे। लेकिन जैसे जैसे एक के बाद एक साथी आते और जाते थे तैसे तैसे उन्हें पहिचान पहिचान कर उनकी आंखों में चमक आ जाती थी । उनका सिर कुछ झुकता जाता था और नमस्कार के लिए हाथ जुड़ जाते थे । हालांकि वे ज़्यादा नहीं बोलते थे, कभी कभी कुछ शब्द बोलते थे, मगर फिर भी उनका पुराना हँसी-मज़ाक कायम था । वे एक बूढ़े शेर की तरह, जिसका शरीर बुरी तरह जख्मी हो गया हो और जिसकी ताक़त शरीर से क़रीब क़रीब चली गई हो, बैठे थे, लेकिन उस हालत में भी उनकी शान तो सिंहों या राजाओं जैसी ही थी । चीज़ें उनकी पकड़ से निकलना चाहती थीं और वे उन पर क़ाबू पाने की कोशिश कर रहे थे । उन्होंने गांधीजी से कहा था—'महात्मा जी ! मैं जल्दी ही चला जाने वाला हूँ, स्वराज्य देखने के लिए जिन्दा न रहूँगा । लेकिन मैं जानता हूँ कि आपने स्वराज्य जीत लिया है और जल्दी ही वह आपके हाथ में आ जायगा' ।

करुणामयी माता

जवाहरलाल नेहरू की स्वर्गीय माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू त्याग और ममता की साक्षात प्रतिमा थीं। वे सुडौल, क़द में छोटी और नाटी थीं । उन्हें स्मरण कर पौराणिक पतिव्रताओं की याद आ जाती है । उन्होंने देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में पति और पुत्र का साथ दिया; उन्होंने जुलूस का नेतृत्व कर के लाठियां खाईं ।

पंडित नेहरू ने इस सम्बंध में लिखा है कि 'धीरे धीरे वे चंगी हो गईं और जब वे दूसरे महीने बरेली जेल

में मुझसे मिलने आईं, तब उनके सिर पर पट्टी बँधी थी। लेकिन उन्हें इस बात की बड़ी भारी खुशी और महान गर्व था कि वे हमारे स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओं के साथ बेतों और लाठियों की मार खाने के सम्मान से वंचित न रहीं। उनका स्वास्थ्य लाभ उतना वास्तविक नहीं था जितना दिखावटी, और ऐसा मालूम पड़ता था कि इतनी बड़ी उमर में इन्हें जो झकझोरे सहने पड़े उनसे उनका शरीर जर्जर हो गया और इन गहरी तकलीफ़ों को उभाड़ दिया जिन्होंने एक साल बाद ही भीषण रूप धारण कर लिया था'।

प्रख्यात बहिनें

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित उनकी छोटी बहिन हैं। उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों में प्रारम्भ ही से भाई का हाथ बँटाया है। वे जवाहरलाल से लगभग ११ वर्ष छोटी हैं। वे राष्ट्रीय संग्राम में कई बार जेल गईं तथा काफ़ी क्षति उठाई। पति श्री रणजीत पंडित बहुत बड़े संस्कृत के विद्वान थे। कांग्रेस-आन्दोलन में भाग लेने के कारण वे कई बार जेल गये तथा वहीं पर बीमार हो गये। इस बीमारी से वे मुक्त न हो सके और स्वातंत्र्य-संग्राम में उन्होंने अपनी आहुति दे दी।

श्रीमती पंडित दो बार युक्त प्रांत सरकार के स्वास्थ्य एवं स्वायत्त विभाग की मिनिस्टर भी रह चुकी हैं। उन्होंने अमेरिका में जाकर भारत की वास्तविक स्थिति का लोगों में प्रचार किया। उन्होंने अपने कार्यों से देश की महिलाओं का विदेश में भी सिर ऊँचा किया। इस समय वे भारत की ओर से रूस में राजदूत की हैसियत से रह रही हैं।

श्रीमती कृष्णा हठीसिंह उनकी दूसरी बहिन हैं। उन्होंने तथा उनके पति ने भी सदा राष्ट्रीय-आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया है। दोनों ही कृष्ण-मंदिर की यात्रा करते रहे हैं।

श्रीमती कृष्णा ने कई सुन्दर पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी पुस्तक 'विद नो रीग्रेट' स्वयं उनकी तथा नेहरू-परिवार की कथा है। पुस्तक बहुत सुन्दर ढंग से लिखी हुई है और पठनीय है।

सुयोग्य पुत्री

पंडित जवाहरलाल नेहरू की एक मात्र संतान इंदिरा प्रियदर्शनी हैं। सुप्रसिद्ध राष्ट्र-सेवी श्री फ़ीरोज़ गांधी से उनका विवाह हुआ है। श्रीमती इंदिरा गांधी विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त की है। पति-पत्नी निरंतर देश-कार्य ही में लगे रहते हैं।

इस प्रकार सारा नेहरू परिवार त्याग, तपस्या और राष्ट्र-प्रियता का जीता-जागता उदाहरण है। ऐसे परिवार को पाकर भारत धन्य है।

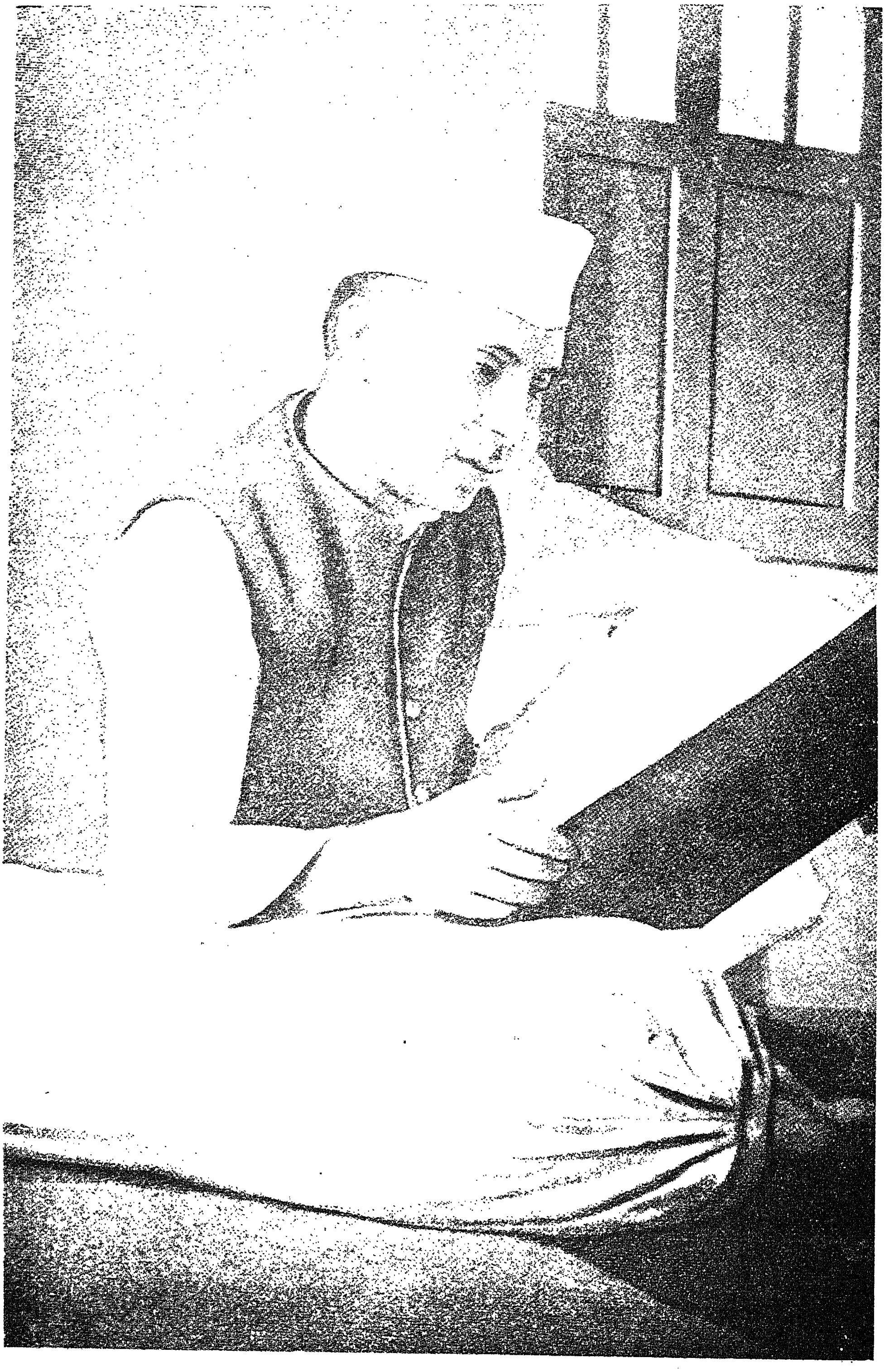

अध्यवसायी पंडित नेहरू

कुछ आवश्यक तिथियाँ

१४ नवम्बर १८८९ पं० जवाहरलाल नेहरू का जन्म हुआ।

१९१६ ई० पंडित नेहरू का विवाह हुआ।

१९२१ ई० श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित का बिवाह हुआ।

१९१९ ई० में प्रथम बार गांधी जी पं० मोतीलाल नेहरू से मिलने प्रयाग आये। यहीं पर पं० जवाहरलाल नेहरू से उनका प्रथम साक्षात्कार हुआ।

१९२० ई० में नेहरू-परिवार के त्याग का प्रारंभ।

६ दिसम्बर १९२१ में पंडित नेहरू प्रथम बार गिरफ्तार किये गये।

१९२३ ई० को पंडित नेहरू नाभा रियासत में गिरफ्तार किये गये।

१९२५ ई० में पंडित मोतीलाल नेहरू स्वराज्य-पार्टी के नेता चुने गये।

१९२७ ई० में पं० जवाहरलाल ब्रुसल्स में होने वाले साम्राज्यवाद-विरोधी संघ के जलसे में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर यूरोप गये।

१९२८ ई० में पंडित मोतीलाल नेहरू कलकत्ता में इंडियन नेशनल कांग्रेस के सभापति हुए।

१९३० ई० में पंडित जवाहरलाल नेहरू लाहौर में इंडियन नेशनल कांग्रेस के सभापति हुए। आप ही के नेतृत्व में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया।

१९३० में पं० मोतीलाल नेहरू ने अपना आनंद-भवन राष्ट्र को दान दे दिया।

१९३१ में पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु।

१९३१ के मार्च के महीने में गांधी-इर्विन समझौता हो गया।

१९३२ में पं० नेहरू की फिर गिरफ्तारी।

१९३३ में पंडित नेहरू माता स्वरूपरानी की बीमारी के कारण छोड़ दिये गये।

१५ जनवरी १९३४ में बिहार का भूकम्प। पण्डित नेहरू बिहार में।

फरवरी १६३४ पंडित नेहरू कलकत्ते के वारंट पर गिरफ्तार कर लिये गये ।

११ अगस्त १६३४ पंडित नेहरू ११ दिन के लिये श्रीमती कमला नेहरू की बीमारी के संबंध में पैरोल पर छोड़ दिये गये ।

सितम्बर १६३५ पंडित नेहरू की स्विटजरलैंड की यात्रा ।

१६३५ में कमला नेहरू की मृत्यु ।

१६३६ में पंडित नेहरू की सीलोन यात्रा ।

१६३६ में पंडित नेहरू की चीन-यात्रा ।

१६४२ में पंडित नेहरू की अगस्त-आन्दोलन के संबंध में गिरफ्तारी ।

पंडित नेहरू छोड़ दिये गये ।

पंडित नेहरू वाइसराय की कार्य-कारिणी के उप-सभापति नियुक्त किये गये ।

१५ अगस्त १६४७ को पंडित नेहरू स्वतंत्र-भारत के प्रथम प्रधान मंत्री नियुक्त हुये ।

कलकत्ता में पंडित जी वर्मा के शरणार्थियों के कैम्प में

प्यारा जवाहर

पं० रमाशंकर अवस्थी

जब हम समूचे देश की भावना समेट कर देखते हैं उनकी ओर, तो मुँह से निकल पड़ता है—'प्यारा जवाहर !'

......देखिये न, जब प्राणी पंचतत्व में आता है, तब किस-किस को पता लग पाता है कि अवतारी अंश, महापुरुष, तपस्वी या वीरात्मा पृथ्वी पर आया है। वह बालक बनकर, सभी की भांति घुटनों-घुटनों चलता है। खड़े होने की कोशिश में अनेक बार गिर-गिर पड़ता है, फिर सँभलता है। पास की ऊँची चीज या दीवार पकड़ कर फिर खड़ा होता है; और तब चलने के लिए पैर भी उठाता है।

हमारे जवाहर का जीवन भी ऐसे ही आरम्भ हुआ। लिख-पढ़ कर जब विलायत से लौटे, तो हिन्दुस्तान में उन्हें एक अनोखी दुनिया मिली। ऐसी दुनिया, जहां जवाहर के निबहने का कोई डौल न था। इसी घबड़ाहट में, नेहरू-पिता ने इनके पैरों में बड़ी सुन्दर सी बेड़ियां पहिना दीं। जिस तरह अच्छा वकील गवाह के रंग-ढंग देख कर भांप लेता है कि, इससे कितना रस निकल सकेगा, उसी तरह मोतीलाल जी नेहरू भली भांति समझ चुके थे कि, जवाहर भला मेरे ट्रेडीशन्स पर क्या चलेगा ! इसीलिए, बाप ने बेटे को कार्नर किया—सीता-समान विनीता 'कमलाजी' आनन्द-भवन में लाकर स्थापित की गईं !

शादी के पहिले, जवाहर बहुत उछले-कूदे होंगे। आदत से जो मजबूर ठहरे। मगर, तब इतने बांके नहीं हो पाये थे कि, पिता की आज्ञा न मानते। माता जी के सामने बहुत हाथ-पैर पटकते रहे कि अभी शादी की कौन सी जल्दी पड़ी है। आप क्यों नहीं पापा को जाकर समझातीं ?

माता जी ने करुण-हँसी हँसते हुए कहा—बेटा, इतनी हिम्मत मेरे पास होती, तो क्या तू सात-समुन्दर पार विलायत पढ़ने भेज दिया गया होता !.........

वे कमलाजी को स्वयं देख आई थीं, और कब कमला बहू बन कर आवे, एक-एक दिन गिन रही थीं !

"बड़ी मुसीबत में जान है, और मेरी तो समझ में नहीं आरहा है कि यह सब क्या हो रहा है। 'लोगों'

को क्या पड़ी है हुँह, जब मैं खुद करना चाहता, शादी कर लेता। यह तो सरासर जबर्दस्ती की जा रही है"। कहते-कहते, दो चार किताबें और अखबार भी फेंक दिये वीर-जवाहर ने।

पंडित जी के पास खबर पहुँची। उन्होंने कड़क कर आवाज़ दी—"बुलाओ तो ज़रा नीचे जवाहर को"।

सारी आज़ाद-ख़याली 'ऐश-ट्रे' के सहारे रखकर जवाहरलालजी नीचे आये।

पापा—क्या ऊधम-सा मच रहा था, ऊपर आपके कमरे में?

जवाहर—नो-नो, नो-नौकर कमरे के द-दरवाज़े खुले छोड़ आया था। बग़ीचे से एक बन्दर भीतर घुस आया, तमाम गड़बड़ी कर गया।

पापा—तो भगा आये उस बन्दर को?

जवाहर—जी हां-जी नहीं, वह भाग कर कहां जायगा, पास में ही एक दरख्त की डाल पर चढ़ गया है।

पापा—हूँ, तो फिर ऐसे बन्दर को तो हम रस्सी से बांधकर रखेंगे। छुटा घूमेगा तो रोज़-मर्रह उसका यही काम रहेगा।

उल्टे पैरों जवाहरलालजी अपने कमरे को वापस गये। अचकन-पगड़ी पहिन कर दिल्ली जाना पड़ा और फिर विवाह हुआ, बैण्ड बजे, दावतें हुईं। फिर कुछ नहीं बोले। अपनी मजबूरियों पर मुसकराते रहे। घर के लोगों ने समझा, अब जवाहर कितना समझदार हो गया······

लेकिन, ख़ैर, कमलाजी तो साक्षात् देवी-अंश थीं ही, जवाहरलाल जी ने अपने रंग में रँग लिया उन्हें, और, देश ने देखा कि राष्ट्र-पति की संन्यासिनी बनकर कमलाजी ने जवाहरलाल जी के कदम से कदम मिलाकर सारी मुसीबतों से मोर्चा लिया। वह मानवी बलिदान न था वह देवी की पूर्ण आत्म-आहुति थी, जिसे वेदी पर चढ़ा कर कमलाजी स्वर्ग के ऊँचे सिंहासन पर जा विराजी हैं। अब तो भारतवासी उनके चित्र की पूजा करते हैं—जब कभी चित्र सामने आजाता है तो आदर से सिर झुक जाता है। सच-मुच, हमारे बीच में वह देवी ही थीं।

× × × × ×

जीवन के इस पन्ने को उलट कर जवाहरलाल जी ने नया पन्ना खोल लिया।

जो अपने बस के बाहर की बात हो जाय, उसके लिए सिर पटकने से क्या लाभ?

मनो-विज्ञानी जवाहरलाल जी अपने राष्ट्र के जीवन को बदलने में लवलीन थे, निजके जीवन की घटनाओं पर अधिक सोच-विचार कर सकने की उन्हें कब फुर्सत मिल पाई।

राष्ट्र के प्रतीक गांधी जी में ही माता-पिता, भ्राता-भगिनी और अपना सर्वस्व देखने लग गये।

स्वाधीनता-प्राप्ति के संग्राम में जवाहरलाल जी सराबोर हो गये, ऐसे सराबोर होगये, जिन्हें देखकर यही मानना पड़ेगा कि, असम्भव को सम्भव बना देने का साहस लेकर हमारे जवाहरलाल जी ने जन्म लिया है।

देश के घटना-चक्र में कितनी असफलतायें आई। अनेक बातों में, स्वयं कांग्रेस के अन्दर जवाहरलाल जी की बात नहीं चल पाई। भगवान् शंकर की तरह, विष का महा घूट नहीं पीना पड़ गया, जो हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हुए बिना आजादी हासिल न हो पाई। पाकिस्तान का बनना स्वीकार करके, जवाहरलाल जी ने एक तरह से गांधी जी की दूरदर्शिता की अवहेलना इसी विश्वास पर कर डाली कि यह राजनैतिक एवं कृत्रिम बँटवारा स्थायी न रहने पायेगा। बुद्धि और साहस है तो हम इस बुराई के अन्दर से भी भलाई खोज निकालेंगे, और भारतखण्डों को जोड़ कर फिर एक कर लेंगे। यह पहिला महान् साहसिक कदम था जिसके लिये काफ़ी हद तक जवाहरलाल जी जिम्मेदार हैं, और इससे भी महा-महान्-महती उनकी विजय भारत के इतिहास में यह लिखी जायगी कि जब नोआखाली, सिन्ध, सीमान्त और पंजाब की लपटों से, प्रलय की चिनगारियां ले कर पचास लाख स्त्री-पुरुष भारतीय सीमाओं से आ-टकराये, तब जवाहरलाल नेहरू के ही महान् साहस और धीरता ने, देश के चारों कोनों को दाबे रख कर उस भूचाल को ऊपर ही ऊपर शान्त कर दिया। उन दिनों की कल्पना कीजिये, और तब जवाहरलाल जी के विराट् स्वरूप को पहिचानिये। अच्छी नीयत रखने वालों को सदा ईश्वर सहारा देता है, यह बात उनकी भी समझ में आगई होगी। उसी दिन से तो जवाहरलाल जी सच्चे देश भक्त हैं। जरा सोचिये, नोआखाली की दुर्घटना की प्रतिक्रियास्वरूप, जब बिहार प्रलयंकारी प्रतिहिन्सा लेकर उठ पड़ा था। यही धीर-वीर नाहर था, जो आग की लपटों को, जाकर बात की बात में, मिट्टी में दफ़ना आया था। और फिर दिल्ली का दंगा ...... महात्मा गान्धी की हत्या, ये दोनों घटना-चक्र किसी भी सरकार का तख़्ता उलट सकते थे। यह सब सैन्य-बल की सफलता नहीं थी, यह गान्धीजी के तपोबल और जवाहरलाल के धैर्य-बल का ही सुपरिणाम था जो घुमड़ते हुए ज्वालामुखी फटने नहीं पाये, बड़ी चाक-चौबन्दी से, उनकी प्रचण्ड चिनगारियां दिल्ली की ही गलियों में शीतल कर दी गई।

और अभी क्या मुसीबतों और अड़चनों की कमी है? परन्तु, जो चढ़ाइयों चढ़ने के बाद, आज जवाहरलाल जी हमारे सामने हैं, उनको देख कर ही तो हमें उनके ऊपर गर्व है, अपने ऊपर गर्व है, अपने देश के ऊपर गर्व है!

लेकिन जवाहरलाल जी का जो एक प्रण है, वह तो अभी पूरा ही नहीं हुआ है। देश का बच्चा-बच्चा जवाहरलाल बन जाय, तब तो उनकी अन्तरात्मा को विश्वास हो सकेगा कि हां, अब भारतीय राष्ट्र सुरक्षित है, अक्षुण्य है और अजेय है।

इस देश में जाति-पांति की कटुता, छुआछूत की भयंकरता, धर्म-कर्म के ढोंग, इतनी अधिक मात्रा में फैले हुए हैं कि जवाहरलाल जी की धारणा तक, यहां के निवासियों का पहुँच सकना एक कठिन काम है। लेकिन जब

हम सन् १६२० के भारत की ओर देखते हैं, और पलट कर सन् १६४८ की तरफ़ नजर दौड़ाते हैं, तो मालूम पड़ता है कि हमारे जवाहर में ही यह क्षमता है कि वह भारतीय मनोविचारों में भी एक क्रांति उपस्थित कर सकेंगे।

यह जवाहरलाल जी के ही विचार-प्रवाहों का परिणाम है कि अब हम धर्म या सम्प्रदाय का आधार लेकर अपने भविष्य की ओर नहीं देखते। उपदेश तो गांधी जी भी ऐसा ही देते रहे, मगर अन्ध-विश्वासों के किले तोड़ने में जवाहरलाल जी ने भी बहुतेरी सुरंगें लगाई हैं। मनुष्य को मनुष्य मनवाने के लिए, जवाहरलाल जी की ही वह कड़क थी, जो, नौजवानों पर जादू सा काम कर गई। ज्ञान गांधी जी ने दिया, तो साहस जवाहरलाल जी से ही मिला। जिसकी बदौलत हजारों वर्षों का अभिशाप भंग हो गया है। देशवासियों में से, अछूतों के प्रति जो कट्टरता चली आ रही थी, अब दूर हो रही है, और उन्हें सच्चे मानव-भाव से अपनाने के लिए हमारे हाथ आगे फैलते जा रहे हैं। यही बात स्त्री-जाति के प्रति हमारे परम्परागत प्रपीड़न के लिए भी लागू हो रही है। सचमुच, जवाहरलाल जी भारत-भूमि पर एक नई दुनिया बसा रहे हैं। एक नया युग ला रहे हैं। पुरानी लकीरें मिटाकर, वे नई और प्रशस्त सड़कें बना रहे हैं, जिन पर चल कर हम, सारे संसार के जन-सागर के साथ जा मिलें।

कुलीनता और विशेषाधिकारों का वायुमण्डल हटा कर वे समानता का द्रोह-हीन सामाजिक जीवन इस देश में भी स्थापित करना चाहते हैं। राष्ट्रीय जीवन में लोक-सेवा के पैमाने, केवल दो ही रह सकेंगे—बुद्धि और श्रम। इन्हीं के द्वारा जो जितनी सेवा कर सके, समाजवादी भारत में उतना ही महत्व उसको प्राप्त हो सकेगा।

जय जवाहर !

—श्री नीरज ।

जय-जन-मन - गण - प्राण राष्ट्र के, अधिनायक अभिनेता,
तुम्हें तुम्हारी वर्षगांठ पर श्रद्धाञ्जलि युग देता।
तुम भारत के भाग्य, भारती की आंखों के तारे,
चला जा रहा राष्ट्र-कारवां, जिसके संग सहारे।
तुम कवियों के काव्य, चित्रकारों के चित्र सलोने,
गायक के तुम गीत, गीत के स्वर-लय तुम अनहोने।
दलितों के सम्बल दुखियों के, तुम सुख-शान्ति-सवेरे,
बे - घरबारों के घर, आशा के विश्वास - बसेरे।
गङ्गा - यमुना के प्रवाह तुम, ज्वार हिन्दसागर के,
भाल हिमालय के, कलियुग में संवत् तुम द्वापर के।
अघ - दासत्व - सर्प के हित, तुम बने गरुण - सेनानी,
जलती युग की आंखों में, तुम ढले जले बन पानी।
युग की दोपहरी में तुम, बन घन सावन के छाये,
पीत - राष्ट्र - पतझर में तुम, बनकर बसन्त नव आये।
तुम ले आये खींच, सीखचों से बाहर मानवता,
लिखी लहू से तुमने युग की, कथा एकता - समता।
मानवता है जाति तुम्हारी, विश्व तुम्हारा घर है,
मानवत्व है धर्म तुम्हारा, मानव ही ईश्वर है।
जड़े जवाहर से तुम मां के, मुकुट - मध्य ज्योतिर्मय,
शत शत वर्ष जियो, नवयुग का हो नव एक्य समन्वय।

नेहरू और धार्मिक ग्रन्थ

(महाभारत, रामायण और भगवद्गीता)

हिन्दू जनता का प्राय: यह मत है कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने न तो हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का कुछ अध्ययन ही किया है और न धर्म में उनकी कुछ दिलचस्पी ही है। वास्तव में यह बात नहीं है। पंडित नेहरू का इस संबंध का अध्ययन बहुत बढ़ा-चढ़ा है; अंतर केवल इतना ही है कि उन्होंने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किसी संकुचित दृष्टिकोण से नहीं किया और न अन्ध विश्वास के साथ ही। वे प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर परखने के आदी हैं। अध्ययन के द्वारा उन्हें जो कुछ प्राप्त होता है उसको वे जन साधारण के सामने निर्भीकतापूर्वक रखते हैं; किसी बात को, जैसी वे समझ पाते हैं उसी रूप में जनता के सामने रखना उनका स्वभाव ही है। वे चीज़ की गहराई तक जाते हैं तथा उसकी वास्तविक खोज के परिणाम पर विश्वास करते हैं। उनका निश्चय, उनके विचार तथा उनके सिद्धांत अचल और अडिग होते हैं। किसी को प्रसन्न करने मात्र के लिए न तो वे कुछ कह ही सकते हैं और न लिख सकते हैं। यही कारण है कि हिन्दू जनता प्राय: यह समझ बैठती है कि पंडित नेहरू कोरे अँग्रेज हैं और उनकी अँगरेज़ियत यह गवारा नहीं करती कि वे धार्मिक चर्चा में किसी भी प्रकार की दिलचस्पी लें। लोग प्राय: उन्हें एक कोरा राजनीतिक नेता मानते हैं। हम हिन्दू जनता की जानकारी के लिए हिन्दू-धर्म के प्रमुख ग्रन्थों पर प्रकट किए हुए स्वयं पंडित नेहरू के विचार लिख रहे हैं। पाठक देखें कि हिन्दू धर्म, धार्मिक ग्रंथों तथा उसके विश्लेषण में पंडित नेहरू ने कितना अधिक और असाधारण अध्ययन किया है। पंडित नेहरू लिखते हैं कि :—

रामायण और महाभारत—प्रचीन भारत के दो बड़े महाकाव्य—रामायण और महाभारत—कदाचित कई शताब्दियों में तैयार हुए हैं और बाद में भी उनमें बहुत से अंश जोड़े गये हैं। उनमें भारतीय आर्यों का प्रारंभिक इतिहास है; उनकी विजयों का तथा पारस्परिक युद्धों का उस समय का इतिहास है जबकि वे देश में सर्वत्र फैल रहे थे तथा अपने को शक्तिशाली बना रहे थे। लेकिन इन महाकाव्यों की रचना बाद की बातें हैं। मैं किसी भी देश की किसी भी ऐसी पुस्तक को नहीं जानता जिसने कि आम जनता के मस्तिष्क पर इतना लगातार और व्यापक प्रभाव डाला हो जितना कि इन दो पुस्तकों ने डाला है। इतने प्राचीन काल में तैयार की गई होती हुई भी, ये पुस्तकें भारतीयों के जीवन पर आज भी अपना जीता-जागता प्रभाव रखती हैं। मूल संस्कृत में तो थोड़े-बहुत योग्य व्यक्तियों तक ही ये पहुँचती हैं लेकिन अनुवाद रूप तथा अन्य प्रकारों से जिनसे कि परंपरा और

कलकत्ता में पण्डित जी बर्मा के शरणार्थियों के कैम्प में

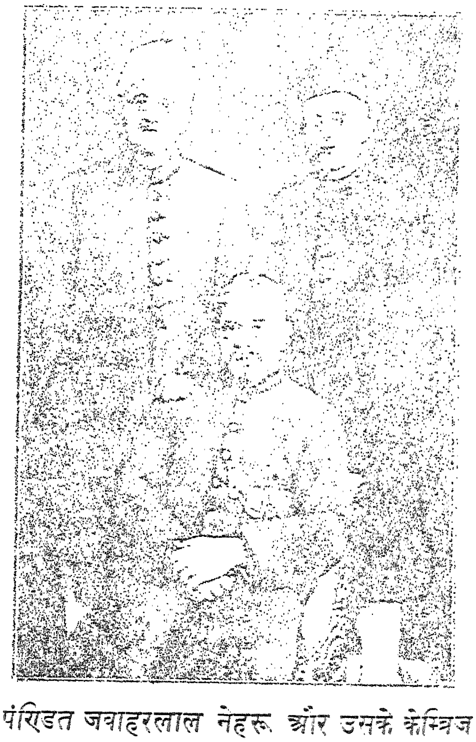

पण्डित जवाहरलाल नेहरू और उनके कैम्ब्रिज
के साथी महमूद और मजीद

क़िस्से कहानियां फैलती हैं और आम लोगों की जिन्दगी का ताना-बाना बन जाती हैं, ये जनता तक पहुँची हुई हैं।

इन महाकाव्यों में हमें वह खास हिन्दुस्तानी ढंग मिलता है जिसमें कि भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक विकास के लोगों के लिए एक साथ सामिग्री उपस्थित की जाती है, यानी ऊँचे से ऊँचे दर्जे के विद्वानों से लेकर अनपढ़ और अशिक्षित देहाती तक के लिए। इनके द्वारा हमको प्राचीन हिन्दुस्तानियों का वह गुर कुछ कुछ समझ में आजाता है जिनसे वे एक पँचमेल और जात-पांत में बँटे हुए समाज को इकठ्ठा बनाये रखने में, उनके झगड़ों को सुलझाते रहने में, उन्हें परंपरा और नैतिक रहन-सहन की समान भूमिका देने में सफल हुए। उन्होंने प्रयत्न करके लोगों में एक ऐसा दृष्टिकोण क़ायम किया जो सब भेद-भावों से ऊपर था और बना रहा।

मेरे बचपन की सब से पहिली यादों में इन महाकाव्यों की उन कहानियों की स्मृति है जिन्हें मैंने अपनी मां से और घर की बड़ी-बूढ़ी औरतों से उसी तरह सुना था जिस तरह कि यूरोप या अमेरिका में बच्चे परियों की या दूसरी साहस की कहानियां सुनते हैं। इन कहानियों में मेरे लिए परियों की कहानियों और साहस की कथाओं दोनों ही के तत्व मौजूद थे और फिर प्रति वर्ष खुले मैदान में होने वाले उन लोक-प्रिय नाटकों में लेजाया जाता था जहां कि रामायण की कथा का अभिनय होता था और जिसे देखने के लिए बड़ी भारी भीड़ एकत्र होती थी। यद्यपि ये बातें बड़े भद्दे ढंग से हुआ करती थी, लेकिन फिर भी कोई अंतर न पड़ता था, क्योंकि कहानी तो सभी लोगों की जानी हुई थी और त्यौहार के आनन्द के दिन होते थे।

हिन्दुस्तान की दंत-कथायें महाकाव्यों तक सीमित नहीं हैं, वे वैदिक काल तक पहुँचती हैं और अनेक रूपों और आवरणों में संस्कृत साहित्य में आती हैं। कवि और नाटककार इनसे पूरा लाभ उठाते हैं और अपनी कथायें और सुन्दर कल्पनायें इनके आधार पर बनाते हैं। कहा जाता है कि अशोक का वृक्ष एक सुन्दर स्त्री के पैरों से छुआ जाकर फूल उठता है। हम कामदेव और उसकी स्त्री रति की कथायें पढ़ते हैं और उनके मित्र बसंत की। कामदेव दुस्साहस करके अपना पुष्प-बाण स्वयं शिव पर चलाता है और शिव के तीसरे नेत्र से निकली हुई ज्वाला में भस्म हो जाता है। लेकिन वह अनंग यानी बिना शरीर का होकर जीवित रहता है।

इन पुराणों की कथाओं और वीर गाथाओं में सचाई पर अड़े रहने, जीवन को खतरे में डाल कर भी अपने वचन का पालन करने, मृत्यु तक और उसके पश्चात भी वफादारी न छोड़ने, साहसी और अच्छे काम करने तथा लोक-हित के लिए त्याग करने की शिक्षायें दी गई हैं।

रामायण ऐसा महाकाव्य है जिसके वर्णन में कुछ एकता की भावना है; महाभारत प्राचीन ज्ञान का एक वृहद तथा फुटकर संग्रह है। दोनों ही बौद्ध-काल से पहिले रचे गये होंगे। महाकाव्य की हैसियत से रामायण एक बहुत बड़ा ग्रंथ अवश्य है। यह एक विराट कृति है। परंपरा और कथाओं का तथा भारत की प्राचीन राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का यह एक विश्व-कोष है।

महाभारत में हिन्दुस्तान (या जिसे गाथाओं के अनुसार जाति के आदि पुरुष भरत के नाम पर भारतवर्ष कहा जाता है) की बुनियादी एकता पर जोर देने की बहुत निश्चितरूप से कोशिश की गई है। इसका एक और पहिले का नाम आर्य्यावर्त, या आर्यों का देश है। लेकिन यह देश मध्य भारत के विंध्य पहाड़ तक फैले हुए उत्तरी भारत तक सीमित था। कदाचित उस समय तक आर्य इस पर्वतमाला के पार नहीं पहुँचे थे। रामायण की कथा आर्यों के दक्षिण में प्रवेश करने का इतिहास है। भारतवर्ष की जो यह कल्पना थी, उसमें आजकल के अफ़गानिस्तान का ज़्यादा हिस्सा, जिसे उस समय गांधार कहते थे (और जिससे कन्दहार शहर का नाम पड़ा) सम्मिलित था और इस देश का अपना अंग समझा जाता था। सच तो यह है कि मुख्य शासक की स्त्री का नाम गांधारी, या गांधार की लड़की था। दिल्ली इसी समय हिन्दुस्तान की राजधानी बनती है—मौजूदा नगर नहीं वरन् इसके पास के मिले हुए पुराने शहर, जो कि हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ कहलाते थे।

महाभारत में कृष्ण की कथायें हैं और भगवद्गीता नाम का प्रसिद्ध काव्य भी है। गीता की फ़िलासफी के अतिरिक्त, इस ग्रंथ में आम तौर पर जीवन में राजनीति और मेल-मिलाप के सिद्धांतों पर जोर दिया गया है। धर्म के इस आधार के बिना सच्चा सुख नहीं मिल सकता और न समाज ही क़ायम रह सकता है। इसका उद्देश्य समाज की उन्नति है; किसी एक गिरोह की नहीं बल्कि सारे संसार की उन्नति है। सारा महाकाव्य एक बड़े युद्ध की घटनाओं को लेकर लिखा गया है। जान पड़ता है कि अहिंसा की कल्पना का संबंध अधिकतर उद्देश्य से था, यानी मन में हिंसा का भाव न रखना चाहिए, आत्म-संयम करना चाहिए तथा क्रोध और घृणा पर अधिकार पाना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं था कि अगर आवश्यक हो और किसी तरह बचत न हो सके तो भी शरीर से कोई हिंसा का काम न बन पड़ना चाहिए।

महाभारत एक ऐसा भंडार है जिसमें हमको अनेक प्रकार की अमूल्य वस्तुयें मिल सकती हैं।

महाभारत वेदों का बहुदेववाद है, उपनिषदों का अद्वैतवाद है तथा देववाद, द्वैतवाद और एकेश्वरवाद भी है। फिर भी इसका दृष्टिकोण रचनात्मक तथा बुद्धिवादी है। इसमें जात-पांत के मामले में कट्टरपन नहीं है।

भगवद्गीता—भगवद्गीता महाभारत का अंश है, एक बहुत बड़े नाटक की एक घटना है। लेकिन सभी अपनी जगह अलग हैं और वह अपने में संपूर्ण हैं। यह ७०० श्लोकों का छोटा-सा काव्य है लेकिन विलियम वान हम्बोल्ट ने इसके विषय में लिखा है कि 'यह सबसे सुन्दर, कदाचित् अकेला सच्चा दार्शनिक काव्य है जो कि किसी भी जानी हुई भाषा में नहीं मिलता है'।

बौद्ध-काल से पहिले जब इसकी रचना हुई, तब से आज तक इसकी लोकप्रियता और प्रभाव घटी नहीं है। आज भी भारत इसके लिए पहिले ही सा आकर्षण बना हुआ है। विचार और फ़िलासफी का हर एक संप्रदाय इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है तथा अपने अपने ढंग से इसकी व्याख्या करता है। संकट के समय जब कि मनुष्य का मस्तिष्क संदेह से सताया हुआ होता है और अपने कर्तव्य के विषय में उसे द्विविधा दो ओर खींचती है, वह

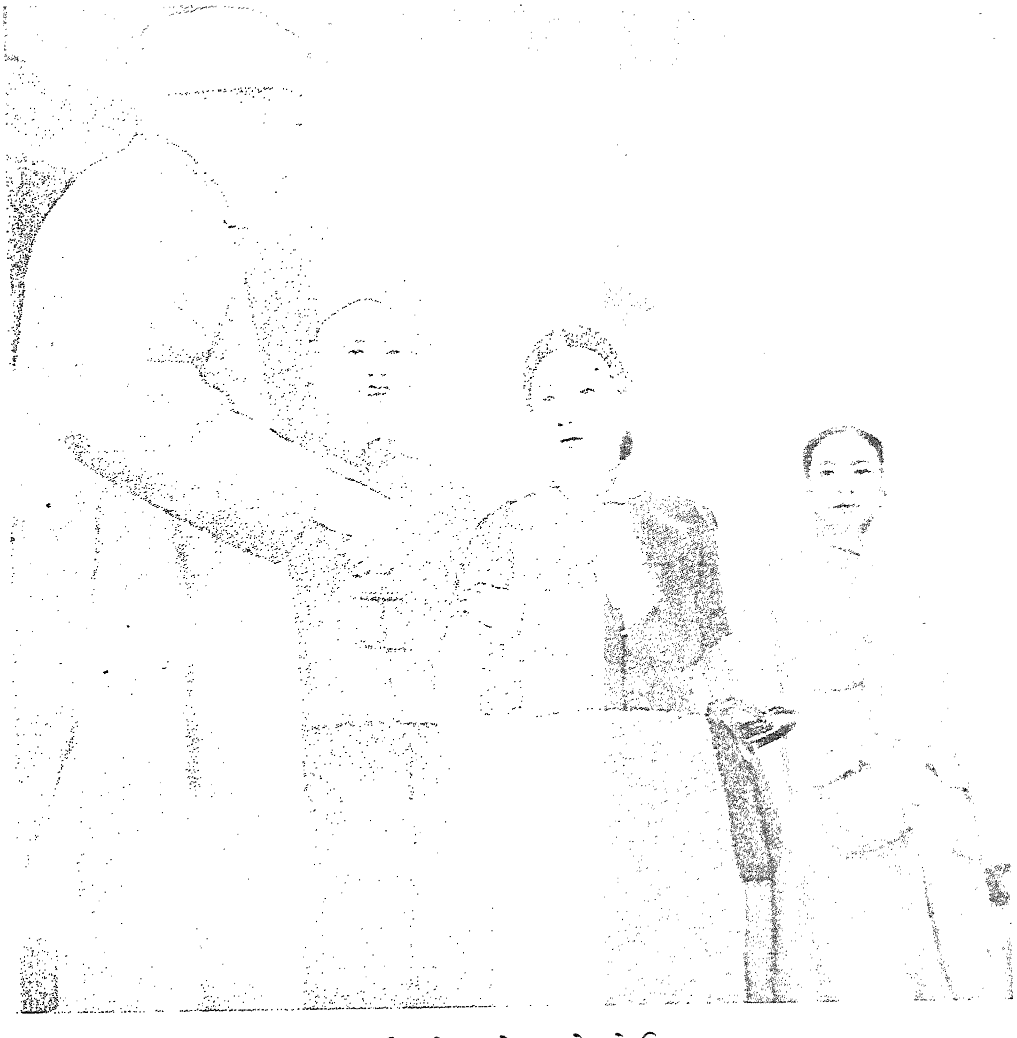

पंडित नेहरू के सब से बड़े मित्र
(जेनरालिज़्मो च्यांग और उनकी पत्नी)

प्रकाश और पथ-प्रदर्शन के लिए गीता की ओर देखता है। यह संकट-काल के लिए लिखी गई कविता है—राजनीतिक और सामाजिक संकटों के अवसर के लिए और उससे भी अधिक मानव की आत्मा के संकट-काल के लिए। गीता की अगणित व्याख्याएं निकल चुकी हैं और अब भी बराबर निकलती रहती हैं। गांधीजी ने इसे, अहिंसा में अपने दृढ़ विश्वास का, आधार बनाया है और लोगों ने इसे हिंसा धर्म-कार्य के लिए युद्ध था।

यह काव्य, घोर युद्ध प्रारंभ होने से पहिले, ठीक युद्ध-स्थल के मैदान में अर्जुन और कृष्ण की बातचीत के रूप में प्रारंभ होता है। अर्जुन विचलित है, उसकी अंतरात्मा लड़ाई और उससे होने वाले बड़े संहार का, मित्रों और बंधुओं के संहार का विचार करके सहम उठती है। आखिर यह सब किस लिए? कौन से लाभ की कल्पना के लिए? किस पाप के परिहार के लिए? उसकी सभी पुरानी कसौटियां जवाब दे देती हैं, वह सभी मूल्य जिन्हें उसने आंक रक्खा था, बेकार हो जाते हैं। अर्जुन मानव की पीड़ित आत्मा का प्रार्थक बन जाता है, ऐसी आत्मा का, जो सभी युगों में, कर्तव्य और मेल-मिलाप की मांगों के कारण द्विविधा में पड़ी रही हैं। इसमें अधिकांश भाग आध्यात्मिक है। इस बात का प्रयत्न किया गया है कि मानव की उन्नति के तीन रास्तों—ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्ति मार्ग का इसके द्वारा सम्बन्ध हो, कदाचित भक्ति मार्ग पर अन्य मार्गों की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया है। एक व्यक्तिगत ईश्वर का रूप भी इसमें दिखाई देता है, यद्यपि यह कहा गया है कि वह पूर्णरूप परमेश्वर का ही एक अवतार है। गीता में विशेषरूप से मानव-जीवन का आत्मिक विश्लेषण प्रदर्शित किया गया है। इसी की भूमिका में प्रति दिन के जीवन की व्यवहारिक समस्यायें भी हमारे सामने आती हैं। यह सब कुछ हमको कर्म और कर्तव्य का सामना करने के लिए पुकारता है। इसमें अकर्मण्यता को धिक्कारा गया है और यह बतलाया गया है कि कर्म और जीवन को युग के सब से ऊँचे आदर्शों के अनुसार होना चाहिये क्योंकि प्रत्येक युग में आदर्श बदलते रहते हैं।

गीता का संदेश साम्प्रदायिक या किसी विशेष प्रकार का मत रखने वाले लोगों के लिए नहीं है। क्या ब्राह्मण और क्या अजात, यह सभी के लिए है। इसमें कहा गया है कि 'सभी रास्ते मुझ तक पहुँचते हैं'। इसी व्यापकता के कारण सभी वर्ग और संप्रदाय के लोगों को गीता मान्य हुई है। विषमता के बीच में भी हम उसमें एकता और संतुलन पाते हैं। परिवर्तित परिस्थिति पर विजय प्राप्त करने का भाव और यह इस तरह नहीं कि जो कुछ सामने है उससे मुँह मोड़ा जाय, बल्कि इस तरह कि उसमें अपने काम के लिए जगह बनाई जाय।

पं० नेहरू और चन्द्रशेखर आज़ाद

देश के हित अपने प्राणों की बलि दे देने वाले पं० चन्द्रशेखर आजाद को कौन भूल सकेगा ? कहा जाता है कि पं० आजाद जब १५ वर्ष के थे उसी समय अमृतसर में जलियान वाला बाग का प्रसिद्ध हत्या-कांड हुआ था। बाद में जब गांधीजी का असहयोग आन्दोलन सन् १९२१ में प्रारम्भ हुआ तो पं० आजाद स्कूल छोड़ कर आन्दोलन में जुट गये। वे गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। वहां भी उन्होंने जेल-अधिकारियों के बर्बर शासन को सहन न किया। नियम-भंग के अभियोग से उन्हें जेल में बेंत लगाने की सजा मिली। कहते हैं कि टिकटी से बँधे हुए आजाद पर जब तक बेंत पड़ते रहे उनके मुँह से 'वन्देमातरम्' निकलता रहा।

जेल में ही उनकी मनोवृत्ति प्रतिहिंसात्मक हो उठी थी। बाद में उनका विश्वास आतंकवाद पर जम गया। बढ़ते बढ़ते वे उत्तरी भारत के एक बहुत बड़े आतंकवादी नेता बन गये। पुलिस ने बरसों उनका पीछा किया किन्तु आजाद को पकड़ न सकी। कहते हैं कि आजाद का एलान था कि 'मुझे कोई जीवित न पकड़ सकेगा'। यही हुआ भी। प्रयाग के अल्फ्रेड-पार्क में पुलिस ने उनको घेर लिया। दोनों ओर से गोलियां चलीं और वीरतापूर्वक पुलिस का मुकाबिला करते हुये वे बलिदान हो गये। यह घटना सन् १९३१ ई० की है। पंडित नेहरू ने लिखा है :—

"मुझे इन्हीं दिनों की एक अनोखी घटना याद है। इसमें मुझे आतंकवादियों के मस्तिष्क का आन्तरिक परिचय भली भांति मिल गया। यह घटना या तो मेरे जेल से छूटने के बाद हुई थी या मेरे पिता की मृत्यु के कुछ दिन पूर्व या बाद में। एक अजनबी मेरे घर पर मुझसे मिलने आया और मुझे बताया गया कि उसका नाम चन्द्रशेखर आजाद है। मैंने इसके पहिले उसे कभी नहीं देखा था, किन्तु आज से दस वर्ष पूर्व मैंने सुना था कि वह १९२१ के असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में स्कूल छोड़ कर जेल गया था। उस समय वह लगभग १५ वर्ष का था और उसे नियंत्रण भंग के अभियोग में जेल में बेंत लगाये गये थे। इसके बाद ही वह आतंकवादी बन गया

और बाद में वह उत्तरी भारत के आतंकवादियों का एक प्रमुख नेता बन गया। मैंने इसको उड़ती हुई खबरों की तरह सुना किन्तु किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं ली। इस समय मुझे उसको देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मुझसे इसलिए मिलने आया था कि उसने यह आशा बांध रक्खी थी कि कांग्रेस और सरकार के बीच में संभवतयह कोई संधि होने वाली है। वह मुझ से यह जानना चाहता था कि यदि किसी प्रकार का समझौता हो गया तो उसके दल के लोगों को किसी प्रकार की शान्ति मिलेगी या नहीं। क्या उन्हें तब भी बागी समझा जायगा? उनकी तलाश जारी रहेगी और उनके सिरों के लिए इनाम घोषित रहेंगे? उनके लिए सदैव ही फांसी के तख़्ते तैयार रहेंगे या उन्हें शान्तिपूर्वक काम-धन्धों में लग जाने की सुविधा भी दी जायगी? उसने मुझे विश्वास दिलाया कि जहां तक उसका या उसके कुछ साथियों का सम्बन्ध है उन्हें अब इस प्रकार के कार्यों में विश्वास नहीं रह गया है। हम लोग समझ गये हैं कि आतंकवाद के तरीक़े देश के लिए घातक और बेकार हैं। वह यह भी मानने को तैयार न था कि केवल शान्तिमय उपायों से देश को स्वतंत्रता मिल सकेगी। उसने यह भी कहा कि संभव है देश की आज़ादी के लिए सशस्त्र युद्ध करना पड़े किन्तु उसको भी आतंकवाद से किसी प्रकार की मदद न मिलेगी। जहां तक भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई का सम्बन्ध है उसका आतंकवाद पर कोई विश्वास नहीं रहा। उसने यह भी कहा कि—यदि हमको शान्ति के साथ बैठने न दिया गया और रोज़ रोज़ इसी प्रकार पीछा किया गया तो हम लोग क्या करेंगे? उसने यह भी कहा कि इधर हाल में जो आतंकवादी घटनायें हुई हैं वे केवल आत्म-रक्षा के लिए की गई हैं'।

मुझे आज़ाद की बात सुन कर प्रसन्नता हुई और बाद में प्रमाण भी मिल गया कि वास्तव में उसका विश्वास आतंकवाद से हट गया है। अवश्य ही इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके साथी अहिंसा के पुजारी बन गये हैं या ब्रिटिश सरकार के भक्त बन गये हैं, हां, अब वे पहिले की तरह आतंकवाद में नहीं सोचते। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उनमें से बहुतों की मनोवृत्ति फ़ासिज़्म की ओर झुक गई।

मैंने आज़ाद को अपना राजनीतिक दृष्टिकोण समझाने की चेष्टा की और उसे अपने से विचारों का बनाने की कोशिश की। लेकिन उसके इस प्रश्न का कि अब हम लोग करें तो क्या करें? मेरे पास कोई उत्तर न था। हम उससे ऐसी कोई बात न कर सके जिससे उसे या उसके दल के लोगों को किसी प्रकार की शान्ति मिलती। हम उसे केवल यही समझा सके कि वह आतंकवादी घटनाओं को रोकने का प्रयत्न करे क्योंकि उससे देश की प्रगति में बाधा पड़ती है।

दो तीन सप्ताह बाद ही, जिस समय दिल्ली में गांधी-इर्विन समझौते की बात-चीत चल रही थी, मैंने सुना कि चन्द्रशेखर प्रयाग में पुलिस की गोली से मारा गया। दिन के वक्त पुलिस ने उसे एक पार्क में पहिचान लिया था और एक बड़े दल ने उसे घेर लिया। उसने पेड़ के पीछे से अपने को बचाने की चेष्टा की। दोनों तरफ़ से गोलियां चलीं। एक-दो पुलिस वाले भी घायल हुए। अंत में वह मारा गया।

म्यु० चेयरमैन जवाहर

पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रयाग म्यु० बोर्ड के लगभग दो वर्ष तक चेयरमैन रहे। उनकी तबियत इस कार्य में विशेष न लग सकी। प्रारंभ में उन्होंने बड़े चाव से इस पद का भार लिया था, किन्तु उसमें पद-पद पर सरकारी रोड़ा देख कर उनकी रुचि हट गई। वे अपनी सुधारों की गाड़ी अधिक आगे न बढ़ा सके। उन्होंने इस संबंध में लिखा है कि 'सरकार ने म्युनिसिपेलिटी के शासन का फौलादी चौखटे में जैसा ढांचा बनाया है, वह आमूल परिवर्तन या नवीन सुधारों को रोकने वाला था। राजस्व-संबंधी नीति ऐसी थी कि म्युनिसिपेलिटी को हमेशा सरकार के भरोसे रहना पड़ता था। मौजूदा म्युनिसिपल नियमों के अनुसार सामाजिक विकास की ओर टैक्स लगाने-संबंधी काया-पलट करने वाली योजनाओं की आज्ञा न थी। जो योजनायें क़ानून के अनुसार की जा सकती थीं उन पर अमल करने के लिये सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी, और उस स्वीकृति को वे ही लोग मांग सकते थे तथा वे ही राह देख सकते थे जो बड़े आशावादी हों और जिनके सामने बहुत बड़ी जिन्दगी पड़ी हो। मुझे यह देख कर हैरत हुई कि जब कोई सामाजिक संगठन का या राष्ट्र निर्माण का मामला आ पड़ता है तब सरकारी मशीन कितनी धीरे धीरे, मार-मार कर और ढील-ढाल के साथ चलती है; लेकिन जब किसी राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वी को दबाना हो तब जरा भी ढील और गलती नहीं रहती। यह अन्तर उल्लेखनीय है'।

आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि 'ये म्युनिसिपेलटियां हमेशा ही सरकार के कर्ज से दबी रहती हैं और इसलिए पुलिस की निगाह के अलावा सरकार जिस दूसरी निगाह से म्युनिसिपलटियों को देखती है वह कर्ज देने वाले साहूकार की निगाह है। आया कर्ज की किश्तें वायदे पर अदा हो रही हैं? आया म्युनिसिपेलिटी कर्ज अदा करने की ताक़त भी रखती है? उसके पास काफ़ी रोकड़-बाकी है या नहीं? ये सब सवाल जरूरी और माकूल हैं, लेकिन अक्सर यह बात भुला दी जाती है कि म्युनिसिपेलटी को कुछ खास काम भी करने हैं—जैसे शिक्षा, सफ़ाई वगैरा, और वह महज एक ऐसा संगठन नहीं है जिसका काम रुपये कर्ज लेकर उन्हें निश्चित मियाद पर अदा करते रहना है। हिन्दुस्तान की म्युनिसिपेलिटियां शहर की भलाई के लिए जो काम करती हैं वे वैसे ही बहुत कम हैं लेकिन वे थोड़े से थोड़े काम भी रुपये की तंगी होते ही फौरन कम कर दिये जाते हैं। आम तौर से सब से पहिले यह बला शिक्षा के ऊपर पड़ती है। म्युनिसिपेलिटी के मदरसों में हाकिम लोगों की कोई जाती दिलचस्पी होती नहीं, उनके बाल-बच्चे तो उन अपटूडेट और खर्चीले प्राइवेट स्कूलों में पढ़ते हैं जिन्हें अक्सर सरकार से ग्रान्ट मिलती है'।

पंडित नेहरू यह चाहते थे कि ग़रीबों पर कम टैक्स लगे और कर का अधिकांश भार अमीरों के कंधों पर पड़े। किन्तु सरकार ऐसा नहीं चाहती थी। वह तो उन्हीं चीज़ों पर टैक्स लगाना चाहती थी जिससे भारतीय व्यापार कुचल जाय। पंडित नेहरू ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'अंग्रेज़ अफसर, व्यापारी तथा ऊपरी मध्यम श्रेणी के पेशेवर और धनियों के दर्जे के हिन्दुस्तानी सिविल-लाइनों में रहते हैं। म्युनिसिपेलिटी की आमदनी ज़्यादातर शहर खास से होती है न कि सिविल लाइन्स से। लेकिन म्युनिसिपेलिटी खर्च जितनी शहर खास पर करती है उससे कहीं ज़्यादा सिविल-लाइनों पर करती है। सिविल-लाइनों के बड़े रक़बे में ज़्यादा सड़कों की ज़रूरत होती है। इन सड़कों की सफाई और उस पर छिड़काव कराना होता है। उन पर रोशनी का प्रबन्ध करना पड़ता है तथा उनकी मरम्मत भी करानी पड़ती है। इसी तरह उनमें नालियों का, पानी पहुँचाने का और सफ़ाई का प्रबंध भी ज़्यादा जगह में करना होता है। लेकिन शहर खास की हमेशा बुरी तरह से लापरवाही की जाती है। शहर के ग़रीबों की गलियों की तो अक्सर कोई परवा नहीं की जाती है। शहर खास में अच्छी सड़कें तो बहुत ही कम होती हैं। उसकी तंग गलियों में रोशनी का प्रबन्ध ज़्यादातर बहुत नाकाफ़ी होता है। उसमें नालियों और सफ़ाई का भी उचित प्रबन्ध नहीं होता है। शहर खास के लोग बेचारे धीरज के साथ इन सब बातों को सहन कर लेते हैं। कभी शिकायत नहीं करते, क्योंकि क़रीब-क़रीब सभी शोर मचाने वाले लोग तो सिविल-लाइनों में ही रहते हैं।

पंडित जवाहरलाल चाहते थे कि भूमि के मूल्य के आधार पर टैक्स लगाया जाय जिससे टैक्स सब पर समान रूप से लगे। उनकी इस योजना का ज़िला मैजिस्ट्रेट ने विरोध किया। इस प्रकार के टैक्स का बोझ अधिकतर उन लोगों पर पड़ता था जो सिविल-लाइंस के बँगलों में रहते थे। उसने कहा कि ऐसा करना बहुत सी शर्तों और क़ानून के विरुद्ध होगा।

यद्यपि पंडित नेहरू को म्यु० बोर्ड के सदस्यों का पर्याप्त सहयोग मिला फिर भी इन सदस्यों की कोई खास दिलचस्पी न थी। उनमें न तो दूर-दर्शिता थी और न सुधार की लगन। वे तो केवल पैसों के बल पर नामवरी पाने के लिये म्यु० सदस्य बने थे। उनकी अधिकतर दिलचस्पी तो अपने सगे-सम्बन्धियों को नौकरी और ठेके देने में थी। पहिले तो वे उत्साह और आदर्श को लेकर बोर्ड में आते थे किन्तु इन्हीं चक्करों में पड़ कर उनके उत्साह ठंढे पड़ जाते थे।

इन सब बातों को लेकर सरकारी लोग, हाकिम और समाचार-पत्र म्युनिसिपेलिटी की आलोचना करते रहते थे जिससे यह सिद्ध होता रहता था कि भारतवर्ष के लिये प्रजातंत्र की संस्थायें मौज़ूँ नहीं हैं। हालांकि इसमें भारतीयों से अधिक दोष उस ढांचे का था जिसके अंदर वह कसा गया था।

पंडित नेहरू ने म्युनिसिपेलिटी के ढांचे की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'यह ढांचा न तो लोक-तंत्री है और न एक-तंत्री। वह तो इन दोनों की दोगली संतान है और उनमें दोनों की ही खराबियां मौजूद

हैं। यह बात तो स्वीकार की जा सकती है कि केन्द्रीय सरकार को स्थानिक-संस्थाओं पर देख भाल तथा नियंत्रण करने के कुछ अधिकार अवश्य होने चाहिये लेकिन स्थानीय लोक-संस्थाओं के लिये यह तभी लागू हो सकता है जब केन्द्रीय सरकार स्वयं लोक-तंत्र और पब्लिक की आवश्यकताओं का ध्यान रखने वाली हो। जहां ऐसा न होगा वहां या तो केन्द्रीय सरकार और स्थानीय शासन-संस्था में रस्साकशी होगी या स्थानीय-संस्था चुपचाप केन्द्रीय सरकार के हुक्म बजाया करेगी। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ही असल में स्थानीय-संस्थाओं से जो चाहेगी सो करायेगी। लेकिन तारीफ़ यह है कि वह जो कुछ करेगी उसके लिये ज़िम्मेदार न होगी। अधिकार तो उसी के होंगे लेकिन उत्तरदायित्व उस पर न होगा।

प्राय: बोर्ड के सदस्य उस जनता की अपेक्षा, जिसने उन्हें चुन कर भेजा है, सरकार से अधिक डरते हैं। समाज-सुधार के मसले तो प्रायः बोर्ड में पेश ही नहीं किये जाते। बोर्ड का कार्य तो केवल कर उगाहना रह जाता है। इस प्रकार के बोर्ड में भला कोई रह कर जनता की क्या भलाई कर सकता है।

पंडित नेहरू के अनुभव के अनुसार म्युनिसिपेलटियों का ब्योरा इस प्रकार है:—

(१) इनमें रिश्वत लेने की अधिक बुराई नहीं है, केवल सुव्यवस्था की कमी है।

(२) उसकी खास कमजोरी है पक्षपात और यह सब से बड़ी बुराई है।

(३) बोर्ड के सदस्यों के दृष्टिकोण ही गलत रहते हैं।

(४) लोक-तंत्री संस्थाओं को जिन अधिकारों की आवश्यकता है वे उसके पास नहीं हैं।

(५) सर्वसाधारण की शिक्षा की ओर उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है। सदस्यों का ध्यान तो व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक या दूसरे टुच्चे मामलों की तरफ़ रहता है।

साल भर कार्य करने के बाद ही पंडित नेहरू ने इन कठिनाइयों और कमज़ोरियों को अनुभव कर लिया। उन्होंने समझ लिया कि इस पद पर रह कर वे अपनी शक्तियों का सब से अच्छा उपयोग नहीं कर रहे हैं। अपने सहयोगियों और साथियों के बहुत अनुरोध करने पर भी अंत में उन्होंने बोर्ड की चेयरमैनी से त्याग-पत्र दे दिया।

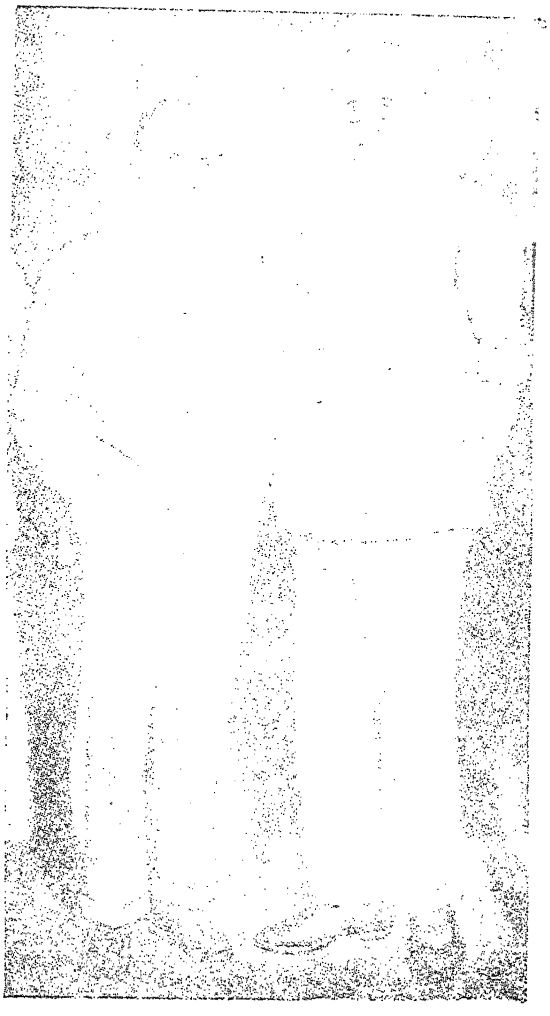

विदेश में अपने मित्र के साथ

कांग्रेस और मि० जिन्ना

······················कुछ पुराने नेता कांग्रेस से पीछे हट गये जिनमें एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय नेता थे श्री मोहम्मद अली जिन्ना। सरोजिनी नायडू ने उन्हें 'हिंदू-मुसलिम एकता का राजदूत' कहा था। पिछले दिनों में उन्हीं की बदौलत मुसलिम-लीग का कांग्रेस के निकट आना बहुत संभव हुआ था। मगर कांग्रेस ने बाद में जो रूप धारण किया—असहयोग को तथा अपने नये विधान को अपनाया, जिससे वह ज़्यादातर जनता का संगठन बन गई, वह उन्हें कतई नापसंद था। उनके मतभेद का कारण यों तो राजनीतिक न था। उस समय की कांग्रेस में ऐसे बहुत से लोग थे जो राजनीतिक विचारों में जिन्ना साहब के पीछे ही थे। पर बात यह है कि कांग्रेस के इस नये रंग-रूप से उनके स्वभाव का मेल नहीं खाता था। उस खादीधारी भब्बड़ में, जो हिन्दुस्तानी में व्याख्यान देने की मांग करता था, वे अपने को बिल्कुल बेमेल पाते थे। बाहर लोगों में जो जोश था वह पागलों की उछल-कूद सा उन्हें मालूम पड़ता था। उनमें और भारतीय जनता में उतना ही फर्क था जितना कि सेवाइल रो, बाण्ड स्ट्रीट में और झोपड़े वाले हिन्दुस्तानी गांवों में। एक बार उन्होंने सुझाया था कि सिर्फ मैट्रिक पास ही कांग्रेस में लिए जायँ। मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने वास्तव में गंभीरता के साथ ही यह बात सुझाई थी। परन्तु यह सच है कि यह उनके साधारण दृष्टिकोण के अनुसार ही थी। इस तरह वे कांग्रेस से दूर चले गये और हिन्दुस्तान की राजनीति में अकेले से पड़ गये। दुःख की बात है कि आगे जाकर एकता का यह पुराना दूत उन प्रतिगामी लोगों में मिल गया जो मुसलमानों में बढ़े-चढ़े सम्प्रदायवादी थे'।

—जवाहरलाल नेहरू

पंडित नेहरू के चार पहलू

राजनीतिक—पंडित जवाहरलाल नेहरू उग्र राजनीति के अनुयायी हैं। प्रायः स्वाभिमानी व्यक्ति ही उग्र होता है और पंडित नेहरू जन्मजात स्वाभिमानी रहे हैं। उन्हें किसी ने भी राजनीति की भूमिका नहीं पढ़ाई। उनका मनोविज्ञान ही उन्हें राजनीति में लाने का कारण बना। वे जैसा सोचते हैं वैसा कहते हैं, और स्व० रामानंद चट्टोपाध्याय (सम्पादक 'मार्डन रिव्यू') के कथनानुसार जैसा कहते हैं वैसा ही करते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्पष्ट राजनीति के अनुयायी हैं और उनकी यह विशेषता ही उन्हें गांधीजी के इतना निकट ले गई। इसमें संदेह नहीं कि गांधीजी के सिद्धांतों और क्रियात्मक शक्तियों ने पंडित जवाहरलाल की राजनीति पर काफ़ी प्रभाव डाला है फिर भी उनकी मौलिकता अपना निज का अस्तित्व रखती है। उन्होंने स्वीकार किया है कि सत्य और अहिंसा देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के लिये अनिवार्य हैं। सत्य पर तो उनका अटूट विश्वास है किन्तु अहिंसा को देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति का साधन मात्र समझते रहे हैं। उन्हें अहिंसा की अपेक्षा स्वतंत्रता अधिक प्यारी रही है। उन्होंने कहा भी है कि यदि उन्हें विश्वास हो जाय कि हिंसा से स्वातंत्र्य- संग्राम में सफलता मिलने की संभावना है तो उसी का मार्ग ग्रहण करने में पीछे न रहूँगा।

पंडित नेहरू राजनीति के मर्मज्ञ होने के साथ ही साथ अथक योद्धा हैं। मतभेद होने पर भी कांग्रेस की पुकार पर उन्होंने अपने सारे मौलिक विचारों का बलिदान किया है। वे बहुमत के सामने अपना सिर झुकाते हैं। और उसके निर्णय कार्यान्वित करने के लिए कोई बात उठा नहीं रखते। सन् १९३६ में जब कांग्रेस ने कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव पेश किया तो पंडित नेहरू इस निर्णय के विरुद्ध थे, किन्तु देश की एक मात्र संस्था कांग्रेस ने जब कौंसिल-प्रवेश का प्रस्ताव पास कर दिया तो नेहरू ने केवल इस निर्णय के सामने अपना मस्तक ही नहीं झुका दिया वरन् चुनाव के कार्य में दौड़-धूप कर इतना अथक परिश्रम किया जिसके बिना चुनाव में विजय कठिन थी। कहने

पंडित नेहरू, पेथिक लॉरेंस, सरदार पटेल और बादशाह ख़ान

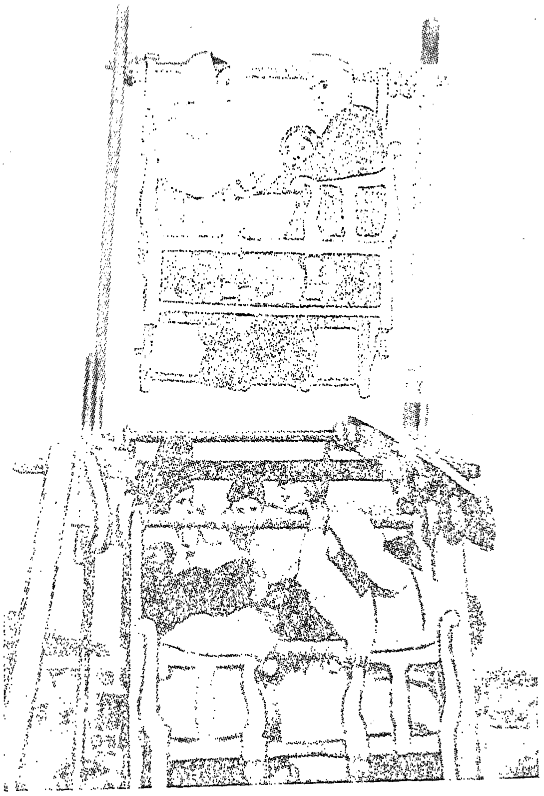

पंडित नेहरू का मनोरंजन (रहट पर)

का तात्पर्य यह है कि पंडित नेहरू इतने सुलझे हुए राजनीतिज्ञ हैं कि देशवासी उन पर न्यौछावर रहते हैं। उनका त्याग, उनकी स्पष्टवादिता तथा उनकी निस्स्वार्थता लोगों के दिलों में घर कर गई है। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जिन पर जमी हुई श्रद्धा हिलने का नाम भी नहीं लेती। कभी कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पंडित नेहरू हमारे ही भावों में बोल रहे हों। सच्चा राजनीतिज्ञ वही है जो जनता के भावों का प्रतीक हो। पंडित नेहरू की आवाज़ में जनता बोलती है और तभी वे सब के प्यारे हैं। पंडित नेहरू में व्यर्थ का प्रदर्शन-भाव नहीं रहता।

जिस समय वे हैरो (इंगलैंड) में पढ़ रहे थे, उस समय उन पर राष्ट्रीयता की छाप पड़ना प्रारंभ हो गई थी। उनमें स्वाभिमान था; वे यह न चाहते थे कि कोई उन्हें हीनता की दृष्टि से देखे। उन्होंने वहां यह अनुभव किया कि अपना देश भी स्वतंत्र होना चाहिए। मनोविज्ञान ने राजनीति की भूमिका बनाना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें राजनीति से इतनी दिलचस्पी पैदा हो चली थी कि जब क्लास में एक अध्यापक ने इंगलैंड की राजनीति के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे तो पं० जवाहरलाल के अतिरिक्त और कोई भी इंग्लिश छात्र उनका उत्तर न दे सका। यह प्रकट करता है कि उनकी रुचि १६-१७ वर्ष की अवस्था से ही राजनीति की ओर बढ़ चली। जिस समय वे केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में आये, उन्होंने भारतीय समाचारों में दिलचस्पी लेना प्रारम्भ कर दिया। उस समय हिन्दुस्तान के अंदर स्वतंत्रता की भावना फैल चुकी थी। पंजाब में लाला लाजपतराय, बंगालमें श्री विपिनचंद्रपाल तथा महाराष्ट्र में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का नाम चमक रहा था। पं० जवाहरलाल इन समाचारों को बड़े ध्यान से पढ़ते थे। यही नहीं, इंगलैंड में ही उन्होंने श्री विपिनचन्द्रपाल तथा लाला लाजपतराय से भेंट भी की। लाला लाजपतराय का उन पर काफ़ी प्रभाव पड़ा।

घर लौटने पर उनके राजनीतिक विचार उन्हें परेशान करने लगे। उनके पिता स्व० पं० मोतीलाल नेहरू नरम दल के थे और उग्र राजनीति से दूर भागते थे। जवाहरलाल के लिए अपना मार्ग चुनना सुगम न था। पंडित मोतीलाल नेहरू का रहन-सहन राजसी था। भारतीय राजनीति में उग्र रूप से भाग लेने का अर्थ तो कष्ट, त्याग और जेल था। पिता ने पुत्र के उग्र विचारों का समर्थन नहीं किया; कदाचित इतने बड़े त्याग और कष्ट के लिए पंडित मोतीलाल जी तैयार न थे। केवल त्याग की भावना ही नहीं, वे किसी के नेतृत्व में चलना कभी पसंद न करते थे।

थोड़े दिनों तक इधर-उधर संस्थाओं में भाग लेने के बाद वे श्रीमती बेसेंट की होम-रूल-लीग में सम्मिलित हो गये; बाद में जब अमृतसर में जलियानवाला बाग़ का हत्याकाण्ड हुआ तो उसका पं० मोतीलाल जी नेहरू पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और वे सारे कष्टों को सहन करने के लिए तैयार होकर उग्र राजनीति में कूद पड़े। बस पं० जवाहरलाल ने अपनी सारी शक्ति के साथ उग्र राजनीति में अपने को झोंक दिया।

तब से पंडित नेहरू ने एक सच्चे सिपाही की भांति देश की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और अंत में भारतमाता

को विदेशी शासन के बंधन से छुड़ा कर आज़ाद कर दिया। इस युद्ध में उन्होंने अपना सब कुछ खो दिया, किन्तु कभी अपने राजनीतिक सिद्धांतों की हत्या नहीं की।

पंडित जवाहरलाल नेहरू उग्र राजनीति के अवतार हैं।

सामाजिक—पंडित जवाहरलाल नेहरू का सदा यह अटल विश्वास रहा है कि बिना सामाजिक सुधार के राजनीतिक प्रगति असम्भव है। वे जिस योजना को लेकर आगे बढ़ते हैं उसे सबसे पहिले अपने ही ऊपर कार्यान्वित करते हैं। उनके मत से सांप्रदायिकता ही सारी बुराइयों की जड़ रही है। पूँजीवाद, फासिज़्म, धर्मान्धता और रूढ़िवाद के वे शत्रु हैं। अपने जीवन में साम्प्रदायिकता से बढ़ कर घृणित उन्होंने और किसी वस्तु को नहीं समझा। सामाजिक सुधार के लिए साम्प्रदायिक भावना का विनाश, अछूतोद्धार, रूढ़िवाद का अंत और समाजवाद का प्रचार परमावश्यक है—ये ही नेहरू के समाज-सुधार-संबंधी विचार हैं। वे जात-पांत के झगड़ों को नहीं मानते। फलस्वरूप उन्होंने सर्व प्रथम अपने घर से इस बीमारी को दूर किया। उनकी दोनों बहिनों का बिवाह—श्रीमती विजयलक्ष्मी तथा कृष्णा—अन्य जातियों में हुआ। उन्होंने इस संबंध में किसी की भी आलोचना की परवाह नहीं की। बाद में अपनी पुत्री इंदिरा प्रियदर्शनी का बिवाह श्री फीरोज़ गांधी से किया। श्री फीरोज़ गांधी पारसी हैं। सारा नेहरू-परिवार अपनी इस सामाजिक उदारता के लिए प्रसिद्ध है।

उन्होंने अंत में यह भी अनुभव किया कि सामाजिक सुधारों की गाड़ी बिना देश की स्वतंत्रता के आगे नहीं बढ़ाई जा सकती, अतएव उनका प्रधान कार्य-क्षेत्र राजनीति का प्रयोग रहा। इतने व्यस्त होते हुए भी उन्होंने रूढ़िवाद को ठुकराया है।

पंडित नेहरू अपनी राजनीति की भांति समाज-सुधार के कार्यों में भी उग्र ही हैं। वे कभी बीच का रास्ता पसंद नहीं करते—जो कुछ करते हैं निस्संकोच होकर करते हैं, निर्भय होकर करते हैं।

साहित्यिक—पं० जवाहरलाल नेहरू की तूफ़ानी राजनीति ने प्रायः यह भ्रम पैदा कर दिया है कि वे बड़े शुष्क और कठोर स्वभाव के हैं। लोग उन्हें कोरा राजनीतिक नेता समझते हैं, किन्तु वह ग़लत है। पंडित नेहरू का हृदय मोम की सी लोच रखने वाला और बच्चों सा कोमल है। वे कलाकार हैं, और कलाकारों सा हृदय रखते हैं। कविता उनका प्रिय विषय है। राजनीति से समय मिलने पर या जेल में वे निरंतर कविताओं का अध्ययन करते रहे हैं। श्री हुमायूँ कबीर ने लिखा है कि 'पंडित जवाहरलाल नेहरू में काल्पनिक भावुकता का एक गुण है, जो सहज ही में किसी को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। मुझे याद है कि सन् १९३३-३४ में मैंने अपने कुछ मित्रों से कहा था कि भारत ने एक महान कवि और कलाकार के स्थान पर नेहरू के रूप में एक राजनीतिक नेता प्राप्त किया है'।

आगे चल कर उन्होंने कहा है कि 'कलाकार राजनीति की ओर क्रोध के आवेश में ही आकर्षित होते हैं

अथवा समवेदना के कारण। कुछ लोग उन्हें क्रोधी और कुछ अहंकारी समझ लेते हैं। वास्तव में वे न क्रोधी हैं और न अहंकारी। उनका यह स्वभाव एक कलाकार के जीवन को चरितार्थ करता है। पर्वतों के दृश्य उनको अपनी ओर आकर्षित करते हैं, सूर्यास्त का चमत्कार उनकी स्मृति का प्रिय दर्शन है। एक कलाकार के रूप में उनकी रुचि-वैचित्र्य का यह प्रमाण है कि लगातार बीस वर्षों से अधिक काल के राजनीतिक जीवन में भी उनकी सुन्दर भावनाओं में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया'।

जिस किसी ने भी उनकी 'आत्म-कथा' पढ़ी है वह उन्हें प्रथम श्रेणी का कलाकार और साहित्यिक कहे नहीं रह सकता। इस पुस्तक को बिना आद्योपान्त पढ़े यदि कोई व्यक्ति पं० जवाहरलाल नेहरू पर अपना मत प्रकट करता है तो वह अनाधिकार चेष्टा ही समझी जायगी। उसमें राजनीतिक नेहरू की अपेक्षा साहित्यिक एवं कलाकार नेहरू को हम अधिक देखते हैं। मनोविज्ञान जैसा पंडित नेहरू के विचारों में सफल हुआ है वैसा कदाचित कहीं नहीं।

मेडम चांग-काई-शेक ने पंडित नेहरू को एक उच्च-कोटि का साहित्यिक बतलाते हुये लिखा है कि 'अंग्रेजी [लेखकों] लेखकों की श्रेणी ने उनका स्थान है। निर्विवादरूप से नेहरू अंग्रेजी के उन चुने हुये पूर्वीय लेखकों में से एक हैं जो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अपनी मातृ-भाषा की सुविधा और अनुकूलता के साथ करते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने ख्याति भी प्राप्त की है। वास्तव में जिनकी मातृ-भाषा भारत या चीन की भाषाओं में से है और जिन्होंने एक लेखक के रूप ने सफलता पाई है उनकी संख्या उँगलियों पर गिनी जाने योग्य है। नेहरू में केवल इतना ही गुण नहीं है; किसी को अपराधी ठहराने अथवा अपनाने के लिये लिखे हुए शब्दों पर उनका अद्वितीय अधिकार है। मेरा अनुमान है कि लेखक के रूप में नेहरू के प्रति मेरे विचारों से वे सभी लोग सहमत होंगे जिन्हें अच्छी अंग्रेजी पढ़ने में सुख प्राप्त होता है। बहुत समय के बाद जब राजनीतिक संघर्ष समाप्त हो जायगा और वह अतीतकाल की स्मृति के रूप में ही रह जायगा, उस समय केवल साहित्यिक कीर्ति जीवित रहेगी। भविष्य के सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि अंग्रेजी साहित्याकाश में नेहरू एक तारे के रूप में उस समय तक जगमगाते रहेंगे जब तक अंग्रेजी भाषा का अस्तित्व रहेगा'।

आगे चल कर उन्होंने लिखा है कि 'वे ठीक वैसा ही लिखते हैं जैसे वे स्वयं हैं। अत्यन्त शिष्ट और सहृदय होने के साथ ही साथ अपने मित्रों के प्रति उनके हृदय में असीम स्नेह रहता है। संदिग्धावस्था से वे सर्वथा दूर हैं। वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे सुन्दर भाषा में चित्रित करते हैं। अपने विश्वास के अनुसार दृढ़ रूप से मैं लिख रही हूँ कि अंग्रेजी लेखकों की श्रेणी में नेहरू का स्थान है। उनकी रचनायें देश और संसार के लिये स्थायी देन हैं। उनकी लेखनी से निकली रचनाओं को देख कर नवीन संतति उनकी देन और मनुष्य के रूप में उनके चरित्र का सम्मान करेगी।

शासक—देश ने स्वतंत्र्य-युद्ध में सेनापति रहने वाले पंडित जवाहरलाल को ही अथक युद्ध के पश्चात स्वतंत्र भारत के शासन का भी ताज पहिना दिया है। जो व्यक्ति ध्वंसात्मक प्रवृत्ति लेकर वर्षों युद्ध करता है वह

कदाचित् ही रचनात्मक प्रवृत्ति को लेकर शान्तिपूर्ण शासन के योग्य होता है, किन्तु एक ही वर्ष के शासन से पंडित नेहरू ने सिद्ध कर दिया कि वे जिस योग्यता के साथ लड़ सकते हैं उसी योग्यता के साथ शान्ति-स्थापन भी कर सकते हैं। वे विध्वंसक भी हैं और रचना करने की भी अपूर्व क्षमता रखते हैं।

जिस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में सँभाली थी उस समय हमारा देश चारों ओर विपत्तियों से घिरा हुआ था। पंजाब के बँटवारे के फलस्वरूप देश में रुधिर की नदियां बह रही थीं; सारा देश साम्प्रदायिकता की लपटों में धू-धू करके जल रहा था। रियासतों की समस्या —मुख्यत: काश्मीर और हैदराबाद—मुँह बाये खड़ी थीं। यह समस्या तो ऐसी थी कि जिसके हल न होने से सारा देश सैकड़ों पाकिस्तानों में विभाजित हो जाता। देश का बँटवारा हो जाने से 'हिन्दू-राष्ट्र' का भयंकर नारा बुलंद किया जा रहा था और हिन्दुओं में विनाशकारी साम्प्रदायिकता की भावना भयंकर रूप से जाग्रत हो उठी थी। चारों ओर निराशा के बादल लहरा रहे थे और भीषण आशंका से जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था। अंत में राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी को अपने प्राणों की आहुति देकर इस अग्नि को शान्त करना पड़ा।

पंडित नेहरू ने जितनी तत्परता के साथ समस्याओं का हल किया वह प्रत्येक का काम न था। पंडित नेहरू ने दृढ़ता के साथ साम्प्रदायिकता का सामना किया और 'हिन्दू-राष्ट्र' के नारे को सदा के लिए शान्त कर दिया। उनका विचार है कि भारत के विदेशों में तभी चमक सकेगा और एशिया का नेतृत्व कर सकेगा जब उसमें शान्ति स्थापित होगी, गृह-युद्ध का अंत हो जायगा, देश की उत्पादन शक्ति बढ़ जायगी तथा हमारा चरित्र ऊपर उठेगा।

वे अथक योद्धा की भांति देश की कठिनाइयों से लड़ रहे है। हैदराबाद की समस्या हल हो गई है; देश में साम्प्रदायिकता का सर्प कुचला जा चुका है; उत्पादन की सैकड़ों योजनायें बन चुकी हैं तथा कर्यान्वित हो रही हैं; देश की आर्थिक उन्नति प्रारम्भ हो गई है और अब वह समय दूर नहीं है जब काश्मीर का मसला हम हल होता हुआ सुनेंगे।

देश को पंडित जवाहरलाल नेहरू पर अभिमान है। आज कल वे लंदन में ब्रिटिश कामनवेल्थ के प्रधान-मंत्रियों के सम्मेलन के संबंध में गये हुए हैं। वहां स्वतंत्र-भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का जो अभूतपूर्व स्वागत हुआ वह भारत के लिए गर्व की बात है।

भारत के अंतिम वाइसराय लार्ड लुई माउँटबेटन ने भारतीय स्वतंत्रता की वर्ष गांठ के अवसर पर इंगलैंड में नेहरू के शासन की प्रशंसा करते हुए कहा है कि—नेहरू संसार के सब से बड़े राजनीतिज्ञ हैं।

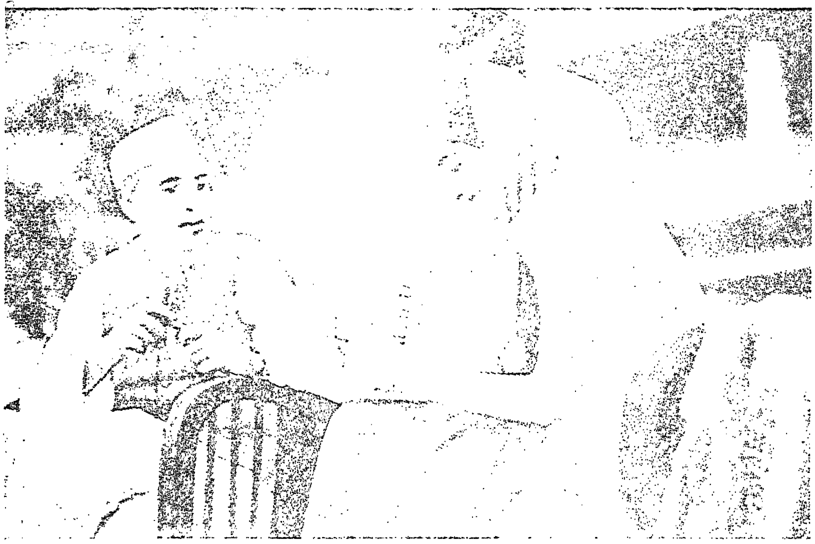

पिता की आत्म-कथा में रत इंदिरा

जवाहर लाल, स्टैफोर्ड क्रिप्स और रणजीत पंडित

नेहरू की स्पष्टवादिता

पंडित नेहरू सदा से उग्र विचारों के राजनीतिज्ञ रहे हैं। उन्होंने युद्ध-काल में समझौते की अपेक्षा विजय को ही अपना लक्ष्य माना है। पं० मोतीलाल नेहरू उग्र राजनीति को देश के लिये अधिक उपयुक्त न समझते थे; यही कारण था कि पिता और पुत्र का प्रायः दृष्टिकोण भिन्न रहता था। पंडित जवाहरलाल का स्पष्ट मत था कि लिबरली चाल से ब्रिटिश सरकार को अणु मात्र भी झुकाया नहीं जा सकता। पंडित मोतीलाल नेहरू इस पर विश्वास न करते थे, किन्तु जलियानवाला बाग के हत्याकांड ने उन्हें इस बात पर विवश कर दिया कि वे खुल-कर मैदान में आजायें, और अंत में उन्हें पुत्र-द्वारा निर्दिष्ट मार्ग को ही अपनाना पड़ा।

पं० जवाहरलाल के मस्तिष्क में हैरो और केम्ब्रिज से ही स्वदेशाभिमान जाग उठा था। उनके हृदय के अन्तरद्वन्द्व ने उन्हें तभी से चैन न लेने दिया। भारतवर्ष आते ही उन्होंने राजनीति में भाग लेना प्रारंभ कर दिया। वे शुरू से ही अपने को भारतीय समझते थे और हैरो में इसीलिये प्रारंभ में उनका मन न लगा। उन्होंने लिखा है कि 'मेरे मन में सदा यह भावना घर करती रही थी कि मैं इन लोगों में से नहीं हूँ और यहां के लोग भी मेरी बाबत यही विचार रखते होंगे'।

पंडित नेहरू में सब से बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी की रियायत नहीं करते। वे स्पष्ट बात कहते हैं; महात्मा गांधी के संबंध में भी उनका मत स्पष्ट ही रहा। उनके अनन्य शिष्य होने पर भी उन्होंने सदा उनके विषय में अपने तर्कों और संदेहों को छिपाया नहीं। जिस समय दिल्ली में गांधी-इर्विन समझौते की बातचीत चल रही थी उस समय पंडित नेहरू के हृदय में भी द्वन्द्व चल रहा था। उन्हें गांधी जी द्वारा किया गया यह समझौता अधिक पसंद न था और उन्होंने इस बात को छिपाया भी नहीं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि ४ मार्च की रात को हम १२ बजे तक गांधी जी के वाइसराय-भवन से लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। वे रात्रि को लगभग दो बजे लौटे और हमको जगा कर बतलाया कि समझौता हो गया है। हमने मसविदा देखा; बहुतेरी धाराओं को तो मैं जानता था क्योंकि प्रायः उन पर बहस चलती रहती थी लेकिन धारा नं० २, जो कि सब से ऊपर ही थी संरक्षणों के विषय में थी, उसे देख कर मुझे बड़ा धक्का लगा। मैं उसके लिए क़तई तैयार न था। मगर मैं उस वक्त कुछ न बोला और हम सब सो गये। अब कुछ करने की गुन्जाइश भी न रह गई थी। बात तो समाप्त हो चुकी थी। हमारा नेता अपना वचन दे चुका था।

जिस समय प्रयाग में लाठी-चार्ज द्वारा माता स्वरूपरानी नेहरू घायल होगई उस समय पं० जवाहरलाल जेल में थे। उन्होंने इस संबंध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि 'इस घटना के कुछ दिन बाद जब इन सब बातों की खबर मेरे पास पहुँची तो अपनी निर्बल और वृद्ध मां के खून से लथपथ धूल भरी सड़क पर पड़े रहने की भावना मुझे रह रह कर पीड़ित करने लगी। मैं यह सोचने लगा कि अगर मैं वहां होता तो उस समय क्या करता? मेरी अहिंसा कहां तक मेरा साथ देती? मुझे डर है कि वह ज़्यादा समय तक मेरा साथ नहीं देती। कदाचित् वह दृश्य मुझे उस पाठ को भुला देता जिसको सीखने का मैंने बारह वर्ष से अभ्यास किया था और इस बात का मुझ पर या देश पर क्या असर पड़ता इसकी किंचितमात्र भी परवाह न करता'।

अपने मस्तिष्क के विषय में भी कभी कहने से वे न चूकते थे। सन् १९२४ के बाद की राजनीति का देश में कोई सिर-पैर न था। उग्र राजनीति के पुजारी जवाहरलाल इस प्रगति से निराश से हो गये थे। वे अपना न तो मार्ग ही ढूँढ़ पाते थे और न उनके सामने कोई कार्य-क्रम ही था। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने मस्तिष्क का द्वन्द्व कितने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। डाक्टरों ने इस बात पर जोर दिया कि कमला का इलाज स्वीजरलैंड में कराया जाय। मुझे यह बात पसंद आगई, क्योंकि मैं स्वयं इस समय हिन्दुस्तान से बाहर चला जाना चाहता था। मेरा मस्तिष्क स्पष्ट न था। कोई स्पष्ट मार्ग न दिखलाई देता था। मैंने सोचा कि यदि मैं हिन्दुस्तान से दूर चला जाऊँ तो स्थिति को और भी स्पष्टरूप से देख सकूँगा और अपने मस्तिष्क के अंधकारपूर्ण कोनों में प्रकाश पहुँचा सकूँगा।

············यूरोप पहुँचने पर मैं अनुभव करने लगा कि मैं हिन्दुस्तान और यूरोपियन संसार से नितान्त पृथक होगया हूँ। हिन्दुस्तान में होने वाली बातें विशेषरूप से बहुत दूर मालूम होती थीं। मैं केवल दूर से देखने वाला एक दर्शक बना हुआ था।

अपने धार्मिक भावों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'हिन्दू महासभा के कुछ नेताओं ने मुझ पर यह अभियोग लगाया था कि अपनी कुशिक्षा तथा फारसी संस्कृत के प्रभाव से मैं हिन्दुओं के भावों से अनभिज्ञ हूँ। मेरी क्या संस्कृति है या मेरे पास कोई संस्कृति है भी या नहीं यह मेरे लिए बतलाना कठिन है। दुर्भाग्यवश फारसी भाषा तो मैं जानता भी नहीं। मेरे पिताजी अवश्य हिन्दुस्तानी और फ़ारसी के वातावरण में पले थे'।

लाहौर कांग्रेस (सन् १९३० ई०) के लिए वे सभापति चुने गये थे, किन्तु जिस प्रकार और जिन परिस्थितियों में वे चुने गये थे उन्हें पसंद न आया। वे इस संबंध में लिखते हैं कि 'लखनऊ में इसका अंतिम निर्णय करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाई गई, और आखिरी वक्त तक हम सब यह समझते थे कि गांधीजी राजी होजायें। मगर यह न हुआ और अंत में उन्होंने मेरा नाम पेश कर दिया। किसी दूसरे व्यक्ति का नाम सामने न होने से, लाचारी की दशा में मुझको चुन लिया गया। मुझे इतनी झुंझलाहट और जिल्लत पहिले कभी

पंडित नेहरू
खान अब्दुल गफ्फार खाँ के साथ

अनुभव नहीं हुई जितनी इस चुनाव से। इससे मेरे स्वाभिमान को चोट पहुँची। पहिले तो मैंने सोचा कि इस सम्मान को लौटा दूँ किन्तु खुशकिस्मती से मैंने अपने भावों को प्रकट नहीं किया और भारी कलेजा लिए हुए वहां से चुपचाप लौट आया।

लोगों ने उनके चुने जाने पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और यह कहा गया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के सब से कम उम्र के सभापति थे। पंडित नेहरू ने इसका खंडन करते हुए कहा है कि 'यह बात गलत थी। मेरा विचार है कि गोखले की भी लगभग यही उम्र थी और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की उम्र तो कदाचित मुझसे भी कम थी जब वे सभापति चुने गये थे। गोखले जब ३५-४० के तथा योग्यता के दृष्टिकोण से बड़े राजनीतिज्ञों में समझे जाते थे। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद की शक्ल ऐसी बनी हुई थी जो उनकी विद्वता के अनुकूल ही आदरणीय थी। मुझमें राजनीतिज्ञता का गुण कदाचित ही माना गया हो। मुझ पर बड़ा भारी विद्वान होने का भी कभी दोषारोपण नहीं किया गया'।

इन्हीं पंडित जवाहरलाल नेहरू को आज सारा संसार महान राजनीतिज्ञ कह रहा है। हाल ही में स्वतंत्रता-दिवस की वर्षगांठ के अवसर पर भारत के अंतिम वाइसराय लार्ड लुई माउण्टबेटन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'पंडित नेहरू संसार के सब से बड़े जीवित राजनीतिज्ञ हैं'।

यह सब उनकी स्पष्टवादिता का फल है। जब हम पंडित जवाहरलाल नेहरू की आत्म-कथा पढ़ते हैं तो हमको उनके मनोविज्ञान, उनके विचारों तथा उनके सोचने के ढंग का स्पष्ट पता चल जाता है। उनके मस्तिष्क का अन्तर्द्वन्द्व हमको पद-पद पर मिलता है।

जिस समय लखनऊ में साइमन कमीशन आया उस समय का वर्णन लिखते हुए पंडित नेहरू कहते हैं 'फिर घुड़सवारों ने हमारे स्वयंसेवकों को बड़े डंडों से मारना शुरू किया। इससे स्वयंसेवक सड़क की बाजू की तरफ़ हटे और कुछ तो छोटी दुकानों में भी घुस गये। सवारों ने उनका पीछा किया, उन्हें पीट पीट कर गिरा दिया। जब मैंने घोड़ों को ऊपर चढ़ते हुए देखा, तब मेरी भी स्वाभाविक वृत्ति ने मुझे प्रेरित किया कि मैं बच जाऊँ। वह हिम्मत तोड़ने वाला दृश्य था। मगर फिर, मेरा ख़्याल है कि, किसी दूसरी स्वाभाविक वृत्ति ने मुझे अपनी जगह पर ही खड़ा रक्खा और मैं पहिले हमले को बरदाश्त कर गया, जिसे मेरे पीछे के स्वयंसेवकों ने रोक लिया था। अचानक मैंने देखा कि मैं सड़क के बीच में अकेला हूँ; मुझसे कुछ ही गज़ दूरी पर सब तरफ़ पुलिस वाले थे, जो हमारे स्वयंसेवकों को पीट गिराते थे। अपने आप ही मैं ज़रा आड़ में हो जाने की खातिर सड़क की बाजू की तरफ़ धीरे धीरे चलने लगा। मगर मैं फिर रुक गया और मैंने अपने दिल में कुछ विचार किया और यह फैसला किया कि हट आना मेरे लिए अच्छा न होगा। यह सब सिर्फ़ कुछ ही पलों में हो गया, मगर मुझे उस समय के विचार-संघर्ष और निर्णय का अच्छी तरह स्मरण है। मैंने ऐसा निर्णय किया ही था कि मैंने मुड़ कर देखा कि एक घुड़-

सवार मेरे ऊपर घोड़ा छोड़ता चला आ रहा है। वह अपना लम्बा डंडा घुमा रहा है। मैंने उससे कहा—लगाओ, और सिर जरा हटा लिया। यह भी सिर और मुँह को बचाने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति ही थी'।

यह है पंडित नेहरू की स्पष्टवादिता। उन्होंने कायरता की ओर ले जाने वाले अपने मानसिक विचार को भी कह दिया।

जिस समय देश में कांग्रेसी सरकारें क़ायम थीं उस समय उनकी प्रगति पर स्वयं कांग्रेस में ही असंतोष था। पंडित नेहरू ने उस संबंध में स्पष्टरूप से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि 'मैं स्वयं घटना-चक्र की गति से प्रसन्न न था। मैंने अनुभव किया कि हमारी बढ़िया लड़ाई लड़ने वाली संस्था धीरे धीरे एक चुनाव लड़ने वाली संस्था में बदलती जा रही है'।

पंडित नेहरू ने इस संबंध में गांधी जी को भी एक पत्र में लिखा था 'वे पुरानी व्यवस्था के साथ अपना मेल बैठाने के लिए बहुत ही प्रयत्न कर रहे हैं और उसे न्यायोचित सिद्ध कर रहे हैं। लेकिन इतना बुरा होते हुए भी बर्दाश्त किया जा सकता है, पर इससे भी अधिक बुरी बात यह है कि हम अपनी वह जगह खोते जा रहे हैं जो हमने इतनी मेहनत के साथ लोगों के दिलों में बना पाई है। हम गिरते-गिरते मामूली राजनीतिज्ञों की सतह पर पहुँचते जा रहे हैं।

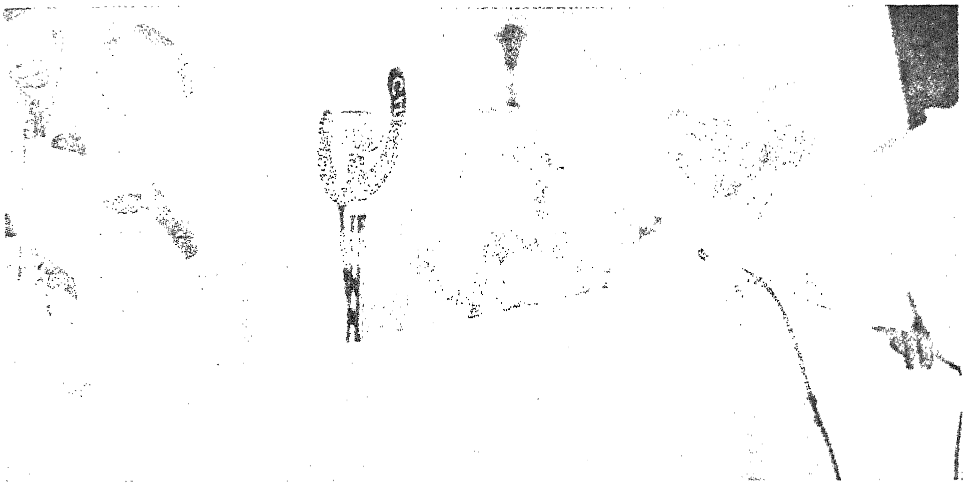

बम्बई के अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी में
(पंडित नेहरू, मौलाना आजाद और डा० लोहिया)

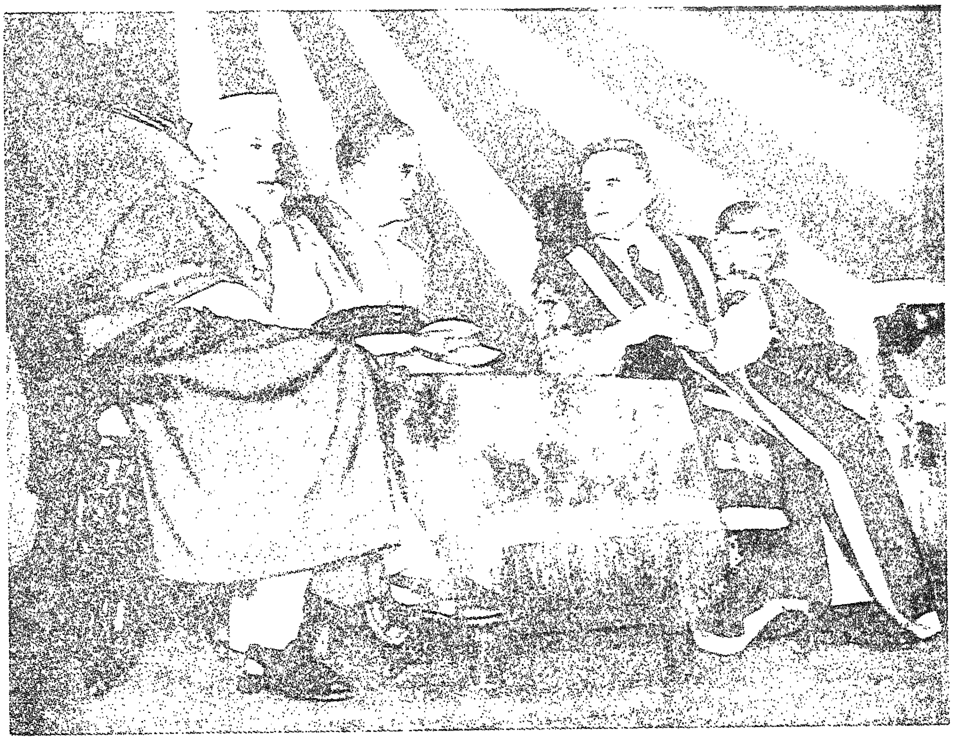

कलकत्ता विश्व विद्यालय के दीक्षान्त समारोह में बंगाल गवर्नर के साथ ।

कांटों का ताज

१५ अगस्त सन् १६४७ को देश ने युद्ध से थके हुए सेनानी पं० जवाहरलाल नेहरू के कंधों पर देश के शासन का भार रख दिया था। ध्वंसात्मक नीति को अपना कर लगातार ३० वर्षों से अथक योद्धा की भांति देश की आजादी की लड़ाई लड़ने वाले जवाहरलाल पर रचनात्मक कार्य का उत्तरदायित्व रक्खा गया। चाहिये तो यह था कि देश उन्हें किसी रमणीक घाटी के एक सुन्दर से बँगले में फूलों के बीच रख कर उनकी पूजा करता—उन्हें विश्राम देता, किन्तु प्राणी-मात्र तो स्वार्थ के वशीभूत है। मानव अपना ही स्वार्थ देखता है और फिर इस देश का तो विशेष रूप से। हजारों वर्ष गुलाम रह कर भारतीयों का जो नैतिक और सामाजिक पतन हुआ है उसे देख कर तो यही कहा जा सकता है कि यह देश अभी स्वतंत्रता के लिए उपयुक्त था भी नहीं। यह तो उन मुट्ठी भर विभूतियों का ही वरदान है जिन्होंने अपनी ममताओं, इच्छाओं, अभिलाषाओं और सुखों को हमारे लिये बलिदान कर दिया था। पंडित नेहरू इन विभूतियों में शिरोमणि हैं। जीवन की भूमिका में ही उन्हें सब कुछ देश के लिए त्यागना पड़ा। उनके इस ३० वर्ष के जीवन में अधिकांश क्षण कारागार के अंदर ही व्यतीत हुए हैं। ऐसे तपस्वी, त्यागी और श्रमित प्राण को तो अब विश्राम मिलना चाहिये था किन्तु—

हां, तो, पंडित नेहरू के ऊपर देश के शासन का उत्तरदायित्व लाद दिया गया—सिर पर कांटों का ताज रख दिया गया। इस कांटों के ताज को कोई पहिनने का साहस भी न कर सकता था, क्योंकि—

देश के चारों ओर विपत्तियां मुँह बाये खड़ी थीं। एक ओर हमारे सैकड़ों वर्ष के पुराने महाप्रभु लोग विदा ले रहे थे और दूसरी ओर पंजाब में तिल-तिल करके काटे जाने वाले स्त्री, बच्चे और बूढ़ों का कारुणिक आर्तनाद दिल्ली तक सुनाई पड़ रहा था। निर्दोष रुधिर से सारा देश सिक्त हो रहा था और साम्प्रदायिकता की अग्नि में राम, भरत, अशोक, अकबर और गांधी का देश धू-धू करके जल रहा था। रियासतों के झगड़ों को जैसे का तैसा छोड़ कर अंग्रेज भारत को सैकड़ों ही पाकिस्तान बनाने का आशीर्वाद दे चले थे। पाकिस्तानी लुटेरे

काश्मीर में घुस कर अभी तक चंगेजखां, हलाकूखां और नादिरशाह की सड़ी हुई पुरानी राजनीति की पुनरावृत्ति का स्वप्न देख रहे थे। दूसरी ओर सैकड़ों बार युद्ध में पराजित, अपमानित और भारत को परतंत्रता के बंधन में लाने वाले विदेशियों का दाहिना हाथ हैदराबादी निजाम अपनी तानाशाही में हिटलर से भी आगे बढ़ा जा रहा था। अंग्रेज जाते वक्त भारत के शरीर को काट कर एक पाकिस्तान तो बना चले थे तथा दूसरे दक्षिणी पाकिस्तान की जमीन तैयार कर चुके थे। अन्य कुछ रियासतें, जिनकी शक्तियां शून्य के बराबर थी, व्यर्थ में अपने अड्डों पर ग़ुर्रा कर अपने स्वतंत्र हो जाने का चित्र भारत सरकार को दिखा कर भयभीत कर रहीं थीं। किन्तु—

सबसे भयंकर, भीषण और भयानक समस्या जिसने देश को हिला रक्खा था वह तो कुछ और ही थी। यह खतरा एक ऐसे षड्यंत्र के रूप में बढ़ रहा था जो देखने में रोचक, सुनने में उत्साहवर्द्धक तथा क्रियात्मकरूप से आदर्शपूर्ण प्रतीत होता था। आगे चल कर हमको मालूम हुआ कि यह षड्यंत्र यदि सफल हो जाता तो क्या होता, इसकी कल्पना मात्र से ही हम कांप उठते हैं।

देश में एक बहुत बड़ा दल ऐसा था जिसने देश की आजादी की लड़ाई में खुल्लम-खुल्ला अंग्रेजों का साथ दिया था। इन व्यक्तियों ने अपने निजी स्वार्थ के लिये केवल अंग्रेजों का साथ ही नहीं दिया वरन् भारतीयों के स्वतंत्रता की भावनाओं को कुचलने में भी क्रियात्मकरूप से अपना उत्साह प्रदर्शित किया था। इनमें से अधिकांश देश-द्रोहिता के फलस्वरूप लम्बे लम्बे पुरस्कार पाकर बड़े आदमी हो गये थे। पद, पुरस्कार और उपाधियों के ये कृति देश जीवन भर विदेशी सरकार के हाथों को मजबूत करते रहे थे। इनमें सरकारी कर्मचारी, मजिष्ट्रेट, पुलिस, जमींदार, ताल्लुकेदार, राजे-महाराजे, पेंशन-प्राप्त सरकारी अफ़सर तथा वे लोग थे जिन्हें महापंडित तथा महामहोपाध्याय बना बना कर विदेशी सरकार ने धर्मान्धता का प्रचार किया था। इन्हें स्वप्न में भी ध्यान न था कि किसी दिन उनके शक्तिशाली प्रभुओं को शासन-सत्ता उन्हीं व्यक्तियों के हाथ में सौंप कर चले जाना पड़ेगा जिन्हें इस समय वे कुचल रहे हैं। १५ अगस्त सन् १९४७ के पुनीत दिवस की कल्पना से उनके दिल कांप उठे।

अन्य किसी देश में ऐसे व्यक्तियों को फांसी के तख्ते चूमने पड़ते; उन्हें जमीन में गड़वा कर उन पर कुत्तों को छोड़ दिया जाता तथा उनकी जमीन जायदादें जब्त करके उनके बच्चों को दाने-दाने का मोहताज कर दिया जाता। देश-द्रोह का इससे सरल दण्ड हो ही क्या सकता है?

किन्तु गांधी और नेहरू के देश में ऐसा होना संभव न था। इन पतित और देश-द्रोहियों को समान भाव से देखा गया, उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई तथा उन्हें भी समानाधिकार दिये गये। नेहरू सरकार ने उन्हें क्षमा कर दिया। उन्हें सम्मानपूर्ण जीवित रहने का अधिकार दिया गया तथा जिस पद पर वे थे उन्हें उसी रूप में उसी पद पर रहने दिया गया।

किन्तु कुत्ते की पूँछ को यदि बारह वर्ष तक निरंतर सीधा करके रक्खा जाय किन्तु वह टेढ़ी ही निकलेगी

इस क्षमा-दान को उन्होंने नेहरू-सरकार की कमज़ोरी समझा तथा इस अवसर से लाभ उठाने की योजना तैयार करने लगे। धीरे धीरे इनका संगठन प्रारम्भ हुआ। नेहरू-सरकार पर मुसलमानों का पक्षपात करने का दोष मढ़ा जाना प्रारम्भ किया गया तथा 'हिन्दू राज्य' और 'हिन्दू-राष्ट्र' के नारे बुलन्द किये जाने लगे। लोगों में कांग्रेस और नेहरू सरकार के विरुद्ध विष-वमन करना इनका काम हो गया। इन्होंने जिन बातों को लेकर यह विष फैलाना प्रारंभ किया उनमें मुख्य ये हैं :—

(१) जब पाकिस्तान बन गया है, जिसकी ज़िम्मेदारी कांग्रेस पर है, तो मुसलमानों को यहां से निकाल बाहर करना चाहिए। यह देश हिन्दुओं का है अतएव यहां शुद्ध हिन्दू-सरकार बनना चाहिए।

(२) कांग्रेस हिन्दू विरोधी है, तथा महात्मा गांधी और नेहरू इसके अगुआ हैं। इन्हें रास्ते से हटा देना चाहिए।

(३) देश में हिन्दू-राज्य स्थापित होना चाहिए और इस हिन्दू-विरोधी सरकार को उलट देना चाहिए।

(४) कांग्रेस वाले अधिकांशतः रिश्वतखोर, भ्रष्ट और बेईमान हैं।

इस प्रकार के प्रचार का जनता पर काफ़ी प्रभाव पड़ा और हिन्दुओं ने उस साम्प्रदायिकता को अपनाना प्रारम्भ कर दिया जो भारतीय मुसलमानों का बेड़ा ग़र्क कर चुकी थी। अन्त में इसका परिणाम यह हुआ कि देश के लिए स्वतंत्रता लाने वाले, राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की हत्या कर डाली गई।

अब अधिक सहन-शक्ति से परे था। बापू की हत्या ने जनता की आंख खोल दी। पंडित नेहरू ने इस साम्प्रदायिकता को जीवन भर के लिए समाप्त कर देने का बीड़ा उठाया। सारे साम्प्रदायिक संगठन ग़ैर-कानूनी घोषित कर दिये गये। इन षड्यंत्रकारियों को पकड़ कर कारागार में बंद कर दिया गया और इनके सारे मनसूबों को पंडित नेहरू ने धूल में मिला दिया। देश बच गया।

अंदरूनी गड़बड़ तो इन प्रतिक्रियावादियों की रीढ़ तोड़ देने से शांत होगई किन्तु अभी बाहरी समस्यायें अपना मुँह बाये खड़ी थीं। पंडित नेहरू ने काश्मीर पर आक्रमण किया, उन पठान-लुटेरों को निकाल बाहर करने के लिए जिन्हें पाकिस्तान ने बहका कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए भेजा था। भारतीय-सेना ने लगभग कुछ ही महीनों में बड़ी तत्परता के साथ उन्हें काश्मीर की सीमा तक ढकेल बाहर किया। अब वह दिन दूर नहीं है जब काश्मीर की धरती पर एक भी लुटेरा दिखलाई न पड़ेगा।

नेहरू सरकार ने जिस तत्परता और कौशल के साथ हैदराबाद की समस्या हल की है उसे देख कर तो आज सारा विश्व चकित-सा रह गया है। अकड़ने और दून की हांकने वाला निज़ाम आज भारत-सरकार के सामने नत-मस्तक है। दक्षिणी पाकिस्तान बनाने के सारे मनसूबों पर पानी फिर गया।

पंजाब से आये हुये शरणार्थियों की समस्या भी हल हो चली है। यह तो इतनी भीषण समस्या थी जो इतिहास में अभूतपूर्व है। लगभग ६० लाख से अधिक व्यक्तियों का प्रबंध करना आसान बात न थी; इस समस्या को जिस प्रकार नेहरू-सरकार ने सुलझाया वह स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। बहुतों को नौकरियां दी गईं, उनके लिये घर और ठहरने का प्रबंध सरकारी व्यय पर किया गया तथा उनके लिए उद्योग-धंधों की व्यवस्था की गई है। अब देश के अंदर शरणार्थियों का प्रश्न उतना भयानक नहीं रहा। धीरे धीरे सभी शरणार्थियों को सम्मानपूर्ण रहने की सुविधा हो जायगी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के थोड़े ही दिनों के शासन ने यह सिद्ध कर दिया कि वे कितने कुशल शासक हैं। एक बात स्मरणीय है कि पंडित नेहरू ने इन सब समस्याओं को एक निश्चित सिद्धांत पर चल कर हल किया है। वे उन व्यक्तियों में से हैं जो कभी अपना सिद्धांत नहीं बदलते। पंडित नेहरू ने अपनी एक घोषणा में स्पष्ट करते हुए कह दिया था कि 'हिन्दू-राष्ट्र' का नारा बे बुनियाद और भ्रममूलक है। हम इसका समर्थन करके मुसलिम लीग की पुरानी नीति का समर्थन नहीं कर सकते। यदि भारत को महान बनना है तो उसे साम्प्रदायिकता से दूर रह कर एक मिली-जुली सरकार बनाना पड़ेगा। मैं तो साम्प्रदायिकता का शत्रु हूँ, यदि आप हिन्दू-राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो आप अपने लिए दूसरा प्रधान मंत्री चुन लीजिये। मैं तो इस प्रकार के भावों का विरोधी हूँ'।

पंडित नेहरू ने जो कुछ कहा वही करके दिखला दिया। आज जिस शीघ्रता के साथ भारत आगे बढ़ रहा है उसे देख कर यह कहना पड़ेगा कि वह दिन अब दूर नहीं है जब भारतवर्ष पर सारे संसार की दृष्टि लगेगी। वह एशिया का नेतृत्व करते हुए विश्व को शान्ति का संदेश देगा।

पं० जवाहरलाल नेहरु ने अथक कार्य किया है। इस समय भी वे लंदन में होने वाली कामनवेल्थ के प्रधान-मंत्रियों की कांफ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए गये हैं। वहां के स्वागत-सत्कार ने भारत को सम्मान दिया है। पंडित नेहरू महान हैं और उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे एक सफल शासक हैं और देश ने जो उत्तरदायित्व उनके कंधों पर रख दिया था उसे उन्होंने जिम्मेदारी के साथ निबाहा है। इस कांटों के ताज को पंडित नेहरू ही पहिन सकते थे, और तो किसी में यह साहस दिखलाई नहीं देता।

काश्मीर और पंडित नेहरू

(पाकिस्तान के निर्देश पर पठानी लुटेरों ने काश्मीर-राज्य पर सुसंगठितरूप से आक्रमण कर दिया। काश्मीर ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने का निर्णय भारत-सरकार के पास भेज दिया। भारत-सरकार ने अपनी सेना काश्मीर की रक्षा के लिए वहां भेज दी। विधान-परिषद् में काश्मीर के आक्रमण के सम्बन्ध में पंडित नेहरू का यह स्पष्टीकरण है।)

मैं दृढ़ विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि भारत-सरकार ने काश्मीर के सम्बन्ध में जो सैनिक कार्रवाई की है वह बिल्कुल उचित, सीधी और बिना किसी प्रकार की कूटनीति के है। मैं संसार के सामने यह बात सिद्ध कर सकता हूँ। हमारे पास इसका सुदृढ़ प्रमाण मौजूद है कि काश्मीर और जम्मू पर जो पठानी लुटेरों ने आक्रमण किया है उसको जान-बूझ कर पाकिस्तान सरकार के उच्च अधिकारियों ने संगठित किया है। उन्होंने सीमा-प्रान्त के कबायलियों को एक स्थान पर एकत्रित करने में सहायता पहुँचाई है तथा उन्हें युद्ध की सामिग्री, लारियां, पेट्रोल तथा अफ़सर भी दिये हैं। उनका यह काम अब भी जारी है। उनके उच्च अधिकारियों ने खुले आम इसकी घोषणा भी की है। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पाकिस्तान के उच्च अधिकारियों द्वारा काश्मीर पर किया गया यह आक्रमण सुचारु रूप से आयोजित और संगठित था। इस योजना के द्वारा उनका इरादा यह था कि वे फ़ौजी सहायता से काश्मीर राज्य पर अधिकार करलें और बाद में यह प्रकाशित करदें कि काश्मीर अपनी इच्छा से पाकिस्तान में शामिल होगया है। यह कार्रवाई केवल काश्मीर के विरुद्ध ही नहीं वरन् भारतीय-संघ के प्रति भी शत्रुतापूर्ण है।

पाकिस्तान सरकार ने यह प्रस्ताव रक्खा है कि हम तभी आक्रमणकारियों को काश्मीर से हटायेंगे जब भारत सरकार अपनी फ़ौजों को वहां से हटा ले। इस विचित्र प्रस्ताव से तो यह सिद्ध होगया है कि आक्रमणकारी काश्मीर में पाकिस्तान सरकार के ही आदेश से वहां गये हैं। हम उन लुटेरों के साथ कभी इस प्रकार का व्यवहार नहीं कर सकते जिन्होंने बहुत से काश्मीर निवासियों को निर्यदतापूर्वक मार डाला है। उन्होंने काश्मीर को बरबाद कर डालने का भी प्रयत्न किया है। वे कोई राज्य नहीं हैं—चाहे उनके पीछे किसी भी राज्य का हाथ क्यों न हो।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मुझे आज इस धारा-सभा को उन घटनाओं को समझाने का मौक़ा मिल रहा है जिनसे मजबूर होकर हमको काश्मीर में लुटेरों के प्रति फ़ौजी कार्रवाई करना पड़ी है। हम बतायेंगे कि

काश्मीर में जो गंभीर समस्या उठ खड़ी हुई है उस सम्बन्ध में भारत सरकार का क्या रुख है ? इस सभा के सदस्यों को भली भांति मालूम है कि १४ अगस्त को ब्रिटिश संरक्षता समाप्त हो जाने के बाद भी काश्मीर किसी भी उपनिवेश में सम्मिलित नहीं हुआ। राज्य के निर्णय में हम लोगों को बड़ी दिलचस्पी थी। काश्मीर की सीमायें तीन देशों से मिली हुई हैं—सोवियत रूस, चीन और अफ़ग़ानिस्तान। अपनी भौगोलिक स्थित के कारण काश्मीर भारत की सुरक्षा और उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क से बहुत अधिक सम्बन्धित हैं। आर्थिक दृष्टि से भी काश्मीर भारत के साथ बहुत अधिक सम्बंधित है। मध्य एशिया से भारत में जो क़ाफ़िले व्यापार करने आते हैं वे काश्मीर राज्य से ही होकर आते ।

फिर भी हमने काश्मीर के ऊपर भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिये ज़रा भी दबाव नहीं डाला, क्योंकि हम यह अनुभव करते थे कि काश्मीर बड़ी विकट स्थिति में है। हम ऊपर से सम्मिलन नहीं चाहते थे बल्कि हम चाहते थे कि हमारा सम्बन्ध वहां की जनता की इच्छा के अनुकूल हो। वास्तव में हमने शीघ्र निर्णय को प्रोत्साहन नहीं दिया। यथास्थित समझौते के सम्बन्ध में भी हमने कोई जल्दी नहीं की बल्कि मामला विचाराधीन था १५ अगस्त के बाद ही काश्मीर ने पाकिस्तान के साथ यथास्थित समझौता कर लिया था।

बाद में हमें मालूम हुआ कि पाकिस्तान के अधिकारियों की ओर से काश्मीर पर दबाव डाला जा रहा है और जनता की आवश्यकता की चीजें भी काश्मीर नहीं जाने दी जातीं—जैसे कि अनाज, नमक, चीनी और पेट्रोल। इस प्रकार काश्मीर को आर्थिक दृष्टि से दबा देने का प्रयत्न किया जा रहा था ताकि वह पाकिस्तान में शामिल हो जाय। दबाव गंभीर था क्योंकि काश्मीर इन चीजों की यातायात की कठिनाइयों के कारण भारत से प्राप्त नहीं कर सकता था।

सितम्बर के महीने में समाचार मिला कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के कबायलियों का जमाव हो रहा है और वे काश्मीर की सीमा पर भेजे जा रहे हैं। अक्टूबर के आरम्भ में घटना-चक्र ने गम्भीर रूप धारण किया। आक्रमणकारियों के सशस्त्र गिरोह पश्चिमी पंजाब के आस-पास के गांवों से चलकर जम्मू प्रान्त में घुस गये और उन्होंने वहां के निवासियों की भारी संख्या में हत्याएं कीं, लूटमार और गावों और कस्बों को जलाना आरम्भ किया। इन क्षेत्रों के शरणार्थियों का जम्मू में तांता लग गया।

जम्मू प्रान्त के सीमावर्ती क्षेत्र के निवासियों ने जो प्रधानतः हिन्दू और राजपूत हैं, बदले की कार्रवाई शुरू की और उन्होंने उस क्षेत्र में रहनेवाले मुसलमानों को निकाल बाहर किया। सीमा पर होनेवाले इस संघर्ष में दोनों तरफ़ के लोगों ने बहुत भारी संख्या में गावों को नष्ट कर दिया अथवा जला दिया।

पश्चिमी पंजाब की तरफ से आने वाले आक्रमणकारियों की संख्या बढ़ गई और वे समूचे जम्मू प्रान्त में फैल गये। काश्मीर राज्य की सेना, जिसे अनेक स्थानों पर आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा शीघ्र ही छोटी-छोटी टुकड़ियों में खंडित हो गई और उत्तरोत्तर लड़ाकू सेना के रूप में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रह

पंडित नेहरू और श्री सुभाष बोस

गया। आक्रमणकारी सुसंगठित कुशल अफसरों से युक्त तथा आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थे। वे जम्मू प्रान्त के काफी बड़े भाग को, विशेषतः पूंच का क्षेत्र, अपने अधिकार में कर लेने में सफल हुए। पूंच नगर, मीरपुर, कोटली तथा कुछ अन्य स्थानों में रक्षक दलों ने आक्रमणकारियों से लोहा लिया; आक्रमणकारी उन पर अधिकार नहीं कर सके।

प्रायः इसी समय राज्य के अधिकारियों ने हमसे शस्त्रास्त्र तथा गोला-बारूद भेजने के लिये अनुरोध किया। हमने उनके इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। किन्तु वस्तुतः घटना-चक्र के और भी गम्भीररूप धारण कर लेने तक कोई रसद काश्मीर को नहीं भेजी गई। इस स्थिति में भी काश्मीर के भारतीय यूनियन में शामिल होने की कोई बात नहीं चलायी गयी।

इसी बीच काश्मीर राज्य की लोक प्रिय संस्था काश्मीर नेशनल कांफ्रेंस के नेता शेख मोहम्मद अब्दुल्ला जेल से रिहा कर दिये गये थे। हमने उनसे तथा महाराज काश्मीर के प्रतिनिधियों से काश्मीर में उत्पन्न हुई परिस्थितियों पर विचार-विनिमय किया और इन दोनों से हमने यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि हम इसका स्वागत करेंगे कि काश्मीर राज्य भारतीय यूनियन में शामिल हो जाय, किन्तु इस सम्बन्ध में कोई जल्दबाजी करना या कोई दबाव डालना नहीं चाहिये, बल्कि वस्तुतः हम इस बात की प्रतीक्षा करेंगे कि भारतीय यूनियन में शामिल होने का निर्णय काश्मीर की जनता करे; स्वयं शेख अब्दुल्ला की भी यही राय थी।

२४ अक्टूबर को हमने सुना कि सशस्त्र आक्रमणकारियों के बड़े-बड़े दल जिनमें सीमाप्रांत के कबायली तथा सेना के अवकाश प्राप्त अफसर एवं सैनिक भी शामिल हैं मुजफ्फराबाद के भीतर घुस गये हैं और वे श्रीनगर पर धावा बोल रहे हैं।

इन आक्रमणकारियों ने पाकिस्तान प्रदेश को पार किया था और वे ब्रेनगन, मशीनगन, तोप, आग उगलने वाले टैंक आदि से सुसज्जित थे और उनको यातायात के लिये गाड़ियां भी प्राप्त हुई थीं। वे श्रीनगर की घाटी में लूटमार और हत्याएँ करते हुए तेजी के साथ बढ़ रहे थे। हमने २५ और २६ अक्टूबर की रक्षा-कमेटी की बैठक में काश्मीर की परिस्थिति पर मनोयोगपूर्वक विचार किया। २६ अक्टूबर के सबेरे स्थिति यह थी कि आक्रमणकारी श्रीनगर की ओर बढ़ रहे थे और काश्मीर में कोई ऐसा फ़ौजी दल नहीं था जो आक्रमणकारियों का बढ़ाव रोकने में समर्थ हो।

इस स्थिति में महाराज काश्मीर तथा शेख अब्दुल्ला दोनों ने यह अनुरोध किया कि भारतीय यूनियन में शामिल होने के लिये काश्मीर की प्रार्थना स्वीकार कर ली जाये और यह कि भारतीय यूनियन सशस्त्र हस्तक्षेप करे। इस सम्बन्ध में तात्कालिक निर्णय की आवश्यकता थी। और वस्तुतः अब यह सर्वथा स्पष्ट हो गया है कि अगर हमने निर्णय करने में १४ घंटे का भी विलम्ब किया होता तो श्रीनगर का पतन हो गया होता और उसका भी मुजफ्फराबाद, बारामूला तथा अन्य स्थानों का सा हाल हुआ होता।

यह साफ़ ज़ाहिर था कि हम किसी भी हालत में इन पाशविक तथा ग़ैर ज़िम्मेदार आक्रमणकारियों के हाथों काश्मीर की तबाही को मंजूर नहीं कर सकते थे। ऐसा करना अधम कोटि की धर्मान्धता के सामने आत्म-समर्पण करने के बराबर हुआ होता। उस स्थिति में काश्मीर के मामले में दख़ल देना कोई आसान काम नहीं था और वह ख़तरों से भरा हुआ था। फिर भी हमने इस ख़तरे का सामना करने का निर्णय किया क्योंकि इसके अलावा अगर हमने किसी दूसरे उपाय से काम लिया होता तो इसका मतलब होता काश्मीर की बरबादी और भारत के लिये ख़तरा।

फिर भी भारतीय यूनियन में शामिल होने के लिये काश्मीर के अनुरोध को स्वीकार करते हुए हमने महाराज से यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी सरकार भविष्य में लोकमत के अनुसार संचालित होनी चाहिये और यह अस्थायी सरकार शेख़ अब्दुल्ला के नेतृत्व में क़ायम की जाय। इसके अलावा हमने यह भी स्पष्ट कर दिया कि काश्मीर में अमन-क़ानून क़ायम होते ही यूनियन में काश्मीर के शामिल होने का निर्णय लोकमत के अनुसार किया जाये।

गोलमेज परिषद और नेहरू

जिस समय देश भर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन (सन् १६३१) अपनी लहर ले रहा था और ब्रिटिश नौकरशाही निर्दोष जनता की खोपड़ियों के साथ निर्दयतापूर्वक होली खेल रही थी उस समय लंदन में एक बड़ा सुन्दर-सा प्रहसन खेला जा रहा था। भारत के संबंध में नया शासन-विधान बनाने का ढोंग रच कर एक गोलमेज-कांग्रेस की जा रही थी।

पंडित नेहरू उस समय जेल में थे। उन्होंने अपनी 'आत्म-कथा' में गोलमेज-कांफ्रेंस के संबंध में लिखते हुए कहा है कि जब भारतवर्ष में चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी और देश के स्त्री-पुरुषों की अग्नि-परीक्षा हो रही थी, उसी समय यहां से सुदूर लंदन में कुछ छटे हुए महानुभाव भारतवर्ष के लिए एक शासन-विधान बनाने के लिए एकत्र हुए थे। सार्वजनिक व्यय के बल पर हिन्दुस्तान से लंदन के लिए काफी लोग भेजे गये। हिन्दुस्तान के जन-आन्दोलन के वास्तविकरूप से भयभीत इन स्वार्थी प्रतिनिधियों को लंदन में साम्राज्यशाही के छत्र के नीचे एकत्रित देख कर किसी प्रकार का आश्चर्य न करना चाहिये था। लेकिन हमारे अंदर जो राष्ट्रीयता है उसको देख कर अवश्य वेदना हुई कि जब हमारे देश में इस प्रकार के जीवन और मरण का संघर्ष चल रहा हो उस समय कोई भी भारतीय इस प्रकार के कार्य करे। लेकिन एक दृष्टिकोण से यह ठीक ही हुआ क्योंकि ऐसा करने से ये लोग भारत के प्रगतिशील समुदाय से सदा के लिए अलग हो गये।

पंडित नेहरू ब्रिटिश साम्राज्यवाद से किसी भी प्रकार के समझौते के सदैव विरुद्ध रहे। जब जब समझौते की बात चली यह कार्य सदैव महात्मा गांधी ही को करना पड़ा है। अतएव वे इस प्रकार की गोलमेज कांफ्रेंस को जिसमें देश के वास्तविक प्रतिनिधि न हों केवल एक प्रहसन-मात्र ही समझते रहे हैं। यहां तक कि शिमला-कांफ्रेंस में भी उन्होंने किसी प्रकार का भाग न लिया। गोलमेज-कांफ्रेंस में जाने वाले प्रतिनिधियों के प्रति उनके भाव बहुत ही बुरे थे। उन्होंने लिखा है कि 'इस बात को देख कर आश्चर्य होता था कि इन्होंने अपने साधारण जीवन ही में नहीं बल्कि नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से भी अपने को देश की जनता से कितना पृथक कर लिया है। ऐसी कोई भी डोर न रह गई थी जो इन्हें देश की जनता के साथ जोड़ सकती। साथ ही साथ ये लोग न तो जनता को ही समझते थे और न उसकी अंतर प्रेरणा ही को जो उसे कष्ट और बलिदान की शक्ति देती रहती थी। इन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों के मत से केवल एक ही बात स्पष्ट होती थी, और वह यह कि ब्रिटिश-साम्राज्य की उस शक्ति के सामने, जिससे लड़ कर जीतना असंभव-सा है, हमको सिर झुका देना चाहिये चाहे वह प्रसन्नता से

हो या अप्रसन्नता से। इन लोगों को यह बात सूझती ही न थी कि भारत की जनता के सद्भाव के अभाव में भारत की समस्या को हल करना या उसके लिये कोई विधान तैयार करना असंभव ही सा है।

दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस जो गांधी-इर्विन समझौते के बाद हुई थी, उसमें सम्मिलित होने के लिए गांधीजी एक मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से सन् १९३१ में लंदन गये थे। पंडित नेहरू तो इन सब बातों को किसी प्रकार का महत्व न देते थे। वे तो पहिले ही से जानते थे कि इस कांफ्रेंस से किसी प्रकार का देश को लाभ न होगा। उन्होंने इस संबंध में लिखा है कि 'बड़ी लम्बी बहस के बाद हम लोगों ने यही निश्चित किया कि किसी दूसरे प्रतिनिधि की आवश्यकता नहीं है। यह बात कुछ हद तक इसलिए की गई थी कि हम यह चाहते थे कि ऐसे संकट-काल में अपने सब अच्छे आदमियों को हिन्दुस्तान ही में रहना चाहिए। उन दिनों की परिस्थिति को बड़ी सावधानी से संभालने की आवश्यकता थी। हम लोग यह अनुभव करते थे कि कांफ्रेंस लंदन में भले ही हो किन्तु आकर्षण का केन्द्र तो हिन्दुस्तान ही रहेगा। यहां जो कुछ होगा लंदन में उसकी प्रतिध्वनि अवश्य होगी। हम चाहते थे कि अगर देश में किसी भी प्रकार की गड़बड़ हो तो हम उसे ठीक करें और स्वयं अपने संगठन को सुदृढ़ रखें। हम गोल-मेज कांफ्रेंस में सम्मिलित होने इसलिए नहीं गये कि हम विधान-संबंधी छोटी मोटी बातों पर ऐसी बहसें और बातें न करना चाहते थे जो कभी समाप्त ही न हों। ऐसी दशा में हमारी इन विवरणों में कोई दिलचस्पी न थी। हम तो उन पर तभी ग़ौर कर सकते थे जब कि महत्वपूर्ण और बुनियादी मामलों में हमारा और ब्रिटिश सरकार का किसी प्रकार का समझौता हो जाता। हम लोगों को ऐसा ही अच्छा लगा कि हम लोगों के लिए यही गौरवपूर्ण रास्ता है कि हमारा सिर्फ़ एक ही प्रतिनिधि जाय और वह प्रतिनिधि हमारा नेता हो। वह वहां जाकर हमारी स्थिति साफ़ कर दे। अगर हो सके तो ब्रिटिश-सरकार को इस बात के लिए राजी कर ले कि वह कांग्रेस की बात मान ले'।

आगे चल कर पंडित नेहरू ने कहा है कि 'लेकिन ब्रिटिश-सरकार का इस तरह का कोई इरादा न था कि इस मामले में वह हमारी मर्जी के अनुसार काम करे। उसकी कार्य-प्रणाली तो यह थी कि यह कांफ्रेंस गौण तथा अर्थ हीन छोटी छोटी बातों पर चर्चा करके थक जाय। मूल और वास्तविक प्रश्नों पर विचार करने का समय ही टलता रहे। जब कभी वहां बड़े बड़े सवालों पर ग़ौर भी हुआ तो सरकार ने चुप्पी ही साध ली'।

पंडित नेहरू का विचार ठीक ही निकला। गोलमेज कांफ्रेंस का कोई फल न निकला। लोग अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलापते रहे। ब्रिटिश सरकार ने तो इसका ढांचा ही ऐसा बनाया था जिससे प्रदर्शन और शोर तो खूब हो किन्तु उसका परिणाम कुछ भी न निकले। अंत में वह समाप्त हुई और गांधी जी खाली हाथ लौट आये। इधर देश में दमन का पहिया पूरी रफ़्तार से फिर घूमने लगा था।

महात्मा जी को बम्बई में लेने के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रयाग से रवाना हुये किन्तु ब्रिटिश सरकार को यह भी पसंद न था। प्रयाग के आगे के स्टेशन पर ही गाड़ी रोक कर वे गिरफ़्तार कर लिए गये।

इस ग्रन्थ के लेखक पं० नेहरू के साथ
(पीठ पर क्रास का निशान)

अंत में पंडित नेहरू ने लिखा है कि 'कांफ्रेंस क्या थी पूरा भानुमती का पिटारा था। उसमें कदाचित् ही कोई ऐसा हो जो अपने अतिरिक्त किसी दूसरे का प्रतिनिधि हो। कुछ लोग अवश्य थे और देश में उनकी इज़्ज़त थी। लेकिन अन्य लोगों के विषय में तो यह बात भी लागू न होती थी। तात्पर्य यह है कि राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से वे हिन्दुस्तान में राजनैतिक उन्नति के सब से अधिक दलों के प्रतिनिधि थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि पंडित नेहरू इस गोलमेज परिषद् को प्रारम्भ ही से एक खिलवाड़ ही समझते थे। महात्मा गांधी ने उसका सच्चा रूप लंदन जाकर देख लिया। ब्रिटिश सरकार दमन करने का बहाना मात्र ढूँढ़ रही थी। उसने दमन-चक्र को अवसर पाकर पैना किया और गांधी जी के भारत लौटने के पहिले ही देश के सभी प्रमुख नेताओं के साथ हजारों की संख्या में कांग्रेस कार्यकर्ताओं को जेल में ठूँस दिया।

जब गांधी जी भारत आये और उन्होंने उस समय के वाइसराय लार्ड विलिंगडन से मिल कर सब कुछ जानना चाहा तो उन्होंने महात्मा जी से भेंट करने से भी इंकार कर दिया।

गोलमेज कांफ्रेंस तो एक धोखे की टट्टी थी। उसकी पोल शीघ्र ही खुल गई। पंडित नेहरू उसके जाल से अलग ही रहे। उन्होंने तो उस दिन ही गांधी-इर्विन समझौते को नापसंद किया था जिस दिन रात को बारह बजे महात्मा गांधी ने वाइसराय-भवन से आकर उन्हें जगा कर सूचना दी थी कि समझौता होगया।

नेहरू का समाजवादी दृष्टिकोण

(उन्हीं के द्वारा)

इंगलैंड हमारा शत्रु नहीं है। हमारा शत्रु तो वास्तव में साम्राज्यवाद है। जिस स्थान पर साम्राज्यवाद है, हम वहां स्वेच्छा से नहीं रह सकते। हमको स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। हमने अभी तक केवल राजनीतिक स्वतंत्रता पर जोर दिया है। कुछ लोगों का कहना है कि कांग्रेस को राजनीति के अतिरिक्त किसी अन्य मामले में न पड़ना चाहिये, किन्तु जीवन के हिस्से नहीं हो सकते और न राजनीति ही समाज के अन्य विषयों की उपेक्षा कर सकती है। हमारे सामने स्वतंत्र समाज निर्माण की समस्या है, इस समस्या को हल करने के लिए हमको सामाजिक और आर्थिक स्थिति बदलने पर विचार करना है तथा उसके अनुसार कार्य करना है। उस स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं है जिसका परिणाम शोषण और भूखों मरना हो। स्वतंत्रता का अर्थ तो हर तरह के शोषण से मुक्त होना ही है। इस हेतु इस स्वतंत्रता द्वारा प्रत्येक व्यक्ति पर आक्रमण करना होगा जो समाज के अंदर शोषण की नीति को अपनाये हुए है। हम औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं चाहते क्योंकि उसमें भी विदेशी पूँजी का ही प्राधान्य होगा और इसका अर्थ होगा विदेशी पूँजी द्वारा हमारा शोषण।

अतएव हमको ऐसा सामाजिक और आर्थिक ढांचा तैयार करना है जो जनता को वास्तविक स्वतंत्रता प्रदान करे और उससे ऐसी शक्ति प्राप्त करे जो हमारा कार्य-क्रम पूरा कर सके।

कार्य-क्रम तैयार करने के पूर्व हमको अपने उद्देश्यों और दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहिये। हम जनता की सेवा और निर्धनता दूर करने की बात सोचते हैं किन्तु हम यह सब करेंगे कैसे इस पर विचार करना चाहिये। हम यह कल्पना करते हैं कि देश के स्वतंत्र होते ही जनता का लाभ हो जायगा। यह सत्य तो है किन्तु इससे कुछ भी निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। हम अपने को बहुत कुछ जनता से भिन्न समझते हैं। हम अपने बौद्धिक विकास के कारण अपने को जनता का नेता मानते हैं। अब अगर हमारा और जनता का संघर्ष हुआ तो स्वभावतः हम अपने को ही अधिक महत्व देंगे। हम को विश्वास है कि हम देश के नेता हैं और हमारे ऊपर जनता को मुक्त करने का उत्तरदायित्व है और साथ ही साथ हमको अपनी भी स्थिति सुधारने का अवसर मिल गया है। प्रत्यक्षरूप से हम यही सब कुछ सोचते रहते हैं। यह सब ढोंग है। हमको जनता की सेवा करने की बात न करना चाहिये जब कि हमारा मुख्य उद्देश्य अपनी श्रेणी के व्यक्तियों की सेवा करना है। अतएव कार्य-क्रम बनाते

समय हमको जनता के स्वार्थों को ही प्रधानता देनी चाहिये और जनता को इस पर अन्य स्वार्थों का बलिदान करना चाहिये। जनता ही वास्तव में राष्ट्र है। उसके आर्थिक उत्थान पर देश का उत्थान निर्भर है। अतएव हमको आन्दोलन में जनता के ही असली प्रतिनिधियों को प्रधानता देनी चाहिये। इसी को वह वास्तविक आन्दोलन कह सकेंगे। जिनका सम्बन्ध आर्थिक परिवर्तन से है वे ही देश में आर्थिक परिवर्तन ला सकते हैं, अतएव जन आन्दोलन का नेतृत्व और संचालन उन्हीं लोगों के हाथों में होना चाहिये जो सब से अधिक शोषित किये गये हैं। बिना इस प्रकार की वास्तविक शक्ति के हमारी राजनीति केवल प्रस्तावों, जुलूसों और नारों की ही वस्तु रह जायगी। कोरी बातों से स्वराज्य न मिलेगा। मैंने कई बार कहा है कि मेरे विचार से सारी सामाजिक बुराइयों को दूर करने का एक मात्र उपाय समाजवाद है। हमारा उद्देश्य समाजवाद ही होना चाहिये। हमारे कार्य-क्रम में यह बात स्पष्ट रूप से होना चाहिये। कि हम उन कमजोरियों को सहन न कर सकेंगे जिनसे शोषित जातियों को हानि पहुँचती है। हमको इसका अन्त करना चाहिये और उन्हें आत्म-विकास की सभी सुविधायें प्रदान करना चाहिये। महिलाओं की उन्नति के सम्बन्ध में हमको उन सभी कानूनों को प्रचलित करना चाहिये जिससे उनकी अयोग्यतायें नष्ट हो जायँ। उनको पुरुष के समान ही अधिकार मिलने चाहिये तथा पर्दा-जैसी अमानुषिक प्रथा का सदा के लिए अन्त कर देना चाहिये। हमको आर्थिक कार्य-क्रम को सामने रखकर सब तरह की आर्थिक असमानताओं को नष्ट कर देना चाहिये तथा देश की सम्पत्ति का बंटवारा समानरूप से करना चाहिये। जहां तक सम्भव हो हमको सम्पत्ति का वर्तमान भेद मिटा देना है। धनिकों पर अधिक कर लगना चाहिये तथा निर्धनों को इस कर से मुक्त कर देना चाहिये। युक्त प्रान्त में जमीन्दारों और किसानों की एक प्रमुख समस्या है। दुर्भाग्यवश सभी जगह जमींदारों ने आर्थिक समानता की प्रगति में रोड़े अटकाये हैं। युक्त-प्रान्त की पंजाब और गुजरात से तुलना करके देखिये। वहां किसान ही भूमि का स्वामी है। हमारे प्रान्त में देश का गौरव बढ़ाने वाले पुरुष हुए हैं और हैं किन्तु हमारे अंदर मध्यम श्रेणी नहीं है। या तो हम अति समृद्धिशाली हैं और नहीं तो महा निर्धन हैं। अतएव जमीदारी प्रथा का अंत करने के अतिरिक्त और कोई योजना हमारे पास नहीं है। यह तो आजकल के युग के सर्वथा विरुद्ध और प्राचीन काल का प्रतीक है। अतएव हमारे कार्य-क्रम में जमीदारी प्रथा का अंत कर देना एक प्रमुख बात होनी चाहिये। इसके स्थान पर ऐसी प्रथा होना चाहिये कि परिवार के गुजारे योग्य भूमि प्रत्येक किसान के पास हो। हम इन जमीदारों का किस प्रकार अंत करेंगे? कुछ लोग तो यह चाहते हैं कि जमीदारियों को एक दम जब्त कर लेना चाहिये तथा कुछ लोगों का मत है कि उन्हें हर्जाना मिलना चाहिये। हरजाना देने के लिए इतना धन असंभव है। यदि धन मिल गया तो हम से जमीदार को लाभ होगा, क्योंकि उसे नगद रुपया मिल जायगा। हर्जाना देने से फिर समृद्धि की समानता नहीं रह जायगी। अन्य देशों का उदाहरण यह बतलाता है कि जमीन के बदले पूरा हर्जाना देने से न तो किसान को ही लाभ हुआ और न यह समस्या ही सुलझ सकी। अतएव किसी भी अवस्था में पूरा हर्जाना देना तो असंभव ही सा है।

जमीदारियों को जब्त कर लेने से भी बहुतों की दशा बड़ी हीन हो सकती है। हर्जाना दिया जाय किन्तु इतना नहीं कि पाने वाले को धनी बना दिया जाय।

जिसकी जीविका खेती हो उसे कर देने से मुक्त कर देना चाहिये।

किसानों के ऋण की समस्या भी हमारे सामने एक प्रमुख प्रश्न है। इससे किसानों की मुक्ति होना चाहिये। कर जहां तक हो सीधा होना चाहिये; हमको जनता और सरकार के बीच इस प्रकार के किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। इंग्लैंड की भांति हिन्दुस्तान में भी उत्तराधिकारी तथा मृत्यु-कर लगाना चाहिये। इसकी बड़ी आवश्यकता है हमारे देश में।

हिन्दुस्तान में उद्योग-धंधों के बढ़ जाने से हमको इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना है। पिछले दिनों की हड़ताल, मिल-बंदी और गोली-काण्ड की दुर्घटनाओं की ओर से कोई भी अपनी आंखें बंद नहीं कर सकता। सरकार को असली खतरा किसानों और मजदूरों से है; तथा औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वालों में अपना संगठन करने की विशेष शक्ति है और वे ही इस प्रकार के आन्दोलनों के अगुआ बन सकते हैं। यही कारण है कि सरकार उनके संगठन को नष्ट कर देना चाहती है, तथा श्रमिकों के संगठनों को रोक देना चाहती है। जहां कहीं भी इस प्रकार के मसले पेश होंगे सरकार की सारी शक्ति पूंजीपतियों की ओर होगी। भूखों मरने, श्रम करने और दयनीय दशा में रहने के साथ ही साथ श्रमिकों को सरकारी गोलियों का भी सामना करना पड़ता है। इस प्रकार के दमन को भी अपर्याप्त समझ कर 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' तथा 'पब्लिक सेफ्टी बिल' सामने लाये गये हैं। ब्रिटिश सरकार ने सदैव यही सब कुछ किया है तथा भविष्य में भी ऐसी चेष्टा करती रहेगी जिससे श्रमिकों का संगठन कभी दृढ़ न हो सके। क्या हम इस प्रश्न से अपने को तटस्थ रख कर श्रमिकों को पिसने देंगे? कानपुर आदि औद्योगिक क्षेत्र में मजदूर कितनी दयनीय दशा में रहते हैं यह देखने की बात है। बंगाल में एक ओर इनकी भयानक दुर्दशा देखिये और दूसरी ओर विदेशी पूंजीपतियों के लाभ की ओर एक दृष्टि डाल कर देखिये और फिर दोनों की तुलना कीजिये। आपकी साधारण मानव-प्रवत्ति आपको श्रमिकों की ओर ही खींच ले जायगी। राजनीतिक दृष्टि से भी मजदूर हमारी बहुत बड़ी शक्तियों में से हैं। हम उनकी ओर से कभी अपनी आंखें बंद नहीं कर सकते। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम स्वयं अपनी ही ओर से अपनी आंखे बंद करने के समान कार्य करेंगे।

अतएव यह बात निश्चित है कि हमको श्रमिकों के संगठन की ओर विशेषरूप से ध्यान देना है। श्रमिकों से अभिप्राय केवल शारीरिक श्रम करने वालों से नहीं है वरन शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के श्रमों से है। सर्वप्रथम हमको उन सरकारी हथकंडों का अंत करना है जो इस प्रकार के श्रमिकों के विकास और संगठन में रोड़े अटकाते हैं। हमको इसके निमित्त ट्रेड-यूनियनों की सहायता करना चाहिये, फैक्टरी-कमेटियों का निर्माण करना चाहिये। महिलाओं और बच्चों के काम करने के घंटों में कमी होना चाहिये। प्रत्येक श्रमिक को अच्छा स्थान रहने के लिए मिलना चहिये तथा उन्हें इतनी मजदूरी अवश्य मिलना चाहिये जिससे उनका भलीभांति निर्वाह हो सके। पूंजीवादी दृष्टिकोण से भी श्रमिक की योग्यता और कार्य-शक्ति बढ़ाने के लिए ये बातें आवश्यक हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि केवल 'स्वराज्य, स्वराज्य' के नारे लगाने मात्र से हम किसी भी प्रकार की

सीकचों के बाहर

प्रगति नहीं कर सकते। हमको यह बात स्पष्ट करना है कि राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ साथ बिना आर्थिक और सामाजिक स्वराज्य के हमारा काम नहीं चल सकता।

हमारे देश के कुछ नेता स्वतंत्रता की लम्बी चौड़ी बातें तो करते हैं किन्तु साथ ही साथ साम्प्रदायिक अधिकारों की भी मांग रखते हैं। किन्तु जो लोग सम्प्रदायवाद और स्वतंत्रता की साथ साथ बातें करते हैं उनका मस्तिष्क ठीक है या नहीं इसमें संदेह है। इन दोनों बातों में कभी मेल संभव भी हो सकता है? स्वतंत्र भारत की अट्टालिका सम्प्रदायवाद की बालू की नींव पर नहीं खड़ी की जा सकती।

अब यह प्रश्न उठता है कि इन सब का हल कैसे निकाला जाय? सभी शक्ति की मांग करते हैं किन्तु मांग रखने और हल्ला मचाने ही से तो शक्ति नहीं मिल जायगी। न कहने मात्र से ही सफलता मिलती है। यह तो एक बच्चा भी जानता है कि जिस राजनीतिक मांग के पीछे कोई शक्ति न होगी वह निकम्मी और बेबुनियाद है। इस प्रकार की शक्ति तो जनता और उसके द्वारा चलाये गये आन्दोलन से मिलती है। हमारा देश उतना कमजोर नहीं है जैसा लोग कल्पना करते हैं। हमारी शक्ति तो जनता है, और यदि हम एक बार जनता से भलीभांति संपर्क स्थापित करलें तो हमारी कमजोरी और भय का अवश्य अंत हो जायगा।

सम्पादक-सम्मेलन में नेहरू

(पंडित जवाहरलाल नेहरू ने निम्नलिखित विचार प्रयाग में होने वाले अखिल भारतीय सम्पादक-सम्मेलन के उद्घाटन के समय प्रकट किये थे। उन्होंने जिन महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर पत्र-सम्पादकों का ध्यान आकर्षित किया है वे कितने आवश्यक हैं यह ध्यान देने योग्य है।)

पत्रकार-कला के विकास के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी संवाद-समितियों की स्थापना की जाय जो हिन्दुस्तानी भाषा में ही समाचार भेजें। इस समय सारी संवाद-समितियां अंग्रेज़ी ही में खबरें भेजती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हमारे भाषणों और वक्तव्यों की ठीक और शुद्ध रिपोर्टें हिन्दुस्तान की भाषाओं के समाचार पत्रों में यथावत प्रकाशित नहीं हो पातीं। हम लोग हिन्दी और उर्दू में भाषण देते हैं और ये संवाद-समितियां अंग्रेज़ी में उनका अनुवाद करके भेजती हैं और उस अंग्रेज़ी का हिन्दी और उर्दू में फिर अनुवाद किया जाता है। इस प्रणाली को समाप्त कर देना आवश्यक है। देशी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों का भविष्य तो बड़ा ही आशाजनक और सुन्दर है।

भारतीय समाचार पत्रों को गांवों की ओर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए। समाचारों का दबाना तो पत्रकला के सिद्धांत के विरुद्ध है। विदेशों से समाचार प्राप्त करने के लिए भी अपनी निजी संवाद-समितियां होना चाहिए। लंदन, मास्को, वाशिंगटन तथा पेरिस में से प्रमुख राजनीतिक क्षेत्रों से समाचार प्राप्त करने के लिए हमको अपना स्वयं स्वतंत्ररूप से प्रबन्ध करना चाहिए। एशियायी देशों से सही खबरें प्राप्त करने के लिए हमको उनसे संपर्क स्थापित करना चाहिए तथा अपनी संवाद-समितियां बनाना चाहिए। इससे हमको अपने ही पड़ोसियों के शुद्ध और सच्चे समाचार मिल सकेंगे। राजनैतिक समाचारों के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा स्वास्थ्य-संबंधी समाचारों के प्रकाशन की ओर हमको अधिक ध्यान देना चाहिए क्योंकि इस समय इस बात की बड़ी आवश्यकता है।

संपादक को निष्पक्ष रह कर किसी भी दल के समाचारों को न दबाना चाहिए। इससे पत्र की निष्पक्षता नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत समाचारों को दबाने से यह परिणाम निकलता है कि जब समाचार पुनः प्रकट होता है तो उसमें या तो अतिशयोक्ति की संभावना रहती है या वह वास्तविक घटना से बिल्कुल भिन्न ही समाचार मालूम पड़ने लगते हैं। समाचार-पत्रों को समाचार प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त रहना चाहिए।

भारतीय समाचार-पत्रों का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है, अतएव 'टेली-प्रिन्टर' से भी खबरें हिन्दुस्तानी ही में भेजी जायें। हिन्दी और उर्दू के समाचार-पत्रों को अंग्रेज़ी में प्राप्त समाचारों का अनुवाद करना पड़ता है। जो भाषण हिन्दुस्तानी में होते हैं उसके अंग्रेज़ी अनुवाद का वे अनुवाद करते हैं। इससे हिन्दुस्तानी भाषा के समाचार पत्रों में प्रायः भाषणों का आशय ग़लत ही प्रकाशित होता है। इस प्रकार वक्ता के विचारों की ही प्रायः हत्या हो जाती है। भारत की समाचार-समितियां ठीक ढंग से संगठित नहीं हैं।

भारतीय समाचार-पत्रों में काम करने वाले श्रमजीवी पत्रकारों के वेतन के संबंध में प्रायः बड़ी शिकायतें सुनने में आती हैं। इस संबंध में समाचार पत्रों को ध्यान देना चाहिए। जब तक भर पेट भोजन नहीं मिलता तब तक पत्रों का स्तर भी ऊँचा नहीं उठ सकता। वेतन, ग्रेड तथा सुरक्षा आदि के प्रश्नों को तो हल करना ही होगा।

समाचार-पत्र सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर उतना ध्यान नहीं देते जितना उन्हें देना चाहिए।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को पढ़ कर मुझे बड़ा दुःख होता है। संपादकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये तथा उन्हें कभी इस प्रकार के विज्ञापनों को प्रकाशित न करना चाहिये जो सामाजिक दृष्टि से अनैतिक तथा घातक हों।

जवाहर की भूमिका

—राय सोमनारायण सिंह

सन् ३१ के गर्मी के दिनों में सैण्डर्स्ट आर्मी कम्पीटीटिव एक्ज़ामिनेशन में बैठने के लिये मैं दिल्ली गया था। मुझको कांग्रेस या कांग्रेस के कार्य से इतनी ही दिलचस्पी थी जितनी कि किसी भी सरकारी पदाधिकारी को उन दिनों होती थी। सरकारी पदाधिकारी तो मैं न था किन्तु सेना में एक उच्च पद प्राप्त करने के लिये प्रयत्न अवश्य कर रहा था। प्रातःकाल जब दिल्ली प्लेटफ़ार्म पर गाड़ी पहुँची तो कुछ कांग्रेस के स्वयंसेवक, स्वयंसेविकाएँ व कार्यकर्त्ता इत्यादि तिरंगे झण्डों से सुसज्जित देश भक्तों ने 'जवाहरलाल नेहरू की जय' की ध्वनि से सारे स्टेशन को गूंजा दिया। न जाने क्यों शैशवकाल से ही कांग्रेस नेताओं के दर्शन करने का विचार या उसकी आकांक्षा बनी रहती थी। उनमें से पंडित जवाहरलाल नेहरू भी एक थे। उसी गाड़ी से वह भी दिल्ली गये थे। मुझको यह पता भी न चला कि सारी रात हम और वह एक ही गाड़ी से यात्रा कर रहे थे। मैं प्लेटफ़ार्म पर उतरा और मालूम हुआ कि पंडितजी बाहर चले गये। पंडित जी को प्रत्यक्ष तो कभी देखा न था किन्तु चित्र उनके अनेक बार देख चुका था। इसलिये पहचानने में क्षण भर का भी विलम्ब न हुआ। लगभग ५० गज के फ़ासले पर प्लेटफ़ार्म के बाहर एक काली मोटर पर २ व्यक्ति बैठे दिखलाई दिये। पिछली सीट पर एक मुसलमान नवयुवक, जिनकी एक दम काली डाढ़ी थी, खद्दर पहने हुये थे। उनके बगल वाले व्यक्ति को जब मैंने देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि सड़क पर ऊपर के चमकते हुये सूर्य का कुछ अंश गिर कर मोटर की पिछली सीट पर मनुष्य के रूप में स्थापित हो गया। गौरवर्ण, कुछ लम्बा सा मुखमण्डल, प्रशस्त ललाट, छरहरा शरीर, पतली सफ़ेद खादी की टोपी सर पर और धोती कुर्त्ता पहने हुये पंडित जी विराजमान थे। किसी कारणवश उन्होंने अपना मुखमण्डल स्टेशन

भावुक जवाहरलाल

की ओर घुमाया और कुछ सात्विकतापूर्ण मुसकान छोड़ी। दूर से उनके दांत मोती की तरह चमकते हुये दिखाई पड़े। उसके पश्चात मोटर वहां से अन्तरध्यान हो गई। इस कौतुक को देखने में कुल एक मिनट का समय लगा होगा।

यह एक प्रथम दर्शन दूर से हुये थे। सन् ३३ में मैं स्वयं कांग्रेसमैन बन गया था, और इसी सिलसिले में जेल-यात्रा भी कर चुका था। ऐसी अवस्था में पंडित जी के प्रति इतनी श्रद्धा बढ़ गई थी यह तो उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले ही जान सकते हैं या कल्पना कर सकते हैं। उसके पश्चात जाड़े के दिनों में पण्डित जी कानपुर पधारे, स्टेशन पर बड़ी भीड़ थी। सम्भवतः वह पहली बार तीसरे दर्जे में यात्रा करते हुये देखे गये थे। प्लेटफार्म से लगी हुई सीट पर वह बैठे हुये थे। गाड़ी के आते ही स्टेशन उनकी जय-ध्वनि तथा कांग्रेसी नारों से गूंज उठा। जनता उस डिब्बे की ओर ऐसी गद्‌गद् हो उठी जैसे महासागर महाछवि को देखकर उत्साह से गद्‌गद् हो उठता है। दिल्ली में तो गर्मी के दिनों में उनको दूर से देखकर यह आभास हुआ था कि सूर्य का अंश गिर कर पिछली सीट पर मनुष्य के रूप में स्थापित होगया था। अब की बार शीतकाल में ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे चन्द्रमा स्वयं मनुष्य रूप धारण करके रेल में बैठ कर यात्रा कर रहा

ज्योंही प्लेटफ़ार्म पर उतरे उनकी जयध्वनि के साथ साथ उनको न जाने कितनी मालाएँ पहनाई गईं। मुझसे जो अवस्था में बड़े हैं, विद्वान, ब्राह्मण और नेता इत्यादि उनके चरण स्पर्श करने में जो आत्मिक संतोष तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है उसका मैं स्वयं वर्णन नहीं कर सकता। बहुत से लोगों ने पंडित जी के चरण स्पर्श किये, मैंने भी उनके चरण स्पर्श किये। आशीर्वाद से तो मैं वंचित रहा किन्तु यह अवश्य सुनाई पड़ा कि 'अरे आप लोग यह क्या कर रहे हैं' मैंने पंडित जी की ओर देखा, वह मुसकुरा रहे थे। मैंने अपने लिये उनका हार्दिक आशीर्वाद उनकी उस मुसकान में पा लिया। दोपहर को कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की एक सभा हुई। पंडित जी ने उसमें भाषण दिया। एक सज्जन ने उनसे कहा कि 'क्या आप हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद में भी भाषण देंगे?' पंडित जी ने उत्तर दिया कि मुझे उससे कोई रुचि नहीं। फिर प्रश्न किया गया कि 'क्या आपको हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद से कोई दिलचस्पी नहीं है?' पंडित जी ने उत्तर दिया कि 'इत्तिहाद से तो दिलचस्पी है लेकिन इत्तिहाद-सभा से नहीं है'। उन सज्जन ने भी एक बार पंडित जी को उनके भाषण के बीच में टोका। पंडित जी ने एक बार डांट कर कहा 'आप बार बार बीच में टोक कर (interrupt) हिंसा (violence) क्यों कर रहे हैं'। सभा में निस्तब्धता छागई। मैंने अपने मन में कहा कि इससे हिंसा अथवा (violence) की तो कोई बात नहीं टपकती।

रात्रि को कुछ स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की सभा हुई। हम लोग समय से पहले ही जाकर बैठ गये। कुछ आपसी मतभेद की बातचीत थी। ठीक समय पर पंडित जी आ विराजे। मेरे मुँह से निकला कि यदि लोग काम करने की बात करें तो अधिक अच्छा हो। पंडित जी ने बड़ी नम्रता और गम्भीरता से उत्तर दिया। 'जी हां...चाहता तो मैं भी यही हूँ'। एक कार्यकर्त्ता ने कुछ कहा, पंडित जी सम्भवतः यह समझे कि उनको कुछ

कहा गया। बस वह एक दम से बिगड़ गये। रामायण की 'मनो वीर रस सोवत जागा' वाली चौपाई का स्मरण हो आया। उनके हाथ में उन्हीं का रूमाल था उसको उन्होंने दूर फेंक दिया। आवेश में या जोश में कुछ कहते भी जाते थे। हमने यह देखा कि रूमाल ज्यों का त्यों बड़ी देर तक यथावत पड़ा रहा। लगभग चार या पांच मिनट के पश्चात उन्होंने उन सज्जन से कहा कि अगर आपको बुरा मालूम हुआ हो तो मुझे माफ़ कर दीजियेगा। उनके मुखमडंल की मुद्रा भी बदल गई। आवेश ने शान्ति का रूप धारण कर लिया। जब उनकी यह मुद्रा हुई तो किसी ने उस रूमाल को उठा कर उन्हें दे दिया। उन सज्जन ने यही कहा कि 'नहीं पंडित जी मुझे तो आपकी इस बात को सुनकर दुखः हुआ जो कि············इतने ही में पंडित जी ने कहा 'हां तो मैं आप से माफ़ी चाहता हूँ'। और बड़ी प्रतीक्षा की दृष्टि से उनकी ओर ताकने लगे। सभा समाप्तहुई। हम लोग अपने अपने घर चले आये। मैंने एक प्रमुख कार्यकर्त्ता से पूछा कि पंडित जी को यूंही ग़ुस्सा आ जाता है? उत्तर मिला कि वह तो उनका गुण है क्योंकि वह किसी प्रकार का वैमनस्य, राग या द्वेष अपने हृदय में नहीं रखते हैं। अबोध बालकों की तरह निर्दोष हैं। मैंने अपने मन में कहा कि 'अच्छा यह तो ४४ वर्ष के अबोध बालक हैं'।

उसके पश्चात मैंने पंडित जी को कई बार देखा और बातचीत भी की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उनका हृदय बिलकुल निर्मल है। उनके हृदय में कोई अपने को भली भांति देख सकता है। लखनऊ कांग्रेस में जब वह सभापति आसन पर बैठे हुये थे तो विषय निर्धारिणी कमेटी में लाउड स्पीकर फेल हो गया था। फिर क्या था पंडित जी ने आवेश में आकर पूछा कि लखनऊ की बिजली का जिम्मेदार कौन है?

बुलाओ जल्दी से······················को। रिसेप्शन कमेटी, स्वागत समिति क्या कर रही हैं। सायंकाल खुले अधिवेशन में उन्होंने यह सूचना दी कि सनातन धर्म सभा की ओर से कुछ लोग अधिवेशन में विघ्न डालने का प्रयत्न करेंगे ऐसी सूचना मुझे मिली हैं। कुछ हल्ला भी हुआ, लोगों के बहुत मना करने पर भी पंडित जी न माने, हल्ले की ओर गये। लौट कर आये, मंच पर चढ़ कर सूचना दी कि जब मैं वहां पर गया तो कोई भी नहीं था और सब लोग भाग गये थे।

एक घटना का और उल्लेख करूँगा। बंगाल में असेम्बली का निर्वाचन हो रहा था। पंडित जी को एक कांग्रेस विरोधी उम्मेदवार के कारण (जो किसी समय सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी का लैफ़्टिनेन्ट कहलाता था) बोलपुर (जिला वीरभूमि) जाना पड़ा। शांति निकेतन (स्वर्गीय विश्व कवि रवींन्द्रनाथ टैगोर के विश्व भारतीय) बोलपुर से थोड़ी ही दूर पर है, इसलिये उनका वहां भी जाना आवश्यक था और गुरुदेव से (डा० टैगोर) मिलना भी था। उन दिनों मैं शांतिनिकेतन में पढ़ता था। या तो सन् ३६ का अन्त था या सन् ३७ का आरम्भ। शांति-निकेतन में मैं उन दिनों हिन्दी समाज का मंत्री था और मेरे परम पूज्यनीय गुरु आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी सभापति थे। स्वर्गीय दीनबन्धु (सी० एफ़० एड्रूंज) उसके संरक्षक थे। स्वर्गीय विश्व कवि अथवा अपने गुरुदेव का भी आशीर्वाद उस संस्था को प्राप्त था। पूज्यनीय द्विवेदी जी ने पंडित जी को एक तार दे दिया था कि हिन्दी

हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में वे कुछ बात करना चाहेंगे। पंडितजी का यह तार द्वारा उत्तर मिला कि हम लोग बर्दवान के स्टेशन पर उनसे मिलें। मैं आचार्य द्विवेदी जी तथा अन्य दो सहपाठियों के साथ बर्दवान गया। जब गाड़ी आई तो मैं उनके डिब्बे फ़र्स्ट क्लास की ओर माला लेकर बढ़ा और अन्दर गया। गाड़ी प्रातःकाल पहुँचती थी। पंडित जी अपना बिस्तर ठीक कर रहे थे। मैं इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था कि वह मेरी ओर देखें तो मैं उनको माला पहिना कर उनके चरण स्पर्श करूँ। मेरी उनकी आँखें चार हुईं थीं कि उन्होंने झुंझला कर कहा कि 'अरे भाई माला बाहर पहिनाना'। मैं अपने देवता को प्रतिकूल समझ कर तत्काल बाहर आकर एक किनारे खड़ा हो गया। कुछ देर के बाद वह बाहर निकले। लोगों ने उनको मालायें पहिनाईं। दैवयोग से उनकी दृष्टि मेरी ओर गई और वह मुसकाकर बोले क्यों भाई माला नहीं पहिनाओगे······मैं भी मुसकुराता हुआ उनके पास गया और माला पहिना दी। माला पहिनाते समय बड़ी नम्रता से उन्होंने गर्दन नीची की यद्यपि इसकी आवश्यकता न थी। क्योंकि लम्बाई में मैं उनसे काफ़ी अधिक था। इस समय मुझे यह स्मरण नहीं है कि वह चरण स्पर्श करने से प्रसन्न हुये थे या अप्रसन्न।

बर्दवान में गाड़ी बोलपुर के लिये बदली गई। स्थानीय कार्यकर्ताओं से पूछा कि 'शांति-निकेतन से कुछ लोग आने वाले थे आये कि नहीं?' हम लोगों की ओर इशारा किया गया क्योंकि हम लोग कुछ दूर पर किनारे खड़े थे। मैंने अंग्रेज़ी में कहा 'श्रीमान जी हम लोग यहां पर हैं'। पंडित जी बड़े जोर से खिलखिलाकर बोले कि आप लोगों ने यहां पर हमला किया आकर। उनके ही डिब्बे (सेकन्ड क्लास) में बैठ कर हम लोग बोलपुर लगभग ३० या ३२ मील गये। हम लोग हिन्दी के उतने ही कट्टर पक्षपाती थे जितने कि पंडित जी हिन्दुस्तानी के, हमारे और उनके विचारों में मौलिक मतभेद था। उनके कुछ लेखों का ध्यान आकर्षित करते हुये मैंने कहा कि 'हिन्दुस्तानी लिखने के लिए शुद्ध हिन्दी और शुद्ध उर्दू दोनों का ज्ञान आवश्यक है। कुछ और भी कहा था। मालूम नहीं कि नक्षत्र पलटा खा गया। पंडितजी के मस्तिष्क की रेखायें स्पष्ट तन गईं, और कहने लगे 'आप मुझको बहुत काफ़ी समझदार मालूम पड़ते हैं और अब अनजान जैसी बातें करने लगे। मैं चुप हो गया। मेरे मौन ने उनके क्रोध को शांत किया। विषय के अन्य बातों पर बोलते हुये लगभग ५ मिनट के अन्दर ही अन्दर कहने लगे कि 'आप का यह··············मतलब था तो ठीक ही था'। मैंने कहा कि 'पंडित जी मेरा अभिप्राय यही था। फिर क्या था? मेरे एक कन्धे के ऊपर हाथ रखकर वह बोले 'हां-हां तो आप का काम ठीक था मुझे आप माफ़ कीजियेगा'।

पंडित जी की लिखी हुई सभी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं उनमें साहित्य-प्रतिभा भी असीमितरूप से विद्यमान है। उनके गद्य पढ़ने में पद्य का आनन्द आता है। भाषा (अंग्रेज़ी) के ऊपर उनका कितना अधिकार है यह उनकी पुस्तकों व लेखों के पढ़ने वाले ही जान सकते हैं। उनकी पुस्तकों की समालोचना में एक अच्छा विद्वान एक बड़ा-सा ग्रन्थ तैयार कर सकता है। वह स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री होने के पश्चात कानपुर पधारे। हवाई अड्डे पर

मैंने उनको देखा, और बहुत पास से देखा। अब की बार उनमें वह ज्योति या आभा नहीं दिखलाई पड़ी जो पहले दिखलाई पड़ती थी। कुछ उनके मुख-मण्डल पर गम्भीरता और चिन्ता अधिक पाई। पंडित जवाहरलाल नेहरू को मैं साहस, त्याग, विद्वता, शुद्धता, निर्दोषता, आत्मनिष्ठता, कर्मनिष्ठता, सत्यनिष्ठता, बलिदान, वीरत्व, गम्भीरता तथा पुरुषत्व इत्यादि का चलता फिरता, बोलता चालता उदाहरण पाता हूँ। उनके ऊपर बहुत बोझ है। चिरस्मरणीय, महामानव गांधी के मानवता की बलिवेदी पर अपना बलिदान करने के पश्चात भारत माता एक बाल विधवा की तरह है। पंडित जी के हृदय को जो चोट लगी होगी वह उनके ऐसे ही बलवान सहन कर सकते हैं। अब उस बाल विधवा के एक मात्र सन्तान या सहारा पंडित जवाहरलाल नेहरू ही हैं। हम लोगों का परम कर्तव्य है कि जो भी बलिदान पंडित जी देश के नाम पर मांगे उसको प्रत्येक भारतवासी को देने के लिये तैयार रहना चाहिये। बस एक ही लालसा है कि पंडित जी चिरायु हों, स्वस्थ रहें और बलशाली बने रहें। अब आजकल उनको पैर छूने से बड़ी चिढ़ हो गई है। वह इसको बहुत बुरा तथा अनावश्यक समझते हैं। मैं इसको परम आवश्यक तथा अच्छा समझता हूँ। जब कभी दर्शन होंगे तो चरण स्पर्श करने का प्रयत्न मैं अवश्य करूँगा। होगा क्या? उनको क्रोध या झुंझलाहट ही तो आवेगी। उसमें कितना प्रेम है तथा स्नेह भरा होता है यह उसी की समझ में आ सकता है जिसको उनकी झुंझलाहट या क्रोध से पूर्ण परिचय हो। मेरा तो ऐसा अनुमान ही नहीं वरन् दृढ़ विश्वास है कि उनके क्रोध में सब को प्यार आता है।

धर्म क्या है ?

(पं० नेहरू द्वारा)

हिन्दुस्तान सब देशों से ज़्यादा, धार्मिक देश समझा जाता है और हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख और दूसरे लोग अपने अपने मतों का अभिमान रखते हैं और एक दूसरे के सिर फोड़ कर उसकी सचाई का सबूत देते हैं। हिन्दुस्तान में और दूसरे देशों में धर्म के, और कम से कम मौजूदारूप में संगठित धर्म के दृश्य ने मुझे भयभीत कर दिया है, मैंने उसकी कई बार निन्दा की है, और उसको जड़-मूल से मिटा देने तक की इच्छा की है। मुझे तो लगभग हमेशा यही मालूम हुआ कि अन्ध-विश्वास, प्रगतिविरोध, जड़ (प्रमाण रहित) सिद्धान्त, कट्टरपन, अन्धश्रद्धा और शोषणनीति और (न्याय अथवा अन्याय से) स्थापित स्वार्थों के संरक्षण का ही नाम 'धर्म' है मगर यह भी मुझे अच्छी तरह मालूम है कि धर्म में और भी कुछ है, उसमें कुछ ऐसी चीज भी है जो मनुष्यों की गहरी आन्तरिक आकांक्षा भी पूरी करती है। नहीं तो उसका इतनी जबरदस्त शक्ति बनना, जैसा कि बना हुआ है, कैसे सम्भव था, और उससे अनगिनती पीड़ित आत्माओं को सुख और शान्ति कैसे मिल सकती थी ? क्या वह शान्ति केवल अन्धविश्वास को शरण देने और शंकाओं पर परदा डालने वाली ही थी ? क्या वह वैसी ही शान्ति थी जैसी खुले समुद्र के तूफानों से बचकर किसी बन्दरगाह में मिलती है, या उससे कुछ ज़्यादा थी ? कुछ बातों में तो सचमुच वह इससे कुछ ज़्यादा ही थी।

लेकिन इसका भूतकाल कैसा भी रहा हो, आज कल का संगठित धर्म तो ज़्यादातर एक खाली ढोल हो रह गया है, जिसके अन्दर कोई तथ्य और तत्त्व नहीं है। श्री जी० के० चेस्टरटन ने इसकी (स्वयं अपने विशेष-धर्म की नहीं मगर दूसरों के धर्म की) उपमा भूगर्भ में पाये जाने वाले किसी ऐसे जानवर या प्राणी के पाषाण-खचित ढांचे से दी है जिसके अन्दर से उसका अपना जीवन-तत्त्व तो पूरी तरह से निकल चुका है लेकिन ऊपरी पंजर इसलिये रह गया है कि उसके अन्दर कोई बिल्कुल दूसरी ही चीज भर दी गई थी। और, अगर किसी धर्म में कोई महत्त्वपूर्ण चीज रह भी गई है तो उस पर और दूसरी हानिकर चीजों का लेप चढ़ गया है।

मालूम होता है कि यही बात हमारे पूर्वीय धर्मों में, और पश्चिमी धर्मों में भी हुई है। चर्च आफ़ इंगलैंड ऐसे धर्मों का एक स्पष्ट उदाहरण है जो किसी भी अर्थ में धर्म नहीं है। किसी सीमा तक, यही बात सारे संगठित प्रोटेस्टेण्ट, धर्मों के बारे में सही है; लेकिन इसमें सबसे आगे बढ़ा हुआ चर्च आफ इंगलैण्ड ही है, क्योंकि वह बहुत अर्से से एक सरकारी राजनीतिक महकमा बन चुका है।

उसके बहुत से अनुयायियों का चरित्र बेशक ऊँचे से ऊँचा है मगर यह मार्के की बात है कि किस तरह इस चर्च ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उद्देश्य को पूरा किया है, और पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों की किस तरह नैतिक और ईसाई जामा पहना दिया है। इस धर्म ने एशिया और अफ्रीका में अंग्रेज़ों की लुटेरी नीति का समर्थन करने की कोशिश की है, और अंग्रेज़ों में एक असाधारण और ईर्षा करने योग्य भावना भर दी है कि हम हमेशा ठीक और सही काम करते हैं। इस बड़प्पन-भरी सत्कार्य-भावना को इस चर्च ने पैदा किया है या वह खुद उसमें पैदा हुई है, यह मैं नहीं जानता। यूरोपियन महाद्वीप के और अमेरिका के दूसरे देश, जो इंग्लैंड के बराबर भाग्यशाली नहीं हुए हैं, अक्सर कहते हैं कि अंग्रेज मक्कार हैं। 'विश्वासघाती इंग्लैंड' यह एक पुराना ताना है। लेकिन शायद यह इलजाम तो अंग्रेज़ों की सफलता से उत्पन्न हुई ईर्षा से लगाया जाता है, और निश्चय ही कोई दूसरा देश भी इंग्लैंड के दोष नहीं निकाल सकता क्योंकि उसके भी कारनामे इतने ही खराब हैं। जो राष्ट्र जान-बूझ कर मक्कारी करता है, उसके पास हमेशा इतना शक्ति-संग्रह नहीं रह सकता जैसा कि अंग्रेज़ों ने बार-बार कर दिखलाया है; और इसमें उनके खास तरह के 'धर्म' ने स्वार्थ-साधन के समय नीति-अनीति की चिन्ता करने की भावना कुंठित करके मदद पहुँचाई है। दूसरी जातियों और राष्ट्रों ने बहुधा अंग्रेज़ों से भी बहुत खराब काम किये हैं, लेकिन अंग्रेज़ों के समान वे अपना स्वार्थ साधने वाले कृत्यों को सत्कार्य समझने में सफल नहीं हुए हैं। हम सभी के लिये यह बहुत आसान है कि हम दूसरों के 'जर्रे' के बराबर दोष को 'पहाड़' के बराबर बता दें और स्वयं अपने 'पहाड़' के बराबर दोष को 'जर्रे' के बराबर समझें, लेकिन कदाचित इस करतब में भी अंग्रेज ही सबसे ज़्यादा बढ़कर हैं।

प्रोटेस्टेण्ट-मत ने नई परिस्थिति के अनुकूल बन जाने की कोशिश की, और लोक-परलोक दोनों का ही ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठाना चाहा। जहां तक इस संसार का सम्बन्ध था वहां तक तो वह खूब ही सफल रहा; धार्मिक दृष्टि से वह संगठित धर्म के रूप में 'न घर का रहा न घाट का'। और धीरे-धीरे धर्म की जगह भावुकता और व्यवसाय आ गया। रोमन कैथलिक मत इस बुरे परिणाम से बच गया, क्योंकि वह पुरानी जड़ को ही पकड़े रहा, और जब तक वह जड़ कायम रहेगी तब तक वह भी फूलता-फलता रहेगा। पश्चिम में आज वही एक अपने सीमित अर्थ में 'जीवित-धर्म' रह गया है। एक रोमन कैथलिक मित्र ने जेल में मेरे पास कैथलिक-मत पर कई पुस्तकें और धार्मिक पत्र भेज दिये थे, और मैंने उन्हें बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा था। उन्हें पढ़ने पर मुझे मालूम हुआ कि लोगों पर उसका कितना बड़ा प्रभाव है। इस्लाम और प्रचलित हिन्दू-धर्म की तरह ही उससे भी सन्देह और मानसिक द्वन्द्व से राहत मिल जाती है और भावी जीवन के बारे में एक आश्वासन मिल जाता है, जिससे इस जीवन की कसर पूरी हो जाती है।

मगर, मेरी समझ में इस तरह की सुरक्षा चाहना मेरे लिये तो असम्भव है। मैं खुले समुद्र को ही ज्यादा चाहता हूँ, जिसमें चाहे जितनी आंधियां और तूफान हों। मुझे परलोक की या मृत्यु के बाद क्या होता है इसके विषय में कोई दिलचस्पी नहीं है। इस जीवन की समस्याएं ही मेरे दिमाग को व्यस्त करने के लिये काफी मालूम

होती हैं। मुझे तो चीनियों की परम्परा से चली आई जीवन-दृष्टि जो कि मूल में नैतिक है लेकिन फिर भी अधार्मिकता या नास्तिकता का रंग लिये हुए है, पसन्द आती है, हालांकि जिस तरह वह व्यवहार में लाई जा रही है वह मुझे पसन्द नहीं है। मुझे तो 'ताओ' यानी जिस मार्ग पर चलना चाहिये और जीवन की जो पद्धति होनी चाहिये, उसमें रुचि है। मैं चाहता हूँ कि जीवन को समझा जाय, उसको त्यागा नहीं, बल्कि उसको अंगीकार किया जाय, उसके अनुसार चला जाय और उसको उन्नत बनाया जाय। मगर आम धार्मिक दृष्टिकोण इस लोक में नाता नहीं रखता। मुझे यह स्पष्ट विचार का शत्रु मालूम होता है, क्योंकि वह केवल कुछ स्थिर और न बदलने वाले, मतों और सिद्धान्तों को बिना चूं-चपड़ स्वीकार कर लेने पर ही नहीं, बल्कि भावुकता और मनोवेग पर भी आधारित है। मैं जिन्हें आध्यात्मिकता और आत्मा-सम्बन्धी बातें समझता हूँ उनसे वह बहुत दूर है, और वह जान-बूझकर या अनजान में इस डर से कि शायद वास्तविकता पूर्व-निश्चित विचारों से मेल न खाय, वास्तविकता से भी आंखे बन्द कर लेता है। वह संकीर्ण है और अपने से भिन्न रायों या विचारों को सहन नहीं करता। वह स्वार्थ-परता और अहंकार से पूर्ण है और अक्सर स्वार्थी, अवसर-वादी लोगों को अपने से अनुचित फायदा उठाने देता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि धर्मभीरु व्यक्ति अक्सर ऊंचे-से-ऊंचे नैतिक और आध्यात्मिक कोटि के लोग नहीं हुए हैं, या अभी भी नहीं हैं। लेकिन इसका यह अर्थ अवश्य है कि यदि नैतिकता और आध्यात्मिकता को दूसरे लोक के पैमाने से न नाप कर इसी लोक के पैमाने से नापना हो तो धार्मिक दृष्टिकोण अवश्य ही राष्ट्रों की नैतिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहायता नहीं देता, बल्कि अड़चन तक डालता है। आम तौर पर, धर्म, ईश्वर या परमतत्व की अ-सामाजिक या व्यक्तिगत खोज का विषय बन जाता है, और धर्मभीरु व्यक्ति समाज की भलाई की अपेक्षा अपनी मुक्ति की अधिक चिन्ता करने लगता है। रहस्यवादी अपने अहंकार से छुटकारा पाने की कोशिश करता है और इस कोशिश में अक्सर अहंकार की ही बीमारी उसके पीछे लग जाती है। नैतिक पैमानों का सम्बन्ध समाज की आवश्यकताओं से नहीं रहता, बल्कि पाप के अत्यन्त गूढ़ आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर वे आधारित रहते हैं, और संगठित धर्म तो हमेशा स्थापित स्वार्थ ही बन जाता है, और इस तरह लाजिमी तौर पर वह परिवर्तन और प्रगति के लिये एक विरोधी (प्रतिगामी) शक्ति होता है।

यह सुप्रसिद्ध है कि शुरू के दिनों में ईसाई धर्म ने गुलाम लोगों को अपना सामाजिक दर्जा उठाने में सहायता नहीं दी थी। ये गुलाम ही यूरप के मध्यकालीन युग में, आर्थिक परिस्थितियों के कारण भू-स्वामियों के कीत-दास बन गए। धर्म का रुख दो सौ वर्ष पहले तक (१७२७ तक) क्या रहा था, यह अमेरिका के दक्षिणी उपनिवेशों के दास-स्वामियों को लिखे हुए बिशप आफ लन्दन के एक पत्र से ज्ञात हो सकता है।

बिशप ने लिखा था कि ईसाई-धर्म और बाइबिल को मान लेने से नागरिक सम्पत्ति या नागरिक सम्बन्धों से उत्पन्न हुए कर्त्तव्यों में तनिक भी परिवर्तन नहीं होता। बल्कि इन मामलों में 'व्यक्ति' उसी 'अवस्था' में रहते हैं

जिस अवस्था में वह पहले थे। ईसाई-धर्म जो मुक्ति देता है वह मुक्ति 'पाप' और 'शैतान के बन्धन से' और मनुष्यों के 'काम' 'विचार' और तीव्र 'वासना' के बन्धन से है। मगर उनकी बाहरी हालत, बपतिस्मा-'ईसाई-धर्म की दीक्षा'-दिये जाने और ईसाई बनाने से पहले, जैसी गुलामी या आज़ादी की थी, उसमें वह किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं करता'।

आज कोई भी संगठित धर्म इतने साफ़ ढंग से अपने विचार प्रकट न करेगा लेकिन सम्पत्ति और मौजूदा समाज-व्यवस्था की ओर उसका रुख खास कर यही होगा।

यह सभी जानते हैं कि शब्द तो अर्थ-बोध कराने के बहुत ही अपूर्ण साधन हैं और उनके कई तरह से अर्थ लगाये जाते हैं। किसी भी भाषा में 'धर्म' शब्द को (या दूसरी भाषाओं के इसी अर्थवाले शब्दों का) जितने भिन्न-भिन्न अर्थ भिन्न-भिन्न लोग लगाते हैं उतना शायद ही किसी दूसरे शब्द का अर्थ लगाया जाता हो। 'धर्म' शब्द को पढ़ने या सुनने से शायद किन्हीं भी दो मनुष्यों के मन में एक ही से विचार या कल्पनाएँ पैदा नहीं होंगी। इन विचारों या कल्पनाओं में कर्म-काण्डों और रस्म-रिवाजों के, धर्म-ग्रन्थों के, मनुष्यों के एक समुदाय-विशेष के, कुछ निश्चित सिद्धान्तों के और नीति-नियमों, श्रद्धा, भक्ति, भय, घृणा, दया, बलिदान, तपस्या, उपवास, भोज, प्रार्थना, पुराने इतिहास, शादी, ग़मी, परलोक, दंगों और सिर फुटौवल, इत्यादि अनेक बातों के विचार और भाव शामिल हैं। इन असंख्य प्रकार की कल्पनाओं और अर्थों के कारण दिमाग में जबरदस्त गड़बड़ी तो पैदा हो ही जायगी, लेकिन सदा एक तेज भावुकता भी उमड़ पड़ेगी जिससे अलिप्त और अनासक्तरूप से विचार करना असम्भव हो जायेगा। जब 'धर्म' शब्द का ठीक और निश्चित अर्थ (अगर कभी था तो) बिल्कुल नहीं रहा है, और अकसर भिन्न भिन्न अर्थों में उसका प्रयोग होता है तब तो वह केवल गड़बड़ी ही उत्पन्न करता है और उससे वाद-विवाद और तर्क का कभी अन्त ही नहीं हो सकता। बहुत अधिक अच्छा यह हो कि इस शब्द का प्रयोग बिलकुल बन्द कर दिया जाय और उसके स्थान पर ज्यादा सीमित अर्थ वाले शब्द प्रयोग किये जायँ, ईश्वर-विज्ञान, दर्शन-विज्ञान, आचार-शास्त्र, नीति-शास्त्र, आत्मवाद, आध्यात्मिक-शास्त्र, कर्त्तव्य, लोकाचार इत्यादि। यों तो ये शब्द भी काफी अस्पष्ट हैं लेकिन ये 'धर्म' की अपेक्षा बहुत परिमित अर्थ रखते हैं। इससे बड़ा लाभ होगा, क्योंकि अभी तक इन शब्दों के साथ उतनी भावुकता नहीं जुड़ पाई है जितनी कि 'धर्म' के साथ जुड़ चुकी है।

तो 'धर्म' (इस शब्द से स्पष्ट हानि होने पर भी इसी का प्रयोग कर रहा हूँ) चीज क्या है? शायद वह है व्यक्ति की आन्तरिक उन्नति, एक विशेष दिशा में, जो अच्छी समझी जाती है, उसकी चेतना का विकास। वह दिशा कौन सी होनी चाहिये यह भी एक बहस की बात ही होगी। लेकिन जहां तक मैं समझता हूँ धर्म इसी भीतरी परिवर्तन पर जोर देता है, और बाहरी परिवर्तन को इस भीतरी विकास का ही एक अंग या रूप मात्र मानता है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि इस आन्तरिक उन्नति का बाहरी दशा पर बड़ा जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। मगर इसके साथ ही यह भी सत्य है कि बाहरी हालत का आन्तरिक प्रकृति पर भी भारी प्रभाव पड़ता है।

दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और प्रतिक्रिया भी होती रहती है। यह सब जानते हैं कि पश्चिम के आधुनिक औद्योगिक देशों में आन्तरिक विकास की अपेक्षा बाहरी विकास बहुत अधिक हुआ है, लेकिन इससे यह परिणाम नहीं निकलता, जैसा कि पूर्वीय देशों के कई लोग शायद समझते हैं कि चूंकि हम कल-कारखानों के उद्योग में पीछे हैं और बाहरी विकास धीमा रहा है, इसलिए हमारा आन्तरिक विकास उनसे अधिक हो गया है। यह एक भ्रम है जिससे हम अपने को तसल्ली दे लेते हैं और अपनी हीनता की भावना को दबाने की कोशिश करते हैं। यह हो सकता है कि कुछ व्यक्ति अपनी परिस्थितियों और हालतों से ऊपर उठ सकें। लेकिन बड़े बड़े दलों और राष्ट्रों के लिए तो आन्तरिक विकास हो सकने से पहिले किसी अंश तक बाहरी विकास का होना आवश्यक है। जो मनुष्य आर्थिक परिस्थितियों का शिकार है, और जो जीवन-संघर्ष के बन्धनों और बाधाओं से घिरा हुआ है, वह शायद ही किसी ऊँची कोटि की आत्म-चेतना प्राप्त कर सके। जो वर्ग पद-दलित और शोषित होता है वह आन्तरिक रूप से कभी प्रगति नहीं कर सकता। जो राष्ट्र राजनैतिक और आर्थिक रूप से पराधीन है और बन्धनों में पड़ा परिस्थितियों से मजबूर और शोषित हो रहा है वह कभी आन्तरिक उन्नति में सफल नहीं हो सकता। इस तरह आन्तरिक उन्नति के लिए भी बाहरी आजादी और अनुकूल परिस्थिति की आवश्यकता होती है। इस बाहरी आजादी को पाने और परिस्थिति ऐसी बनाने के लिए, कि जिससे आन्तरिक प्रगति की सब शिकायतें दूर हो जायँ, यह आवश्यक है कि साधन ऐसे मिलें जिनसे असली उद्देश्य ही न मिल जायँ। मैं समझता हूँ कि जब गांधी जी कहते हैं कि उद्देश्य से साधन अधिक महत्वपूर्ण हैं तो उसका भाव कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। मगर साधन ऐसे अवश्य होने चाहिए जो उस उद्देश्य तक पहुँचा दें, नहीं तो सारा प्रयत्न व्यर्थ होगा, और जिसके फलस्वरूप शायद भीतरी और बाहरी दोनों दृष्टि से और अधिक पतन हो जाय।

गांधी जी ने कहीं लिखा है—"कोई भी आदमी धर्म के बिना जीवित नहीं रह सकता। कुछ ऐसे लोग हैं जो अपनी बुद्धि के घमण्ड में कहते हैं कि हमें धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। मगर यह ऐसी बात हुई कि कोई आदमी सांस तो लेता है लेकिन कहता हो कि मेरे नाक नहीं है"। एक दूसरी जगह कहते हैं—"सत्य के प्रति मेरी तपस्या ने मुझे राजनीति के मैदान में ला खींचा है। और मैं बिना किसी हिचकिचाहट के, लेकिन पूरी नम्रता के साथ, कह सकता हूँ, कि वे लोग जो यह कहते हैं 'धर्म' का 'राजनीति' से कोई नाता नहीं है, यह समझते ही नहीं कि 'धर्म' का क्या अर्थ है"। यदि वह यों कहते कि वे लोग जो जीवन और राजनीति में से 'धर्म' को निकाल डालना चाहते हैं, 'धर्म' शब्द का मेरे आशय से बहुत भिन्न कोई दूसरा ही आशय समझते हैं, तो शायद यह अधिक सही होता। यह स्पष्ट है कि गांधी जी 'धर्म' शब्द को उसके भाष्यकारों से भिन्न अर्थ में शायद और किसी अर्थ की अपेक्षा नैतिक अर्थ में अधिक ले रहे हैं। एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में इस प्रकार प्रयोग करने से एक दूसरे को समझना और भी कठिन हो जाता है।

धर्म की एक बहुत ही आधुनिक परिभाषा, जिससे कि धर्म-भीरु व्यक्ति सहमत न होंगे, प्रोफेसर जान डेवी

ने की है। उनकी राय में धर्म "वह चीज़ है जो लोक-जीवन के खंड-खंड और परिवर्तनशील दृष्यों को समझने की शुद्ध दृष्टि देता है"। या फिर "जो प्रवृत्ति व्यक्तिगत हानि होने की आशंका होने पर भी, और बाधाओं के विरोध में भी, किसी आदर्श लक्ष्य को पाने के लिये जारी रक्खी जाती है, और जिसके पीछे यह विश्वास हो कि वह सामान्य और स्थायी उपयोगिता वाली है वही स्वरूप में धार्मिक है"। अगर धर्म यही चीज़ है, तब तो निश्चय ही उस पर किसी को भी कुछ विरोध नहीं हो सकता।

रोमां-रोलां ने भी धर्म का ऐसा अर्थ निकाला है जिससे शायद संगठित धर्म के कट्टर लोग भयभीत हो जायँगे। अपने 'रामकृष्ण परमहंस' के जीवन चरित्र में वह लिखते हैं—

……बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो सभी तरह के धार्मिक विश्वासों से दूर हैं, या उनका ख्याल है कि वे दूर हैं, लेकिन वास्तव में उनमे एक अतिबौद्धिक चेतना व्याप्त रहती है, जिसे वे समाजवाद, साम्यवाद, मानवहितवाद, राष्ट्रवाद या बुद्धिवाद भी कहते हैं। विचार का लक्ष्य क्या है, इसकी अपेक्षा विचार किस कोटि का है, यह देख कर हम निर्णय कर सकते हैं कि वह धर्म-प्रसू है या नहीं। अगर वह विचार हर तरह की कठिनाई सह कर एक निष्ठ लगन और हर तरह के बलिदान की तैयारी के साथ, सत्य की खोज की तरफ निर्भयतापूर्वक ले जाता है, तो मैं उसे धर्म ही कहूँगा, क्यों कि धर्म के अन्दर यह विश्वास शामिल है कि मानवीय पुरुषार्थ का ध्येय मौजूदा समाज के जीवन से ऊँचा, बल्कि सारे मानव समाज के जीवन से भी ऊँचा है। नास्तिकता भी, जब वह सर्वांशतः सच्ची बलवती प्रकृतियों से निकलती है तो वह भी धार्मिक आत्मा की महान् सेना के प्रयाण में शामिल हो जाती है।

मैं नहीं कह सकता कि मैं रोमां रोलां की इन शब्दों को पूरा करता ही हूँ लेकिन इन शर्तों पर तो महान् सेना का एक तुच्छ सैनिक बनने को मैं तैयार हूँ।

स्वतन्त्रता की घोषणा
(आल इंडिया रेडियो से)

ये हैं जवाहर !!

एकहरा किन्तु भरा हुआ बदन, गौर वर्ण, उन्नत ललाट और चेहरे पर एक अपूर्व—हँसता हुआ-सा तेज। आकृति से स्पष्ट काश्मीरी या योरोपियन।

एक !

* * * *

स्वभाव फुर्तीला किन्तु थोड़ा सहसा-कर्मी; मिलनसारी के साथ ही साथ झुंझला पड़ने की आदत। तब तक किसी की बात न मानेंगे जब तक कोई उनसे भी अधिक झुंझला कर वह बात उन्हें मनवा न दे। जब हँसते हैं तो बिल्कुल बच्चों की तरह और जी खोल कर।

दो !!

* * * *

वेश-भूषा तीन प्रकार की। सफ़ेद खादी का कुर्ता, धोती, सदरी और गांधी-कैप; चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी और गांधी-कैप; चूड़ीदार पायजामा, कुर्ता, सदरी और गांधी-कैप। जब विदेश में जाते हैं तो सूट और हैट पहिन लेते हैं।

तीन !!!

* * * *

कट्टर देश-भक्त, भारत-विरोधी बात से चिढ़, जीवन के प्रत्येक पहलू में मनोविज्ञान का पुट, नियंत्रण के पुजारी और निश्चित समय पर निश्चित कार्य। ज़रा सी भी देर असह्य। देश-द्रोहियों की सूरत से भी नफ़रत। जो सोचेंगे वही करेंगे। व्यर्थ की बात सुनते ही झुंझला पड़ेंगे। तर्क में गांधीजी से नहीं चली बाक़ी सब को दबा लिया सदैव।

चार !

* * * *

पत्थर से कठोर और पुष्प से भी सुकोमल। क्रोध की मूर्ति किन्तु करुणा के अवतार। धनी-कुल में उत्पन्न होकर भी निर्धन से निर्धन और दलित से दलित की वास्तविक दशा समझने वाले। मानवता के पुजारी और दान-

वता के लिए महान उग्र। रहस्यमय किन्तु स्पष्टवादी। उच्च श्रेणी के अभिमानी किन्तु देश और पीड़ितों के लिए अपमान सहने को प्रस्तुत। विचारों में सदा संघर्ष और अंतरद्वन्द्व, किन्तु उन्हें प्रकट करने में बिल्कुल स्पष्ट।

पांच !!

* * * *

सम्प्रदायवाद के कट्टर-शत्रु किन्तु समाजवाद के समर्थक; अपनी मौलिकता के लिए सुप्रसिद्ध किन्तु बहु-मत के आगे नत-मस्तक। युद्ध में अथक परिश्रम करने वाले किन्तु साथ ही साथ रचनात्मक कार्य में भी कुशल। कठोर शासक किन्तु प्रजातंत्रवाद के पुजारी।

छः !!!

* * * *

दो बहिनें और भांजियां। अपनी एक मात्र पुत्री, उनके पति तथा दो छोटे छोटे दौहित्र। यही है उनका छोटा-सा परिवार। राजनीतिक और देश-संबंधी कार्यों से जब अवकाश मिलता है तो छोटे छोटे दौहित्रों से खेल ले हैं—कभी कंधे पर चढ़ा कर खिलाते हैं, और कभी एक को सवार बना कर स्वयं घोड़ा बन जाते हैं। इतने महान व्यक्ति का यही है छोटा-सा पारिवारिक जीवन।

सात !

* * * *

लेखक हैं और कविताओं से प्रेम करते हैं। अंग्रेजी-साहित्याकाश के चमकते हुए नक्षत्र हैं। दो महान ग्रन्थों के प्रणेता हैं। उनकी लेखनी में ओज है और है विचारों का अन्तर्द्वन्द्व। मैडम चांग काई शेक ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि जब उनका राजनैतिक कार्य समाप्त हो जायगा तब वे एक साहित्यिक की भांति जीवित रहेंगे।

आठ !!

* * * *

उनसे बात करना क्या उनके दर्शन मात्र से हृदय प्रसन्न हो जाता है। वे कभी कभी भूल से जाते हैं कि उन पर इतना बड़ा गुरुतर उत्तरदायित्व है। उस समय वे बच्चों से भी अधिक सरल मालूम पड़ने लगते हैं। उनकी मुसकुराहट से बरबस उनकी ओर प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित हो जाता है।

नौ !!!

* * * *

आने वाले युग उनके त्याग की कहानियां अपने बच्चों को सुना कर उन्हें देश-प्रेम के लिए बावला बनाते रहेंगे। देश के इतिहास में उनका नाम तब तक स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा जब तक इस पावन भारत-भूमि पर एक भी बच्चा जीवित रहेगा।

दस !

पंडित नेहरू और महात्मा ईसा

(अपनी पुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को आज से लगभग १६ वर्ष पूर्व पं० जवाहर लाल नेहरू ने बहुत से महत्वपूर्ण विषयों को लेकर पत्र लिखे थे। ईसा तथा ईसाई-मत का कितना सुन्दर इतिहास उन्होंने इस छोटे से लेख में चित्रित किया है।)

ईसा मसीह की कथा बाइबिल के न्यू-टेस्टामेंट के पिछले भाग में मिलती है। वे नैजरेथ में पैदा हुए थे और उन्होंने गैलली में प्रचार कार्य किया। तीस वर्ष की अवस्था के बाद वे जेरूसलम गये। इसके थोड़े ही समय बाद पांटियस पाइलैट नामक रोमन गवर्नर के सम्मुख उनका मुकद्दमा पेश किया गया और उन्हें प्राण-दण्ड दिया गया। यह बात साफ नहीं है कि अपना प्रचार-कार्य आरम्भ करने के पूर्व ईसा ने क्या किया और कहां रहे? संपूर्ण मध्य एशिया, काश्मीर, लद्दाख और तिब्बत में तथा उसके उत्तरीय प्रदेशों में भी, लोगों की यह धारणा है कि ईसा ने भ्रमण किया था। कुछ लोगों का यह कहना है कि वे भारतवर्ष में भी आये थे। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई भी बात निश्चितरूप से नहीं कही जा सकती है। बहुत से वे विद्वान, जिन्होंने ईसा की जीवनी का अनुशीलन किया है, इस बात पर विश्वास नहीं करते कि ईसा कभी भारत या मध्य एशिया में आये थे। लेकिन यह बात असंभव नहीं जान पड़ती कि उन्होंने ऐसा किया था। उन दिनों भारतवर्ष के बड़े बड़े विश्वविद्यालय और विशेष कर के तक्षशिला, दूर दूर देशों के उत्साही छात्रों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। सम्भव है ईसा भी ज्ञान की खोज में यहां आये हों। बहुत सी बातों में ईसा के उपदेश गौतम बुद्ध के उपदेशों से इतने मिलते-जुलते हैं कि यह बहुत सम्भव मालूम होता है कि वे बुद्ध के उपदेशों से पूरी तौर से परिचित थे। बौद्ध मत का ज्ञान दूसरे देश के लोगों को भी अच्छी तरह था, इससे भारत में आये बिना भी वे उससे अच्छी तरह परिचित हो सकते थे। यह स्पष्ट है कि मतमतांतरों के कारण ही समय-समय पर संघर्ष और घातक लड़ाइयां हुई हैं, लेकिन विश्व-धर्मों के आरम्भ का निरीक्षण और उसकी तुलना करना बड़ा मनोरंजक है। उनके दृष्टिकोणों और सिद्धान्तों में इतनी समानता है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि लोग छोटी-छोटी और अनावश्यक बातों को कारण बना कर क्यों लड़ते हैं? प्रारम्भिक उपदेशों में दूसरी बातें जोड़ दी जाती हैं जिससे उनका असली रूप जाता है। प्रवर्तक का स्थान संकीर्ण हृदय और

असहिष्णु कट्टर-पंथी ले लेते हैं। रोमनों की यह चिर परिचित नीति थी कि जनता के कल्याण के लिए अथवा अधिकतर उन्हें चूसने के अभिप्राय से अंध-विश्वासों को प्रोत्साहन दिया जाय। यदि जनता अंधविश्वासिनी है तो उसे दबाये रखना अधिक सरल होता है। ऐसी दशा में कार्ल मार्क्स का यह लिखना आश्चर्यजनक नहीं है कि 'धर्म जनता की अफ़ीम है'।

ईसा यहूदी थे। यहूदी लोग अजीब और विचित्ररूप से धुन के पक्के होते हैं। डेविड और सुलेमान के युग के अल्पकालिक वैभव के बाद उनके बुरे दिन आगये। इस वैभव की भी मात्रा थोड़ी थी, लेकिन उनकी कल्पना ने उसे इस हद तक बढ़ाया कि अन्त में वह भूतकालीन सुवर्ण युग होगया जो कि एक निश्चित समय पर फिर लौट आने वाला था, उनकी धारणा थी कि तब यहूदी फिर महा शक्तिशाली हो जायेंगे। वे रोमन-साम्राज्य और दूसरे देशों में फैल गये, लेकिन उनके इस दृढ़ विश्वास ने उनकी एकता को नष्ट नहीं होने दिया कि उनके वैभव के दिन आने वाले हैं और एक मसीहा उन्हें वह दिन दिखायेगा। यह इतिहास की एक आश्चर्यमयी समस्या है कि कैसे गृह-हीन, आश्रय-हीन, अत्यन्त पीड़ित और संतप्त एवं बहुधा मृत्यु के अतिथि बनाये जाने वाले यहूदियों ने दो हजार वर्षों से अधिक समय तक अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रक्खा; और आज दिन भी उनमें एकता है तथा वे धनवान और शक्ति संपन्न हैं।

यहूदी एक मसीहा की प्रतीक्षा कर रहे थे, और कदाचित ईसा से उन्हें इसी प्रकार की आशा थी। लेकिन उन्हें जल्द ही निराश होना पड़ा, क्योंकि ईसा एक विचित्र भाषा में प्रचलित प्रणाली और सामाजिक संघटन के विरुद्ध विद्रोह की बातें कहते थे। विशेष कर, धनिकों और उन ढोंगियों के, जो कुछ विशेष विधानों और पूजन-क्रियायों ही को धर्म समझने लगते हैं, विरोधी थे। धन ऐश्वर्य देने की प्रतीक्षा करने के स्थान में वह उलटे, स्वर्ग के अव्यक्त और काल्पनिक राज्य की लालसा में, लोगों से उनके पास जो कुछ था उसे भी त्याग देने को कहते थे। वे कथा-कहानियों द्वारा उपदेश देते थे। यह स्पष्ट है कि वे जन्म से ही ऐसे विद्रोही थे, जो प्रचलित परिस्थिति को देख नहीं सकते थे और उसे बदलने पर उतारू थे परन्तु यह तो वह बात न थी जिसे सुनने को यहूदी लालायित थे। इसलिए अधिकतर यहूदी उनके विरुद्ध होगये और उन लोगों ने उन्हें रोमन शासकों के हाथ पकड़वा दिया।

रोमन लोग धर्म के मामलों में असहिष्णु न थे। वे साम्राज्य में सभी तरह के मतमतान्तरों को समदृष्टि से देखते थे। यदि कोई आदमी किसी देवता को भला-बुरा कहता था, उसकी निन्दा करता था तो उसे सज़ा न दी जाती थी। जैसा टाइबीरियस नामक सम्राट ने कहा था कि 'यदि देवताओं का अपमान होता है तो उन्हें स्वयं बदला लेना चाहिये'। अतएव जब पांटियस पाइलेट नामक रोमन गवर्नर के सामने ईसा पकड़ कर पेश किये गये तब उसको इस मामले के धार्मिक पहलू से कुछ भी चिन्ता न हुई होगी। ईसा एक राजनीतिक और यहूदियों की दृष्टि में, विद्रोही माने जाते थे। अतः इसी अपराध में उन्हें गैथसमेन नामक स्थान पर दंड मिला

और गालगोथा नामक स्थान पर वे सूली पर चढ़ाये गये। परम वेदना की घड़ी में उनके चुने हुए शिष्य तक उन्हें छोड़ कर भाग खड़े हुए, और यहां तक कह बैठे कि वे उनको जानते तक नहीं। इन शिष्यों ने अपने विश्वासघात से उनकी पीड़ा को असह्य बना दिया, जिससे मरते समय वे विचित्ररूप से हृदय को हिला देने वाले इन शब्दों में चिल्ला उठे 'मेरे भगवन, मेरे भगवन, तूने मुझे क्यों त्याग दिया है?'

ईसा की जब मृत्यु हुई तब वे जवान ही थे। उस समय उनकी आयु तीस साल से कुछ ही अधिक थी। हम गास्पैलों की सुन्दर भाषा में उनकी मृत्यु की कारुणिक कहानी पढ़ते और द्रवित होजाते हैं। पिछली सदियों में ईसाई मत की वृद्धि ने करोड़ों मनुष्यों को ईसा के नाम के प्रति श्रद्धालु बना दिया है, परन्तु उन्होंने उनके उपदेशों का बहुत कम अनुसरण किया है। हमको याद रखना चाहिये कि जब वे सूली पर चढ़ाये गये थे तब पैलेस्टाइन के बाहर बहुत थोड़े आदमी उन्हें जानते थे। रोम के निवासी उनके विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। पांटियस पाइलेट ने भी इस घटना को बहुत ही स्वल्प महत्व दिया होगा। ईसा के निजी अनुयायी और शिष्य इतने भयभीत और सशंकित होगये थे कि उनके साथ अपने सम्बन्ध तक को अस्वीकार करने लगे थे। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद पाल नामक एक व्यक्ति ईसाई होगया। उसने स्वयं ईसा को कभी नहीं देखा था, किन्तु जिन सिद्धान्तों को वह ईसाई-सिद्धान्त समझता था, उनका उसने प्रचार करना शुरू कर दिया। बहुत से लोगों की धारणा है कि जिस ईसाई मत का प्रचार पाल ने किया वह ईसा के उपदेशों से बहुत बातों में भिन्न था। पाल एक योग्य और विद्वान पुरुष था, लेकिन वह ईसा की तरह सामाजिक विद्रोही न था। पाल को सफलता प्राप्त हुई, और ईसाई मत धीरे धीरे फैलने लगा। आरम्भ में तो रोम वालों ने इस मत को कुछ अधिक महत्व नहीं दिया। उनके विचार में ईसाई मत भी यहूदियों का एक सम्प्रदाय मात्र था। लेकिन ईसाई अपने धुन के पक्के और दुराग्रही थे। वे दूसरे मतों का विरोध और रोमन सम्राट की प्रतिमा की पूजा करने से इन्कार करते थे। रोमन इस तरह की मनोवृत्ति और उनके अनुसार, इस प्रकार की संकीर्णता को समझ ही नहीं सकते थे। अतएव वे ईसाइयों को सनकी, झगड़ालू, असभ्य और मानव-प्रगति का विरोधी समझते थे। धार्मिक दृष्टि से वे उनकी उपेक्षा कर जाते, लेकिन सम्राट की प्रतिमा के समादर के विषय में ईसाइयों की आपत्ति तो राजनीतिक विद्रोह थी। यह नियम बना दिया गया कि ऐसे अपराधी को मौत की सजा दी जाय। ईसाई ग्लैडेटोरियल तमाशों की भी कड़ी आलोचना करते थे। इसके बाद ईसाई सताये जाने लगे; उनकी जायदादें जब्त करली जाती थीं और वे शेरों के सामने फेंक दिये जाते थे। किन्तु रोमन-साम्राज्य ईसाइयों को दबाने में असफल रहा। सचमुच ईसाई मत इस संघर्ष में विजयी हुआ, और ईसा के बाद चौथी शताब्दी के आरम्भिक भाग में एक रोमन सम्राट स्वयं ईसाई होगया, और उस समय से ईसाई मत साम्राज्य का राज्य-धर्म माना जाने लगा। इस सम्राट का नाम कानस्टैंटाइन था, उसी कानस्टैंटाइन ने कानस्टैंटिनोपल या कुस्तुनतुनिया नगर बसाया। ज्यों ज्यों ईसाई मत की वृद्धि होती गई त्यों-त्यों ईसा के ईश्वरत्व के सम्बन्ध में झगड़े बढ़ने लगे। गौतम बुद्ध ने ईश्वरत्व का कभी दावा नहीं किया था, उन्हीं को देवता और अवतार के रूप में पूजा होने लगी। इसी तरह ईसा ने कभी ईश्वरत्व का दावा नहीं किया। उनकी पुनरुक्तियों का कि वे ईश्वर के

बेटे और मनुष्य के बेटे थे, यह अनिवार्य अर्थ नहीं है उन्होंने मनुष्योपरि होने का दावा नहीं किया था। लेकिन मनुष्यों को अपने महापुरुषों को देवता बनाना भाता है, यद्यपि उन्हें देवता बनाने के बाद उनका अनुसरण करने में वे उदासीन हो जाते हैं। छः सौ बरस बाद पैग़म्बर मोहम्मद ने एक दूसरे धर्म का प्रवर्तन किया, और सम्भवतः इन उदाहरणों से लाभ उठाते हुए ही उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बार-बार कहा कि वे ईश्वर नहीं किन्तु मनुष्य थे।

इस तरह ईसा के सिद्धान्तों को समझने और जीवन में उन सिद्धान्तों का अनुसरण करने के स्थान में ईसाई ईसा के ईश्वरत्व के स्वरूप और त्रिमूर्ति के सम्बन्ध में बहस करने और झगड़ने लगे। वे एक दूसरे को नास्तिक कहते, एक दूसरे को सताते और एक दूसरे का गला काटते थे। ये घरेलू झगड़े तब हुये जब ईसाई-संघ की शक्ति बढ़ रही थी। अब से कुछ दिन पहिले तक पश्चिमी देशों में ये झगड़े विभिन्न ईसाई संप्रदायों में चलते रहे।

ईसाई मत राजनीतिक दृष्टि से इस समय सब से अधिक प्रभावशाली मत है, क्योंकि उसी के अनुयायी योरोप में प्रभावशाली हैं। लेकिन जब हम विद्रोही ईसा की अहिंसा का और सामाजिक संघटन के विरुद्ध प्रचार करते हुये विद्रोही ईसा की बात सोचते और उनके वर्तमान के तुमुल-रव-कारी अनुयायियों से और इन अनुयायियों के साम्राज्य-वाद, शस्त्रास्त्रों, संग्रामों तथा धन की उपासना से उनकी तुलना करने लगते हैं तब आश्चर्य होने लगता है। पहाड़ी के ऊपर वाला उनका उपदेश (Sermon on the Mount) और आधुनिक योरप तथा अमेरिका का ईसाई मत दोनों में कितनी अद्भुत असामनता है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि बहुत से लोग सोचने लगें कि आज दिन पश्चिम के कथित ईसाई को देखते हुए बापू (महात्मा गांधी) ईसा के उपदेशों के कहीं अधिक समीप हैं।

स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री यूरोप में

भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू सन् १९४८ के अक्टूबर मास के प्रारंभ में फिर यूरोप गये। वे ब्रिटिश कामन-वेल्थ के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किये गये थे। लंदन पहुँचने के पहिले ही उनके स्वागत की तैय्यारियां वहां होने लगी थीं। इस बार वे एक स्वतंत्र देश के प्रधान मंत्री की हैसियत से आये हुये थे। उन्होंने प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में प्रमुख भाग लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सभी राजनीतिज्ञों तथा मिनिस्टरों से भी भेंट की। ब्रिटेन के प्रधान मंत्री क्लीमेंट एटली से भी वहां कई बार उनकी भेंट हुई। काश्मीर का प्रश्न निपटाने के संबंध में भी उनकी, पाकिस्तान के प्रधान-मंत्री श्री लियाकत अली खां तथा क्लीमेंट एटली में परस्पर काफी बहस हुई, किन्तु पाकिस्तान के प्रधान मंत्री की अदूरदर्शिता से समस्या हल न हो सकी।

प्रधान मंत्रियों की कांन्फ्रेंस में भी पंडित नेहरू के भाषणों का काफ़ी प्रभाव पड़ा, तथा उन्हीं के प्रस्ताव पर 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' से 'ब्रिटिश' शब्द हटा देने का निर्णय किया गया।

अन्य देशों के भी बहुत से प्रमुख राजनीतिज्ञों से भी उनसे बात-चीत हुई तथा उनका सम्पर्क बढ़ा। इंग्लैंड के सम्राट ने उन्हें अपने यहां भोजन के लिए आमंत्रित किया।

वे लंदन में एक दिन ठहर कर अपने प्रिय मित्र तथा भारत के अन्तिम वाइसराय लार्ड लुई माउन्टबेटन के साथ दो दिन के लिए विश्राम करने के वास्ते हैम्पशायर में स्थित उनके मकान ब्राडलैंड्स में चले गये।

किंग्सवे हाल में उन्हें इन्डिया लीग की ओर से मान पत्र भेंट किया गया।

हैम्पशायर के वे पुराने और ऐतिहासिक गिरजाघर को देखने गये थे। उनके साथ उनकी बहिन तथा मास्को की राजदूत श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भी थीं। जिस जीपकार में दोनों भाई-बहिन बैठे थे उसे स्वयं लेडी माउन्टवेटन चला रही थीं। इस गिरजे में सब से अधिक दिलचस्प भारत के अन्तिम वाइसराय का वह झंडा है जो कि लार्ड माउन्टवेटन भारत से अपने साथ गिरजे को भेंट करने के लिए लाये थे।

इण्डिया लीग द्वारा आयोजित समारोह के संबंध में बोलते हुए किंग्सवे हाल में पंडित नेहरू ने कहा था कि 'मैं भारत और ब्रिटिश की जनता में निकटतम सहयोग चाहता हूँ'। भारत में विगत वर्षों में जो कुछ भी हुआ है वह किसी व्यक्ति विशेष का कार्य नहीं है। यह तो अगणित मानवों के परिश्रम और त्याग का फल है। यदि आप लोग फिर भी इसे एक व्यक्ति ही में देखना चाहते हैं तो वह केवल महात्मा गांधी हो सकते हैं। मैं समझता हूं कि अन्य लोगों से विलग करके उनकी सराहना करना अनुचित है। मैं ईमानदारी से कह रहा हूँ कि जो कुछ भी मैंने किया है वह अत्यन्त ही अल्प है। मुझे वह समय याद है जब मैं पिछली बार यहां आया था। हम बहुत बड़ी आपत्ति से गुजरे हैं। मैं नहीं जानता कि यदि महात्मा गांधी न होते तो क्या मैं जीवित रह सकता। हम केवल वैयक्तिक दृष्टि से नहीं प्रत्युत एक राष्ट्र के रूप में भी जीवित रहे। हम यह सोच रहे थे कि हमारा कार्य मिट्टी में मिल रहा है। किन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि महात्मा जी ने नींव बड़ी गहरी रक्खी थी। अपने प्राणोत्सर्ग से उन्होंने उस नींव को और भी सुदृढ़ कर लिया। विगत वर्षों में बहुत सी घटनायें भारत में हुई हैं किन्तु उनमें सर्वोत्कृष्ट भारत और ब्रिटेन के संबंध से संबंधित है। मैं यह नहीं कह सकता कि जो कुछ हुआ है वह ईमानदारी से ही किया गया है। मैं समझता हूँ कि गलतियां की गईं और उनके परिणाम भी भयानक हुए। इस समय मैं ब्रिटिश सरकार और जनता को भारत के साथ उसके व्योहार के लिए बधाई देना चाहता हूँ। विगत संघर्ष और कटुता की भावना कितनी शीघ्रता से समाप्त हो चुकी है, यह महत्व की बात है। मैं समझता हूँ कि इसके दो कारण हैं। एक तो गांधीजी की स्वातंत्र्य-संग्राम की प्रणाली और दूसरे इस संकट-काल में ब्रिटिश सरकार और जनता का व्यवहार। लोग भारत और ब्रिटेन के संबंधों के संबंध में बात करते हैं। वे वैधानिक और अन्य संबंधों के विषय में भी सोचते हैं। मैं नहीं जानता कि इसका क्या स्वरूप होगा किन्तु इस समय मैं केवल यही कह सकता हूँ कि सब से पहिले मैं भारतीय और ब्रिटिश जनता में निकटतम सहयोग चाहूँगा। इसका चाहे जो भी रूप हो किन्तु सहयोग का आधार बंधुत्व की भावना और संघर्षात्मक भावनाओं का अभाव है'।

अंत में पंडित नेहरू ने कहा कि 'सत्ता हस्तांतर के समय उपयुक्त व्यक्ति के निर्वाचन से ब्रिटिश सरकार की बुद्धिमानी का पता चलता है। इस अवधि में भारत में लार्ड माउँटबेटन की उपस्थित भारत और ब्रिटेन दोनों ही के लिए सौभाग्य की बात थी। श्रीमती माउँटबेटन का कार्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं'।

इसी सभा में अध्यक्ष पद से लार्ड पैथिक लारेंस तथा पार्लियामेंट के सदस्य सर स्टेनली रीड तथा प्रोफ़ेसर

हैराल्ड लास्की ने पण्डित नेहरू को श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। लार्ड पैथिक लारेंस ने पण्डित नेहरू की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि 'ईर्षा तो वे जानते ही नहीं, कटुता से उनका सम्बन्ध ही नहीं रहा, असफलता तथा पराजय उन्हें कभी निराश नहीं करती और सफलता तथा विजय से वे कभी अनावश्यक रूप में उत्फुल्ल नहीं हुये'।

प्रोफेसर लास्की ने नेहरू जी की प्रशंसा करते हुये कहा कि 'दीन-हीन जनता की दशा में सुधार करने के लिये जो जागरुकता मैंने पण्डित नेहरू में देखी वह अपने जीवन भर में मैं केवल दो-तीन व्यक्तियों में ही पा सका हूँ'।

शुक्रवार, १५ अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्र के वैदेशिक मंत्री जार्ज मार्शल से शाम को मिले।

१४ अक्तूबर को पण्डित नेहरू अर्ल माउँटबेटन की ओर से आयोजित प्रीति भोज के प्रधान सम्मानित अतिथि हुए। भोजन के उपरांत उन्होंने ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री क्लीमेंट एटली से उनके १० डाउनिंग स्ट्रीट स्थित सरकारी-भवन में भेंट वार्ता की। नेहरूजी की इस भेंट और वार्ता क्रम से यहां के राजनैतिक प्रेक्षकों ने यह अनुभव किया है कि इस अधिवेशन का सब से बड़ा मसला भारत का राष्ट्र परिवार से सम्बन्ध विषयक ही सिद्ध होगा।

पण्डित नेहरू जेकब अहसीन की वस्तु-कला शाला में भी गये जहां अपनी मूर्ति के संसर्ग में उनके समक्ष बैठे।

१६ अक्तूबर ही को पण्डित नेहरू तीसरे पहर पेरिस पहुँचे। वहां पर वे संसार के प्रमुख राजनीतिज्ञ श्री मार्शल, शूमैन तथा विशिन्स्की आदि से मिले।

ब्रिटेन के प्रमुख समाजवादी नेता श्री एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड ने अपने लेख में लिखा है कि "पण्डित नेहरू दो संसारों के बीच स्थित हैं। पूर्व तथा पश्चिम के बीच चलने वाले इस संघर्ष में पण्डित नेहरू एशिया की एक ऐसी महान शक्ति की वैदेशिक नीति के कर्णधार हैं जिसका भौतिक तथा नैतिक प्रभाव शांति तथा युद्ध दोनों में से जिसे चाहे, उसके पक्ष में फैसला करा सकता है। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने में ब्रिटिश जनता के सहयोग की उनके द्वारा स्वीकृति से यह आशा हो उठी है कि सम्भवतयः ब्रिटिश राष्ट्र परिवार के साथ वह किसी न किसी प्रकार के मैत्रीपूर्ण बंधन में अवश्य रहेंगे। परन्तु साथ ही उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत, रूस अथवा अमेरिका किसी के भी गुट में शामिल नहीं होगा। पर शांतिपूर्वक तटस्थ रहना न तो सम्भव ही है और न नैतिक दृष्टि से वांछनीय ही। भारत की प्रौढ़ता तथा पण्डित नेहरू की कसौटी यही है कि वे अपने इस तटस्थता के दृष्टिकोण को रचनात्मक प्रयोग द्वारा प्रयुक्त करें। क्या पण्डित नेहरू जीवित भारतीयों में सब से महान होने तथा गांधी जी के उत्तराधिकारी होने के नाते अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा द्वारा मध्यस्थ का कार्य नहीं कर सकते और क्या इस प्रकार के करोड़ों मूक मानवों की शांति की आवाज को बुलंद नहीं कर सकते? आज संसार के प्रथम श्रेणी के नेताओं में

कोई ऐसा नहीं है जिसके व्यक्तित्व का इतना मैत्री पूर्ण प्रभाव पड़ सके। यदी 'किंकर्तव्यविमूढ़' राष्ट्रों से संपर्क स्थापित करने के मार्ग को वे ढूंढ़ निकाल सकें तो इसका नेतृत्व करने का साहस तो पण्डित नेहरू में मौजूद है। भारत के, जिसमें क्षुधा तथा अत्याधिक जनसंख्या की समस्यायें पेश हैं, अतिरिक्त अन्य किसी देश को भी इस प्रकार के पागलपन को रोकने का अधिकार प्राप्त नहीं है। शस्त्र-अस्त्र के लिये जो धन खर्च किया जाता है उससे पृथ्वी के भागों को उपजाऊ बनाया जा सकता है। भारत का प्रधान मंत्री ही वह व्यक्ति है जो हमको इस दिशा की ओर जा सकता है" ।

१६ अक्तूबर को फ्रांस के अध्यक्ष श्री विन्सेंट अरियोल से पण्डित नेहरू की भेंट हुई। उनसे बड़ी देर तक सद्भावनापूर्ण वार्तालाप होता रहा।

आस्ट्रेलिया के लंदन स्थित संवाददाता ने लिखा है कि 'सम्मेलन में उपनिवेशों के तमाम प्रतिनिधि पं० नेहरू द्वारा प्रत्येक प्रश्न के समाधान की पहुँच से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं। पंडित नेहरू को भारत की युद्ध-संबंधी शीघ्र आ पड़ने वाली महत्ता के संबंध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं है'।

'न्यू यार्क टाइम्स' के लंदन स्थित संवाददाता ने लिखा है कि 'सम्मेलन में प्रधान-मंत्री पंडित नेहरू महत्वपूर्ण और सर्वप्रिय व्यक्तित्व सिद्ध हुए हैं। अपनी ओर से उन्होंने मित्रता और सहयोगपूर्ण ही व्यवहार किया है। अब ऐसी योजना बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत एक स्वतंत्र प्रजातंत्र भी बना रहे और साथ में ब्रिटिश राष्ट्र परिवार की सदस्यता से पृथक न हो'।

'न्यू यार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' के संवाददाता ने लिखा है कि 'यदि भारत ने राष्ट्र-परिवार से संबंध-विच्छेद कर लिया तो ब्रिटिश राष्ट्र का पूरा खाका ही बदल जायगा'।

१५ अक्टूबर की रात्रि को ही अमेरिका के जार्ज मार्शल से पंडित नेहरू की लगभग २॥ घंटे तक बातचीत हुई। दोनों राजनीतिज्ञों की यह पहिली भेंट थी। पंडित नेहरू के साथ में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और भारत सरकार के वैदेशिक विभाग के जेनरेल सेक्रेट्री सर गिरजा शंकर बाजपेयी भी उपस्थित थे। ऐसा समझा जाता है कि दोनों राजनीतिज्ञों के बीच की वार्ता का विषय अन्तर्राष्ट्रीय विषयों का सार्वभौमिक रूप ही था। वार्ता का ढंग सद्भावनापूर्ण रहा। मार्शल से बात करने के बाद पं० नेहरू ने श्री हेक्टर मैकनील से भेंट की।

पंडित नेहरू के प्रति जो सम्मान और स्वागत पेरिस में प्रदर्शित किया गया वह अभूतपूर्व है। उसका पूरा विवरण इस प्रकार है:-

चुस्त नीले वर्ण का सूट, गहरे काले रंग की फेल्ट हैट तथा बटन-होल में नारंगी रंग के सुमन से सुशोभित पंडित नेहरू अपने निजी वायुयान से गम्भीरतापूर्वक उतरे। अपनी बहिन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित तथा दो भतीजियों—तारा तथा चन्द्रलेखा—से गले मिलने के पश्चात् उन्होंने संयुक्तराष्ट्र की बैठक में सम्मिलित होने के

लिए आये हुये भारतीय प्रतिनिधि मंडल से हाथ मिलाया। इस अवसर पर नावानगर के जामसाहब, सर रामास्वामी मुदालियर, प्रसिद्ध उद्योगपति श्री जे० आर० डी० टाटा, श्री आर० पी० पिल्लई तथा प्रतिनिधि-मंडल के प्रधान-मंत्री श्री सी० एस० झा भी उपस्थित थे। पं० नेहरू के दर्शनों के लिए रंग-बिरंगे कपड़ों से सुसज्जित हजारों की संख्या में जनता बेताबी से प्रतीक्षा कर रही थी। कन्ट्रोल टावर से मिनट-मिनट पर घोषणा हो रही थी कि वह वायु-यान आने ही वाला है जो विश्व के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति को ला रहा है। धीरे-धीरे वायु-यान उतरा और पंडित जी भी सर गिरजाशंकर बाजपेयी के साथ उतरे। जनता में उत्साह की लहर दौड़ गई और लोग भारत के सब से कठिनतम कार्य करने वाले महान पुरुष को सब से पहिले देखने के लिए आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगे।

पंडित नेहरू को रक्षित हाथों के घेरे के द्वारा कार तक पहुँचाया गया। जैसे ही उनकी कार आगे बढ़ी, भीड़ में खड़े हुये एक सैनिक से एक व्यक्ति ने पूछा 'कौन था ?'

सैनिक ने उत्तर दिया 'विश्व के महान व्यक्ति-मोशिये ली पंडित जवाहरलाल नेहरू'।

१७ अक्तूबर को पंडित नेहरू ने यहां के रूसी राजदूतावास में रूस के उप-वैदेशिक सचिव श्री विशिंस्की से भेंट की। उनके साथ उनकी बहिन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, जो पेरिस में होने वाले मित्र राष्ट्र-संघ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल की नेता भी हैं, तथा सर गिरजाशंकर बाजपेयी भी थे। श्री विशिंस्की ने पंडित नेहरू से बड़ी सद्भावना के साथ काफी देर तक बातचीत की।

पेरिस में अमेरिका के सेक्रेट्री आफ स्टेट श्री जार्ज मार्शल से लगभग २॥ घंटे से अधिक अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर बातचीत हुई थी। इसी प्रकार १६ अक्टूबर को फ्रांस के प्रेसीडेंट मो० विंसेंट ओरियल से भी उनकी लगभग एक घंटे तक बड़े ही सौहार्द्रपूर्ण ढंग से बातचीत हो चुकी थी। ये बातचीत अनेक विषयों से संबंधित रही है। उनमें न केवल दोनों देशों के खास हित की बातों पर ही, वरन् सारे संसार को सामने रख कर भी विचार विनिमय हुआ था।

पंडित नेहरू के पेरिस के इस छोटे से प्रथम सरकारी आगमन ने यहां राजनीतिक क्षेत्र में बहुत बड़ी आशायें उत्पन्न कर दी हैं। संसार के राजनीतिज्ञों पर नेहरू के व्यक्तित्व की गहरी छाप पड़ी है। पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधान और वैदेशिक मंत्री के रूप में योरोप में ऐसे समय गये हैं जब कि भारत ने अपनी स्वाधीनता ऐसे ऐतिहासिक क्षण में प्राप्त की है जब कि उसकी वैदेशिक नीति को विश्व परिस्थिति के प्रकाश में संतुलित करने और बैठाने की महान आवश्यकता है।

१७ अक्टूबर को पंडित नेहरू ने अमेरिका के मित्र राष्ट्र-संघ को आये हुए शिष्ट मंडल के सदस्य सेनेटर वालरेव आस्टिन के साथ कापलन होटल में भोजन किया।

यहां पर पंडित नेहरू संसार के प्रमुख राजनीतिज्ञों व नेताओं से व्यक्तिगत संपर्क बढ़ाने में व्यस्त रहे। उनके बातचीत व्यक्तिगत रहती थी और सभी ओर से प्रयत्न रहा कि उसे प्रकट न होने दिया जाय।

उसी दिन शाम को उन्होंने चीनी राजदूतावास में चीनी वैदेशिक मंत्री के साथ भोजन किया।

दूसरे दिन उन्होंने डा० जे० एच० भाभा, सर शांतिस्वरूप भटनागर, डा० कृष्णन तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों से भेंट की।

यहां से १७ अक्टूबर को ही पंडित नेहरू फिर लंदन चले गये।

१६ अक्टूबर को सैकड़ों ही भारतीय छात्रों ने इंडिया हाउस में अपने प्रिय प्रधान-मंत्री पंडित नेहरू का शानदार स्वागत किया। फूल के हारों द्वारा उन्होंने अपने नेता के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की।

पंडित नेहरू ने भाषण देते हुए कहा कि 'हम प्रगति पर हैं, और हमारी प्रगति, हमें विश्वास है कि हमें इससे भी अच्छी अवस्था तक ले जायगी। भारत में अभी आगे अनेक कार्य करने को अवशेष हैं। हम में से जिन्होंने गत वर्ष भर उत्तरदायित्व का भार सहन किया है उन्हें कठिन समय से भारत को निकालने के लिए भी आगे बढ़ना पड़ेगा। इसमें संदेह नहीं कि हमने बहुत गलतियां भी की हैं किन्तु हमारा आत्म-विश्वास हमारा साथ देता रहा है। हमको आत्म-निरीक्षक होना चाहिए आत्म-तुष्ट नहीं। यह बात भी ठीक है कि हमको अपनी प्रगति बांधनी नहीं है—प्रयत्न करने के उत्साह को कम नहीं करना है। भारत आज भी अपने ऊपर लादे हुए अनुशासन को भूला नहीं है—किन्तु उस अनुशासन का कोई मूल्य नहीं जो किसी देश पर बलपूर्वक लादा जाता है—उसे तो अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्य रखने तथा कार्य की सुचारुता प्रदान करने के लिए स्वयं पर अनुशासन करने की आदत डालनी चाहिए। इसी में हमारे देश की भलाई है। वह समय आ रहा है जब अपने राष्ट्र के कार्यों का भार हमको आज के बालकों के कंधों पर रखना पड़ेगा। आप लोगों को आगे आकर नवीन भारत के निर्माण में योग देना चाहिए। यद्यपि यह कार्य कष्ट-प्रद है किन्तु साथ में स्तुत्य भी है। वास्तव में मनुष्य छोटे छोटे कार्यों को अधिक से अधिक ढंग से करने के द्वारा ही सोचा जाता है। कार्य की अच्छाई, बुराई या बड़ाई-छोटाई का कुछ मूल्य नहीं—वास्तव में छोटे छोटे कार्यों को अच्छी रीति के द्वारा सुचारुता प्रदान करने में ही व्यक्ति की महत्ता है। इसीलिए कभी यह विचार न करना चाहिए कि जो कार्य आप को सौंपा गया है अधिक महत्व नहीं रखता अतः हमको न करना चाहिए। छोटे से छोटे कार्य को महत्व दो चाहे वह लिफ़ाफे पर टिकट चिपकाने का ही क्यों न हो। वह व्यक्ति जो छोटी छोटी वस्तुओं पर अपनी दृष्टि को टिकने नहीं देता, वह व्यक्ति अपने जीवन को भी मूल्यहीन बना लेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। हमको हिन्दुस्तान में बहुत बड़े कार्य को संचालन देना है, और यह तभी संभव हो सकता है जब हम सब मिल कर एक साथ, अपनी शक्तियों के समुच्चय को जीत लें। मैं यह नहीं कह सकता कि हम सब लोगों के हृदय में एक ही विचार तथा एक ही प्रकार की भावनायें हैं, किन्तु यह तो गलत नहीं है कि हम सब का लक्ष्य

एक ही है। यदि इस लक्ष्य पर ही सब का ध्यान है तब कोई बात नहीं कि हम सब उसकी प्राप्ति के लिए एक साथ एक उत्साह से कार्य न करें। अपने कंधों को एक साथ राष्ट्र की गाड़ी में लगाइये और एक साथ धक्का दीजिये'।

२० अक्टूबर को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री क्लीमेंट एटली के निवास-स्थान, १० डाउनिंग स्ट्रीट में पंडित नेहरू और पाकिस्तानी प्रधान-मंत्री श्री लियाकत अली खां में काश्मीर के मसले के संबंध में बातचीत हुई। श्री एटली मध्यस्थ थे। यद्यपि इस वार्तालाप के संबंध में निश्चितरूप से कुछ नहीं मालूम हुआ है किन्तु कहा जाता है कि क्लीमेंट एटली ने अपना विशेष मनोयोग प्रगट किया है और इस प्रकार अपने राष्ट्रमंडल में इन दोनों को बनाये रखने के उद्देश्य से, उनके बीच बची-खुची समस्याओं को सुलझाने में दिलचस्पी ली है।

२१ अक्टूबर को भारतीय हाई कमिश्नर श्री कृष्ण मेनन द्वारा आयोजित एक स्वागत-सभा में लगभग एक हजार व्यक्तियों के बीच में बोलते हुए पंडित नेहरू ने कहा कि 'मैं नहीं समझता कि विश्व में किसी प्रकार के युद्ध की कोई संभावना है। मुझे आशा है कि अन्त में विश्व को महात्मा गांधी के अहिंसा के मौलिक सिद्धांत को स्वीकार करना ही पड़ेगा। हम गरीबों को, जो राजनीतिक योजना पर कार्य करते हैं समझौता करना होता है। कभी कभी तो हमारे लिये यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि हम क्या करें। भारतीय स्वतंत्रता एक सराहनीय परिवर्तन है। इससे ब्रिटिश और भारतीय जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया है। भारत में अब भी कुछ लोग हैं जो अपने पुराने भावों और कल्पनाओं को नहीं छोड़ना चाहते, उसी प्रकार ब्रिटेन में भी कुछ लोग हैं जो स्वतंत्र सार्वभौम भारत की कल्पना से घृणा करते हैं और कभी कभी तो जो कुछ हो चुका है उसके प्रति अपनी असीम घृणा को भी प्रदर्शित करने से बाज नहीं आते। किन्तु मैं समझता हूँ कि यह क्षणिक व्यवस्था है—क्षणिक इसलिये कि सभी वस्तुयें परिवर्तित होती रहती हैं। गांधी जी ने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि भारत किसी जनता के विरुद्ध नहीं लड़ रहा है। वह एक शासन-प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष से रत है। महात्मा गांधी उन पुरुषों में थे जो अपने पथ से जरा भी विचलित नहीं होते थे। ऐसे व्यक्ति की या तो हत्या कर दी जाती है या उसे पत्थरों से पीटा जाता है। संभवतया यह अच्छा ही था कि महात्मा गांधी की हत्या कर दी गई क्योंकि उनका निधन एक पूर्ण जीवन का पूर्ण विराम था।

२३ अक्टूबर की रात को ही पंडित जवाहरलाल नेहरू कार-द्वारा फिर ब्राड्सलैंड लौट गये। यहां वे लार्ड लुई माउंटबेटन के अतिथि बन कर रविवार को विश्राम करते रहे।

२६ अक्टूबर को पंडित नेहरू फिर लंदन से पेरिस के लिए रवाना हो गये। हवाई अड्डे पर ब्रिटिश उपनिवेश मंत्री श्री नोइल बेकर, लार्ड माउँटबेटन तथा श्री कृष्ण मेनन ने उन्हें विदाई दी। नेहरू जी विदा के समय पूर्ण प्रसन्न दिखलाई पड़ रहे थे। पिछले कार्य-क्रम की थकावट के कोई चिह्न उनके मुख पर न थे।

ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल के प्रधान-मंत्री सम्मेलन में पंडित नेहरू से ब्रिटेन के वैदेशिक मंत्री श्री बेविन की कई बार भेंट हुई। इन भेंटों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के संबंध ही में बातचीत हुई।

२८ अक्टूबर को पेरिस में ब्रिटेन के वैदेशिक मंत्री श्री अर्नेस्ट बेविन से फिर पंडित नेहरु की भेंट हुई। लगभग एक घंटे तक बातचीत होती रही। सर गिरजाशंकर बाजपेयी भी उपस्थित थे।

आज ही भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू की अमेरिका रिपब्लिकन दल के वैदेशिक सलाहकार श्री जान फास्टर से लगभग डेढ़ घंटे तक गुप्त वार्ता हुई। पं० नेहरू के साथ सर गिरजाशंकर बाजपेयी भी थे। ऐसा समझा जा रहा है कि पं० नेहरू की यह मुलाकात अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की जानकारी के संबंध में थी। इस भेंट के कारण पंडित जवाहरलाल नेहरू श्री लियाक़त अली खां के सम्मान में आयोजित भोज में देर से पहुँचे।

पंडित नेहरू के पेरिस में बड़े व्यस्त दिवस व्यतीत हुये। सवेरे नाश्ते के समय से लेकर उनके रात्रि के भोजन तक का समय असाधारण व्यस्तता का भार लिये रहता था। नेहरू से विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का तार टूटने नहीं पाता था तथा भेंट करने वाले उनकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता से इस हद तक प्रभावित होकर लौटते थे कि वे लोग कहते हुये सुने जाते थे कि नेहरू केवल आन्दोलनकारी ही नहीं एक महान पुरुष हैं ? फ्रांस के नेता मो० शुमन उनसे अत्याधिक प्रभावित हुये और डा० जुलियान हुबले ने उनके विषय में यह राय दी कि वे एक चमत्कारी पुरुष हैं जो राजनीति की गुत्थियां सुलझाते हुये गंभीर वैज्ञानिक विषयों पर महत्व के विचार दे सकते हैं। सम्वाददाता से डा० हुवर्ड ने कहा कि 'आपका प्राइम मिनिस्टर अणु-शक्ति का प्रयोग संसार से गरीबी का नाश करने के लिये करना चाहता है'।

पंडित नेहरू का भाषण सुनने के लिये मित्र राष्ट्र-संघ के सदस्य बहुत ही लालायित मालूम पड़ते थे।

एक संवाददाता का कहना था कि 'भारतीय राजनीतिज्ञों ने इन दिनों अतिशय सम्मान पाया है; जब जिस विचार विनिमय में उन्होंने योग दिया, सभी को प्रभावित किया और स्वतंत्र भारत की प्रतिष्ठा की वृद्धि की। सर बी० राव ने अणु-शक्ति नियंत्रण-सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुये जिस मेधा-शक्ति का परिचय दिया है उससे सारा राष्ट्र-संघ इतना प्रभावित हुआ है कि चर्चिल की खुल कर निन्दा होते सुनी गई'।

१ नवम्बर को पंडित नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ के जेनरेल सेक्रेटरी श्री डेविड मोर्से से गुप्त वार्ता की। वार्ता के समय श्रीमती मोर्से भी उपस्थित थीं। श्रीमती मोर्से ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ द्वारा प्रकाशित की गई एशियाई संपर्क सम्मेलन के संबंध में एक पुस्तिका भी पंडित नेहरू को दिखलाई। पंडित नेहरू ने लेटिन अमेरिका के वैदेशिक-मंत्रियों से भी बातचीत की।

पंडित नेहरू ने सुरक्षा-परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री जे० क्रामुलिया तथा यूगोस्लाविया के श्री एलेस देवलर से भी भेंट की।

आज ही सायंकाल फ्रांस स्थित भारतीय राजदूतावास की ओर से पंडित नेहरू तथा भारतीय प्रतिनिधि मंडल को सम्मानार्थ प्रीति भोज दिया गया।

रूस के उप-वैदेशिक मंत्री श्रीविसिंस्की से आज फिर भारत के प्रधान-मंत्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरू की भेंट हुई। रूसी राजदूतावास में उन्हें भोज दिया गया था। पंडित नेहरू के साथ सर गिरजाशंकर बाजपेयी भी थे।

५ नवम्बर को यूनाइटेड नेशन की जेनरल एसेम्बली में उन्हें भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। यह सत्कार, सम्मान और गौरव संसार के केवल विशिष्ट पुरुषों को दिया जाता है। उस समय का विवरण लिखते हुए एक संवाददाता ने लिखा है कि:—

'जेनरल एसेम्बली के मंच के बीचोंबीच सुनहरे और गुलाबी रंग से रंगे हुए पेले-डी-चेलोट के सुन्दर हाल में पंडित जवाहरलाल नेहरू सुनहरी कुर्सी पर बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। चारों ओर से उन पर रोशनी पड़ रही थी। उस प्रभावोत्पादक मौन को भंग करते हुए असेम्बली के अध्यक्ष डा० एवाट उठ कर खड़े हुए। उन्होंने कहा 'आज जेनरल एसेम्बली में बोलने के लिए भारत के प्रधान-मंत्री से प्रार्थना करते हुये मुझे अपार हर्ष हो रहा है'।

जोरों की करतल-ध्वनि हुई।

पंडित नेहरू धीरे से उठ कर सभापति की मेज के पास आये और सुन्दरवाणी में बोलना प्रारंभ कर दिया।

यद्यपि यूनाइटेड नेशन के सदस्यों का ध्यान अमेरिका के अध्यक्ष के निर्वाचन की ओर लगा हुआ था किन्तु फिर पंडित नेहरू का भाषण सुनने के लिए सभी सदस्य उपस्थित थे।

पंडित नेहरू ने यूनाइटेड नेशन के सदस्यों को सावधान करते हुए कहा कि 'आप लोग यदि सोचते हों कि यूरोप की समस्या हल करने से ही आप की बाधायें दूर हो जायँगी तो यह बात गलत है। आज दुनियां के मामलों को सुलझाने के संबंध में एशिया का नाम लिया जाने लगा है। आगे चल कर एशिया और भी महान हो जायगा। हम लोगों ने यह निर्णय कर लिया था कि हम न तो बुराइयों के सामने नत मस्तक होंगे और न उससे निकलने वाले फल से भयभीत होंगे। इसी मार्ग पर चल कर हमने भारत की स्वतंत्रता प्राप्त की है। भारत ने जिन सिद्धांतों पर चल कर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है आज संसार के राष्ट्र उन्हीं सिद्धांतों पर चल कर अपने कष्टों से मुक्त हो सकते हैं।

पंडित नेहरू ने कहा कि 'मुझे आज जो इस महान एसेम्बली में बोलने का अवसर दिया गया है उसके लिये मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ। इस सभा में दुनियां के सारे राष्ट्र उपस्थित हैं जो महान हैं, उनके सामने मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को बोलने में कुछ झिझक सी मालूम पड़ती है किन्तु हम लोग, चाहे छोटे हों या बड़े, इसमें संदेह नहीं कि हम जिस बात के लिये यहां एकत्र हुये हैं वह महान है। और इस महान बात की छाया हमको भी महान बनाती है।

हम लोग उलझी तथा कठिन समस्याओं का मुकाबिला कर रहे हैं, और इस अवसर उन समस्याओं के संबंध में, जिनसे हम घिरे हुये हैं कुछ भी कहने का साहस मैं नहीं कर सकता। हमारे उद्देश्य स्पष्ट हैं, किन्तु फिर भी इन उद्देश्यों को सामने देखते हुये भी ऐसे छोटे-छोटे मामलों में पड़ कर मुख्य उद्देश्य से दूर चले जाते हैं। मैं उस देश का हूँ जिसने अहिंसात्मक तथा शांतिमय उपायों से एक लम्बे संघर्ष के बाद अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है। 'घर्ष के लम्बे काल में हमारे महान नेता ने हमको सदा यही सिखाया है कि न तो कभी हम अपने निर्दिष्ट उद्देश्यों को ही भूलें और न उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये गलत मार्ग पर ही चलें। उन्होंने सदा हमको यही सिखलाया हैं कि महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उसके प्राप्त करने का मार्ग भी उतना ही महान होना चाहिये।

आगे चलकर पंडित नेहरू ने कहा 'भारत संयुक्त राष्ट्र-संघ के चार्टर पर अटल है और उसे पूरा करते रहने का प्रयत्न करता रहता है। दो महायुद्धों के बाद संयुक्त राष्ट्र-संघ की इस सभा का निर्माण हुआ है। इन युद्धों से हमने क्या सबक सीखा है? घृणा और हिंसा से कभी शांति नहीं प्राप्त हो सकती। हमारे अंदर घृणा और हिंसा का बोल बाला है और इस सभा-भवन के अंदर अच्छे से अच्छा भाषण इस चीज को दूर नहीं कर सकता जब तक हम और दूसरे उपायों को काम में न लायें। यदि आप लोग घृणा और हिंसा को दूर न कर सकें तो यही नहीं कि भयंकर विनाश के दृश्य देखने पड़ेंगे वरन किसी शक्ति को उद्देश्य की प्राप्ति न होगी। जब तक हम घृणा, ईर्षा द्वेष और भय को दूर न कर देंगे हम कभी इस चेष्टा में सफल नहीं हो सकते'।

पण्डित नेहरू ने कहा 'एशिया का एक भाग अब भी परतंत्र है, और यह आश्चर्य है कि इस युग में भी कोई देश उपनिवेशों पर अधिकार बनाये रखने की चेष्टा करे, तथा इस सिद्धांत पर अड़ा रहे। आप लोग याद रखिये कि एशिया में इस उपनिवेश-प्रथा का घोर विरोध होने जा रहा है। हम स्वयं इस प्रथा के शिकार रहे हैं तथा इसीलिये हम प्रत्येक उपनिवेश की स्वतंत्रता के हामी हैं। हम पड़ोसी उपनिवेशों के साथ इन संघर्षों के प्रति सहानुभति की भावना रखते हैं। जो भी राष्ट्र, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, इन उपनिवेशों की स्वतंत्रता में रोड़े अटकाता है वह विश्व-शांति का शत्रु है'।

मुझे विश्वास है कि यह सभा हमारी समस्याओं को सुलझायेगी। मुझे भविष्य का डर नहीं है। यद्यपि हिन्दुस्तान फौजी दृष्टिकोण से अभी नगण्य है किन्तु संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति की फौजी ताकत, जहाजी बेड़ा या अणु-बम मुझे नहीं डरा सकते। इस फौजी शक्ति से भी एक बड़ी शक्ति है—और वह हमारे महान नेता का दिखलाया हुआ मार्ग। हमने उस पर ही चल कर एक बहुत बड़े देश और साम्राज्य का मुकाबिला किया है। हमने शांतिमय उपायों से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है। मैं नहीं कह सकता कि इन उपायों को सारे संसार पर लागू किया जा सकता है किन्तु इन सिद्धांतों को तो लागू किया ही जा सकता है।

अंत में पंडित नेहरू ने कहा कि 'यदि किसी ने हम पर चढ़ाई की तो हम सभी उपायों से आक्रमणकारी का मुकाबिला करेंगे'?

३ नवम्बर को ही पंडित नेहरू आर्ली के हवाई अड्डे से उड़ कर काहिरा पहुँच गये।

पंडित नेहरू की हस्ती

—श्री शिवनारायण टण्डन

जिस तरह फूल में खुशबू है, सूरज में रोशनी है, आग में तपिश है और ज़िन्दगी में जवानी की मस्ती है उसी तरह–वैसे ही–हमारे हिन्दुस्तान में जवाहरलाल नेहरू की हस्ती है। उनकी जयजयकार से देश का कोना-कोना गूँज रहा है। जिधर वे निकल जाते हैं शाहों और सुलतानों को शर्माने वाला उनका स्वागत होता है। भारत की जनता उनके दर्शनों के लिए पागल और व्याकुल रहती है। लाखों देशवासियों से घिरे हुए जुलूसों में, सम्मान और अभिनन्दन क़बूल करते हुए, हाथ जोड़े जब वे नमस्कार करते हैं, उनके पीले और कठोर मुखड़े पर मुसकान की हलकी सी रेखायें दौड़ जाती हैं। कितनी आशा और कितने अरमान छिपे हैं उनकी मुसकुराहट में। जनता के बल को बढ़ते देख वे फूले नहीं समाते, पर दूसरे ही क्षण जब वे लोगों की भीड़ को एक दूसरे पर गिरते, धक्कमधक्का करते और चीर-चीर कर आगे बढ़ते देखते हैं तब वे कुछ-कुछ उदास से होजाते हैं और सोचने लगते हैं कि हमारे देशवासी कितने बिखरे हुए, कितने असंगठित हैं। जवाहरलाल जी चाहते हैं लोग संगठन के असली मंत्र को समझें। अपने जीवन के हर पहलू से अस्तव्यस्तता निकाल दें। नेताओं के स्वागत में सभी कोई फौजी क़ायदे से राह के दायें-बायें खड़े होजाया करें और पीछे वाले घिस्से मार-मार कर आगे आजाने की हरक़त से बाज़ रहें। जलसों में, मेले-तमाशों में, घरों में, सभा-सोसायटियों में और कांग्रेस के इजलासों में सभी जगह लोग संगठन का सबक़ सीख रहे हैं। क्योंकि वे सभी जगहें क़ौमी जीवन की शिक्षा देने और पाने के पब्लिक मदरसे हैं।

जवाहरलाल नेहरू के नाम में एक कशिश है—एक तरह का जादू है जो सर पर चढ़ कर जवाहरलाल नेहरू की जय बुलवा लेता है। देश के नौजवान उनसे प्रेम करते हैं प्रेमी की तरह—सगे भाई की तरह। बड़े-बूढ़े उन्हें आशीष पर आशीष देते हैं 'जवाहरलाल सदा जिन्दाबाद'। मां बहिनें उन्हें देख कर सराहती हैं और मनौती मनाती हैं कि ऐसे अनमोल लाल हमारी कोख से भी जन्में। जनता का उनमें गहरा विश्वास है, वे जनता के प्रिय हैं—प्रियतम हैं। ग़ुलामी के अन्धेरे में, बहुधा जब हमें कुछ नहीं सूझता, जवाहरलाल 'घट में परगट' होकर हमें रोशनी देते हैं। उनकी ज़िन्दादिली हमारी पस्तहस्ती को दूर करती रहती है, उनकी झलक हमारे लिए नवीन भारत का संदेश लाती है। हमारी सोई हुई जवानी को उन्होंने अपनी ठोकरों से जगाया है।

आज उनकी तस्वीर ग़रीबों की झोंपड़ियों से लेकर अमीरों के महलों तक में शोभा पा रही है। आज

उनके त्याग और बलिदान की गाथा घर-घर गाई जा रही है। वे किस्से की तरह, एक राजा और रानी की कहानी की तरह, लोगों के जुबान पर बस रहे हैं। देश के उठते हुए युवक उनकी अनोखी मिसाल से साहस और बल पाते हैं।

उनकी विद्वता और काबलियत का लोहा अच्छे-अच्छे मानते हैं। उन्होंने दुनियां की तवारीखों को पढ़ा है। संसार भर की उथल-पुथल का बारीकी से निरीक्षण किया है। साथ ही वे देश विदेशों में घूमे भी खूब हैं। इसलिए उनका ज्ञान अब उधाऊ ज्ञान नहीं है, बल्कि अनुभव का सुन्दर संयोग मिलने से 'सोने में सुगन्ध' आगई है। जवाहरलाल की तारीफ करते हुए गांधी जी ने लिखा है:—'देश की खुशकिस्मती है जो जवाहरलाल सरीखा सिपाही हमारी आजादी की लड़ाई का सेनापति है। वह मोती-सा उजला है, शीशे-सा आबदार है, गंगा-सा पवित्र है। देश का झंडा उसके हाथों में सदा ऊँचा रहेगा—ऐसा मेरा विश्वास है'।

कुछ लोग कहते हैं कि जवाहर लाल में गुस्सा है—उनका पारा जल्दी से ऊपर चढ़ जाता है। बात कुछ कुछ सही है। हमारी तुच्छ समझ से उसका यथेष्ट कारण भी है। जवाहरलाल जी का क़दम किसी मान, मर्यादा, यश की लालसा से देश-सेवा के मैदान में नहीं उठा है। उनके मन में एक आग है, जो अखंडरूप से जलती रहती है; एक व्यथा है, जो हाहाकार मचाये रहती है; एक दर्द है जो पल पल पर टीस मारा करता है। और इसी आग, इसी व्यथा, इसी टीस ने देश-सेवा के कंटीले, कंकरीले पथ में सफर करने को उन्हें विवश किया है। घर-बार, धन-दौलत सभी से मोह-ममता छोड़ जो उन्होंने मुल्क की खिदमत में मन लगाया है, वह एक ही लालसा से, एक ही उद्देश्य से, एक ही नीयत से कि पराधीनता की बेड़ियों में कसी हुई, फंसी हुई, जननी जन्म-भूमि को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करना है। वे छोटी-छोटी सी बातों में नहीं उलझा करते, जवाहरलाल चाहते हैं कि सारी छोटी बातों को भूल कर हम तुम सब, एक बार, एक मन, एक प्राण से आजादी के लिये तन कर खड़े हो जायँ और जब हम ऐसा नहीं करते और फिजूल की नन्हीं-नन्हीं बातों में उलझने लगते हैं तब वे दुखी भी होते हैं और रुष्ट भी।

जवाहरलाल जी के कुछेक विरोधी उन्हें खूंख्वार कहते हैं—उन पर डिक्टेटरी करने का झूठा इलजाम लगाते हैं। पर दोनों ही बातें असत्य हैं। जवाहरलाल जी तो फासिस्ट लोगों से चिढ़ते हैं और डिक्टेटरी के उसूलों से भी कोसों दूर रहते हैं। उनसे जो लोग मिलते हैं, उनके समीप जो लोग सौभाग्य से उठते बैठते हैं, वे बतलाते हैं कि जवाहरलाल जी बड़े हँसमुख और बड़े विनोदी स्वभाव के हैं। पब्लिक प्लेटफ़ार्मों पर जहां नेता अपने असली सार्वजनिकरूप को खोल कर रखना चाहते हैं जवाहरलाल जी धीमी घरेलू आवाज में, आपसी बातचीत के ढङ्ग पर, बड़ी बड़ी बातों और समस्याओं को जनता के सामने रखते हैं। वे अपने व्याख्यानों में आदमियों के दिल से बात करते हैं, भावनाओं की उड़ान नहीं भरते। उनकी बातें सुनकर हम आनन्द, शांति और तसल्ली हासिल करते हैं, न कि नीरसता, अशांति और खूंख्वारी। वे प्रजातंत्रवाद यानी जनतंत्रवाद के घोर क़ायल हैं। बहुमत के आगे अपनी व्यक्तिगत राय को झुका देने का, नेताओं के बीच, उन्हें सब से बड़ा फ़ख़ हासिल है।

वे अपनी निजी राय को सदा जोरों के साथ समझाने का पूरा प्रयास करते हैं, अपनी जाती राय को कांग्रेस के नेताओं के सामने निहायत खुले दिल से रखते हैं; पर कांग्रेस का, देश का, बहुमत जो कहता हैं उसके आगे वे हमेशा सिर झुका लेते हैं। अपनी ग़लती को साफ़ साफ़ शब्दों में तसलीम कर लेना जवाहरलाल जी का अपना एक खास गुण है। वे एक जाने-बूझे साम्यवादी हैं, जमींदारी प्रथा को नष्ट कर देने के हामी हैं, देश के उद्योग-धंधों के राष्ट्रीयकरण यानी बड़े बड़े कल-कारखानों को सरकारी सम्पत्ति क़रार देने के सब से बड़े हिमायती हैं। पर यह सब होते हुये भी लगातार दो वर्षों तक वे गांधी जी के मार्ग-दर्शन में चलने वाली कांग्रेस की सहायता करते रहे हैं, और इस खूबी से करते रहे हैं कि उनके विरोधी भी चकित और मोहित हो गये। कांग्रेस का ज्वाइंट-फ्रंट यानी सम्मिलित मोर्चा किसी भी हरकत से कहीं पर से भी कमज़ोर न होने पाया वरन उसे सभी समुदायों और वर्गों का सहयोग मिलता रहा है। दूसरी जीती-जागती मिसाल कांग्रेस के कौंसिली चुनाव की है। जवाहरलाल जी न तो सरकारी कौंसिलों में कांग्रेसियों के जाने के पक्षपाती थे और न मंत्रि-पद ग्रहण करने के समर्थक थे, पर कांग्रेस ने जब दोनों ही बातें उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध तय कर दीं तब वे कांग्रेस के हुक्म को सर पर रख कर चुनाव के कार्य-क्षेत्र में जी-जान से कूद पड़े और आज मंत्रियों पर होने वाले आक्षेपों और इलज़ामों को ढाल बन कर स्वतः अपने ऊपर ले रहे हैं। उनका कथन है, और सही कथन है कि कांग्रेस मंत्रि-मंडल के लिये हम सभी कांग्रेस वाले ज़िम्मेदार हैं। हमारी नज़रों में तो जवाहरलाल प्रजातंत्रवाद के मुजस्सिम अवतार हैं। हां, वे कांग्रेस-विरोधी और रंगे हुये कांग्रेसमैनों के जानी दुश्मन हैं। जो लोग हाथों में आरती लिये भगवती स्वाधीनता के मंदिर की ओर विघ्न-बाधाओं को ठुकराते बढ़ते चले जा रहे हैं उनके मार्ग के रोड़ों से जवाहरलाल क्यों कर मिल्लत कर सकते हैं? ऐसे ही ज़लील लोग जवाहरलाल से नाराज़ हैं। जवाहरलाल जी का कहना है कि ऐसे ग़द्दारों को देश से व कांग्रेस से झाड़ू मार कर निकाल देना चाहिये और जितनी ही जल्दी उनसे पिंड छूटे उतना ही हमारी राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के लिये हितकर है।

जवाहरलाल जी ने लड़कपन का ज़िक्र करते हुये अपनी 'आत्म-कथा' में लिखा है कि 'मेरा लालन-पालन ठेठ अंग्रेज़ी ढंग से हुआ है। मेरा बचपन एक अंग्रेज़ मेम की गोद में बीता है। लड़कपन में, पिता जी के अंग्रेज़ दोस्तों से मिलने-जुलने का सदा साबक़ा पड़ता रहा है, अतएव मेरे अन्दर अंग्रेज़ियत की बू-बास बहुत रही है। मेरे पढ़ाने वाले शिक्षक भी बहुत करके अंग्रेज़ ही थे, जिससे वैसे ही संस्कार मेरे मस्तिष्क पर पड़ते गये। कहने का आशय यह है कि मेरे जीवन का प्रारम्भिक और काफ़ी लम्बा समय अंग्रेज़ी सभ्यता और चाल ढाल के बीच ही में बीता है।

ऐसे जवाहरलाल आज भाषा, भाव और भेष में पूरी तरह भारतीय बन गये हैं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है जिसका यह आशय है कि कुछ हो खून का असर नहीं जाता। हालांकि जवाहरलाल अंग्रेज़ी भाषा के धुरंधर पंडित हैं, पर उनके भाषण अक्सर सीधी-साधी हिन्दुस्तानी भाषा ही में होते हैं। देश के करोड़ों दुखियों और

दरिद्रों की ग़रीबी कैसे दूर हो, भारत के मजदूरों और किसानों के भयंकर शोषण का किस तरह अंत हो, ये विचार उनके मन में—अन्तस्तल में—गूंजते और घूमते रहते हैं। ढीला-ढाला खद्दर का मोटा कुर्ता, खादी की नुकीली टोपी, जवाहर-कट की वह मशहूर फ़तुही और कमर पर खादी की धुरंधर धोती जवाहरलाल के गोरे गुलाबी शरीर की शोभा बढ़ाती रहती है। जिनके राजकुमारों से रूप पर बेशक़ीमती कोट, पेंट, नेकटाई, कालर और हैट सुशोभित रहा करते थे, जिनके मुखड़े पर अंग्रेज़ी-कट के सुनहरे बाल लहलहाया करते थे और जिनके कोमल पैरों में सौ-सौ दो-दो सौ रुपये की क़ीमत के बूट विलायत तक से आते थे, वे आज किसानों और मजदूरों के समान फकीरी बाना धारण किये मामूली चप्पल पहिने दर-दर अलख जगाते हैं। देश के लोग इनसे सबक़ लें। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी इनके शीशे में अपना चेहरा देखें।

जवाहरलाल जी पंडित मोतीलाल नेहरू के एक मात्र पुत्र हैं—उन मोतीलाल जी की संतान जो अपने महान त्याग और अपूर्व बलिदान के कारण देश के स्वाधीनता-प्राप्ति के इतिहास में अजर-अमर हो चुके हैं। जवाहरलाल जी ऐसे ही अज़ीमुश्शान पिता की यादगार के रूप में हमारे बीच में विराजमान हैं। भारतीय महिला समाज की मुकुट-मणि कमला भाभी भी निर्दय नियति के कठोर नियति के कारण हमारे बीच से उठा ली गई हैं। उनके प्रतिनिधि भी अब जवाहरलाल ही हैं। जवाहरलाल जब हमारे सामने खड़े होते हैं तब एक साथ कितनी सोई हुई स्मृतियां जाग उठती हैं। मोतीलाल जी, कमला जी, आनंद-भवन की सुखद स्मृतियां सभी तो इस एक ही शख़्श की शख़्शियत में गुथी हुई हैं। समूचे नेहरू खानदान की क़ुरबानियां देश में अपना रंग दिखा चुकी हैं। जवाहरलाल इन क़ुरबानियों के प्रतिनिधि हैं और प्रतीक हैं।

आज राष्ट्र की प्रगति और गति-विधि पर जवाहरलाल की छाप लग चुकी है, जो दिन-पर-दिन गहरी होती जाती है। इनकी सच्चाई ने, इनकी नेकनीयती ने और इनकी ग़ुरबापरवरी ने भारत की कोटि-कोटि जनता को इनकी तरफ खींच लिया है।

जवाहरलाल जी का घरेलू जीवन बड़ा ही सुखद रहा है। पिता का प्यार, माता का दुलार, बहिनों का स्नेह और देवता के वरदान के समान मिली हुई पत्नी का प्रेम जवाहरलाल के जीवन में रस घोलता रहा है। जवाहरलाल को घर का, सगे संबंधियों का जो प्रेम प्राप्त हुआ है, ईश्वर करे वह सब को प्राप्त हो। जवाहरलाल मोतीलाल जी के घर के इकलौते बेटे ठहरे, बड़े लाड़ से पले और बड़े प्यार से बड़े हुए। पढ़-लिख कर होश संभालते ही वे देश-सेवा की ओर मुड़ पड़े। घर वाले घबड़ाये, पर सनेह और प्रेम के नाते कुछ कह न सके और जवाहरलाल आगे बढ़ गये। देश-सेवा के मार्ग पर क़दम बढ़ा देने के बाद पैर पीछे डालने की गुंजाइश ही कहां है? जिनका दिल दीन-दुखियों के क्लेशों से पसीज उठता है, उनके लिए फिर ऐश-आराम और सुख-चैन कहां? भगवान बुद्ध के जीवन की कथा की ऐसे अवसर पर बरबस याद आजाती है। वे राजकुमार थे। एक महाराजा के लड़के थे। राज-महलों में पले थे। सुख से जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनके पिता सदा इस प्रयत्न में रहते थे कि दुनियां के

दुख की छाया मेरे पुत्र के हृदय पर न पड़ने पाये। पर एक दिन जब राजकुमार रथ पर बैठ नगर घूमने जा रहे थे तो वे देखते क्या हैं कि सड़कों पर चलने वाले लोग फटेहाल और उदास हैं, उनकी आंखों में क्लेश है, वेदना है और कष्टों की कहानी है। आगे बढ़े तो देखते हैं कि चन्द भिखमंगे रिरिया-रिरिया कर पैसे-टके की भीख मांग रहे हैं। उनके पेट धंसे हुए हैं—गाल पिचके हुए हैं—चेहरे पीले पड़ गये हैं, मगर लोग उनकी ओर बगैर देखे बढ़े चले जा रहे हैं, उन्हें फ़िक्र ही नहीं कि ये जियेंगे या मरेंगे। और आगे बढ़े तो बीमार, घाव वालों के ज़ख्म बहते दिखलाई दिये। जीवन के घुड़दौड़ की परेशानी—चेहरों की मुर्दनी, अति की गरीबी और गजब की बीमारी देखते देखते राजकुमार उदास होगये। चंद क़दम आगे बढ़े होंगे कि उन्हें एक दुखिया माता दिखाई दी, जिसके गोद में मरे हुए बच्चे की लाश थी। पैसा न होने से इलाज न हो पाया था और काल ने अकाल ही में नन्हीं-सी दम तोड़ दी थी। माता का रुदन कंकड़ों और पत्थरों को भी रुला रहा था। राजकुमार का मन रो दिया। उससे आगे मरघट की ओर जाती हुई लाशें दिखलाई दीं। एक बूढ़े पिता के इकलौते नौजवान बेटे की दर्दनाक मौत हुई थी। उसकी लाश पर कम्पन भी नहीं था। उसकी टिकटी को उठाने के लिए चार पड़ोसी भी नहीं थे, पिता था, मां थी और था पास का एक पड़ोसी। यमराज ने अपना मृत्यु-दंड उस युवक पर चला कर उनके छोटे से संध्याकाल के निकट पहुँचे हुए जीवन को बरबाद और वंशहीन कर दिया था। इन दुखद दृश्यों को देखते देखते राजकुमार का मन राजसी सुखों से खिन्न गया। एक रात्रि में जब उनकी प्रियतमा यशोधरा रानी मीठी नींद में मस्त पड़ी थी, अंकशायी बालक मीठी मीठी मुसकान लेरहा था, उन्होंने राजपाट और परिवार से नेह-नाता तोड़ जगत के कल्याण के लिए महलों से निकट जंगल का रास्ता पकड़ा। वे तप करने चले गये। सुख की, आनंद की, आत्म-संतोष की और संसार भर की कल्याण-कामना में वे शेष जीवन मे डूबे रहे। राजकुमार गौतम से वे भगवान बुद्ध बने और संसार के पीड़ित यात्रियों ने उनकी प्रेम भरी बातों से अपने कितने ज़ख्मों और सन्तापों को धो-धोकर सुखाया।

जवाहरलाल जी को उन राजकुमार के समान ही त्यागी और तपस्वी यदि हम मान लें तो विवाद उठने की क्या कोई गुंजाइश है। उनका जीवन लोक-सेवा के लिए अर्पित हो चुका है, जो शायद सब से बड़ी तपस्या है।

तुम्हारी ६०वीं वर्षगांठ पर

मेरा निवेदन

त्याग के सागर में स्नान करके मन, क्रम, वचन से शुद्ध होने वाले तपस्वी जवाहरलाल ! आज विश्व तुम्हें तुम्हारी ६० वीं वर्षगांठ पर हार्दिक बधाई देता है ।

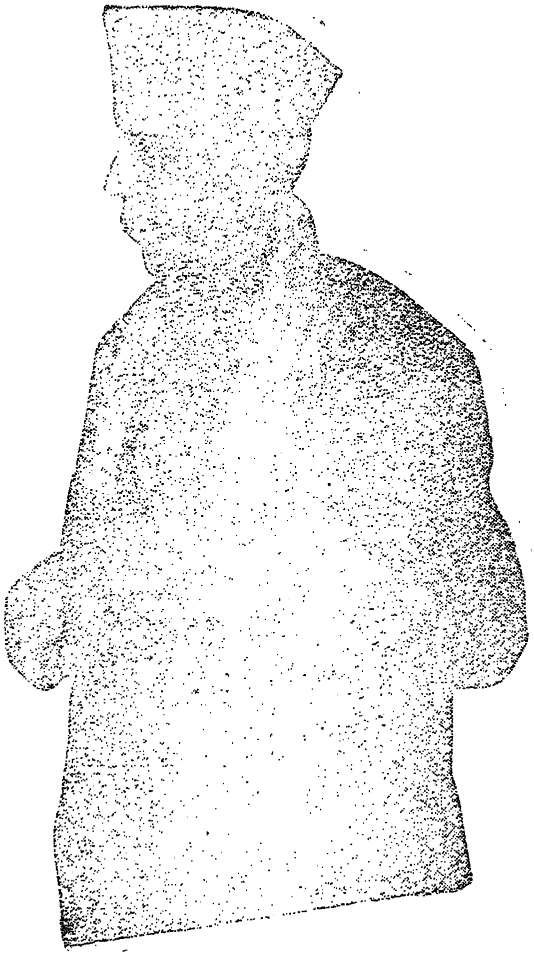

तुमने अपने जीवन के इन ५१८४०० घंटों में से अब तक ३८८८०० घंटे अधिकांशतः देश सेवा तथा मानसिक एवं शारीरिक कष्ट ही में व्यतीत किये हैं । राष्ट्र के लिये तुम्हारे जीवन का क्षण-क्षण मूल्यवान रहा है । तुम राष्ट्र की निधि हो, देश के अभिमान हो और भारतीय जनता के प्राण । तुम चिरंजीवी हो, तथा तुम्हारे जीवन का एक एक क्षण हमारे युगों के बराबर हो ।

जवाहरलाल ! तुम हमारे देश, हमारी स्वतंत्रता, हमारी सभ्यता तथा हमारे विचारों के जीते-जागते प्रतीक हो । जिस समय देश अंधकार से आच्छादित था तुम हमारे लिये प्रकाश-स्तंभ बने और उसी प्रकाश-स्तंभ के सहारे चल कर हम स्वतंत्रता-सूर्य के ऊपर से दासत्व का आवरण हटाने में सफल हुए । देश के गौरव आज देश-वासी तुम्हारे आगे नत-मस्तक हैं ।

तुम साहस के साथ बढ़े-बढ़े-और बढ़ कर देश को वहां तक पहुंचा दिया जहां तक पहुँचने की कोई कल्पना भी न कर सकता था । जेल, लाठी-प्रहार, पारिवारिक-कष्ट चिन्ता, भय, मानापमान, दल-बंदी, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, निराशा, क्षोभ का वातावरण तथा माया-मोह कोई भी तो तुम्हारा मार्ग न अवरुद्ध कर सका । मार्ग-प्रदर्शक ! तुम्हें कोटि कोटि प्रणाम !

तुमने घृणा और कूटि-नीति को पैरों से रौंद दिया, तुमने सत्य और अहिंसा की नाव पर चल कर संघर्ष-सागर को पार किया, तुमने संसार के सामने 'शस्त्रों और अणुबमों से ही विजय होती है' के सिद्धान्त को झूठा करके दिखा दिया। तुमने राष्ट्रपिता की ठोकरों से साम्प्रदायिकता के दुर्ग को चूर-चूर कर दिया। बापू के चरण-चिह्नों पर चलने वाले जवाहरलाल तुम्हें प्रणाम !

विदेशी राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीयता के विचार का जन्म इस देश में सर्व प्रथम तुम्हारे ही हृदय में हुआ। हजारों वर्ष से 'कूप-मंडूक' की नीति बरतने वाले भारत को तुम ही तो अन्तर्राष्ट्रीयता के रंग-मंच पर लाने वाले हो जवाहरलाल ! तुम बार बार धन्य हो !

तुम युग युग जिओ !
तुम शतंजीवी हो !!
तुम्हारी वर्षगांठ पर तुम्हें बधाई !!!

नेहरू-सरकार ज़िन्दाबाद !

देश में पण्डित जवाहरलाल नेहरू से बड़ा कोई समाजवाद का समर्थक नहीं है। उनका समाजवाद पर तब से दृढ़ विश्वास है जब इस देश में बहुत से नेता समझते भी न थे कि समाजवाद है क्या ? पण्डित नेहरू ने अपने प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन से अपने कार्य-क्रम को सदा समाजवाद के आधार पर ही बनाया है। साम्य का प्रचार तो उनका जीवन-लक्ष्य है, किन्तु अन्य समाजवादी नेताओं की तरह वे केवल भाषण देना ही नहीं जानते; वे जो कुछ करते हैं देश की परिस्थिति देख कर करते हैं। व्यर्थ का बेतुका प्रलाप उन्हें पसन्द नहीं है।

समाजवाद तो बड़ी पवित्र चीज है, और किसी भी देश में तब तक शान्ति स्थायी न होगी जब तक समाजवाद का झंडा न लहराने लगेगा। किन्तु आज देश में वैसी परिस्थिति नहीं है। हम एक महान संकट-काल से गुज़र रहे हैं। विपत्ति के बादल चारों ओर से हमारे देश को घेरे हुए हैं। ऐसी दशा में हमारा कर्त्तव्य है कि हम एक होकर नेहरू-सरकार पर विश्वास रक्खें, उसका एकस्वर से समर्थन करें। अन्दरूनी सुधार तो हम जब चाहें तब हो जायेंगे। उसके लिए हमको रोक कौन सकेगा। हम कह चुके हैं कि पण्डित नेहरू समाजवाद के समर्थक हैं—उनका ध्येय ही समाजवाद की स्थापना है। हमने उन पर युद्ध-काल में पचीस वर्ष तक अटूट विश्वास और श्रद्धा प्रकट की है। आज जब उन्होंने देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली है तो हमको उन्हें समय देना चाहिये। उन पर विश्वास करना चाहिये। नेहरू-सरकार जनता की ही प्रतिनिधि है। पण्डित नेहरू और उनकी सरकार ने इधर वर्ष भर में जो किया है उससे देश में शान्ति स्थापित हो गई है और विदेशों में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी है।

समाजवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए पण्डित नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है :—

'यह स्पष्ट है कि समाजवाद जो महान परिवर्तन चाहता है वह कुछ क़ानूनों को सहसा पास कर लेने मात्र से नहीं हो सकता। लेकिन और आगे बढ़ने और इमारत की नींव रखने के लिए कानून बनाने की मूल सत्ता का हाथ में होना आवश्यक है। अगर समाजवादी समाज का निर्माण करना है, तब भी तो वह न तो भाग्य के भरोसे छोड़ा जा सकता है और न रुक-रुक कर, जितना कुछ बनाया गया है उसे तोड़ने का अवसर देते हुए, काम करने से वह पूरा हो सकता है। इस प्रकार पहिले विशेष तौर पर सामने आई हुई रुकावटों को हटाना पड़ेगा। हमारा उद्देश्य किसी को वंचित करना नहीं, वरन सम्पन्न बनाना है। वर्तमान दरिद्रता को सम्पन्नता में बदल देना है। लेकिन ऐसा करने के लिये रास्ते से उन सब रुकावटों को और स्वार्थों को जो समाज को पीछे रखना चाहते हैं, अवश्य ही हटाना होगा। जो रास्ता हम अख्तियार कर रहे हैं, वह सिर्फ व्यक्तिगत रुचि अथवा अरुचि अथवा

सैद्धांतिक न्याय के प्रश्न पर ही निर्भर नहीं रहता बरन इस बात पर निर्भर है कि वह आर्थिक दृष्टि से ठीक है,
ति की तरफ ले जा सकने योग्य है; उससे अधिक से अधिक जन समाज का कल्याण होगा। समाजवाद की भावुकतापूर्ण अपील से काम न चलेगा। सच्ची घटनाओं व दलीलों और व्योरेवार आलोचना के साथ विवेक और युक्तिपूर्ण आग्रह भी होना चाहिये'।

पण्डित नेहरू के इन शब्दों को हमको भूलना न चाहिये। नेहरू सरकार के प्रति हमारा भी उत्तरदायित्व और कर्तव्य है। हम उसका हृदय और कर्म से समर्थन करें।

हमको नेहरू और नेहरू-सरकार पर गर्व है। स्वतंत्रता के युद्ध का नेतृत्व कर हमको आजादी दिलाने वाले पण्डित जवाहरलाल नेहरू सुयोग्य शासन से हमारे लिए एशिया ही नहीं सारे विश्व में एक महत्वपूर्ण स्थान पा सकेंगे।

नेहरू-सरकार जिन्दाबाद!

लेखक के संस्मरण

नौजवान, उन्नत ललाट, श्वेत खादी के वस्त्र में कत्थई से घोड़े पर सवार, मुख पर हँसता हुआ तेज और शरीर के अंग अंग में कूदती हुई फुर्ती—यह है पंडित जवाहरलाल नेहरू का चित्र सन् १६२५ का कानपुर-कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर।

मैंने श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया दूर से। निकट न तो जा सकता था और न जाना ही चाहता था। जवाहरलाल के निकट जाना सरल काम न था। कुछ भय-सा लग रहा था और भय लगने की कुछ मेरी अवस्था भी थी —कुल १२ या १३ वर्ष की।

कुछ अच्छी तरह याद नहीं आता, कदाचित कुछ झगड़ा-बखेड़ा भी हो गया था उस दिन। एक अर्जुनलाल सेठी थे, उस दिन उनका नाम किसी संबंध में लिया जाता था।

पंडित नेहरू के त्याग की बड़ी बड़ी कहानियाँ सुनी थीं—कुछ सच्ची और कुछ गढ़ी हुई। सुना था कि पेरिस से कपड़े धुल कर आते थे पहिनने के लिए, हमारे बादशाह के पुत्र के साथ पढ़ते भी थे। बहुत दिनों बाद जब बड़े होने पर पंडित नेहरू की आत्म-कथा पढ़ी तब ज्ञात हुआ कि ये दोनों बातें निराधार थीं। मगर उस समय की बात कह रहा हूं जब देश में, नगर में, घर में और सर्वत्र यही चर्चा थी।

हाँ तो पंडित जवाहरलाल को देखा—देखा कई बार। सुना था कि कांग्रेस के अधिवेशन में पंडित जवाहरलाल आयेंगे बस इसी लोभ से हमने अपना नाम लिखाया कांग्रेस के स्वयंसेवकों में। कांग्रेस-नगर से अपना घर लगभग ३ मील दूर था। रोज़ पैदल आया-जाया करते थे लेकिन थकावट न आती थी। रोज़ कई बार पंडित जी के दर्शन हो जाते थे।

हम इसी के बाद बँहकी बँहकी बातें करने लगे। पिता जी ने डाँट कर कहा 'इन सब वाहियात की बातों में क्या रक्खा है, स्कूल की किताबों में मन लगाओ'।

मैं चुप रह गया। घर की स्थिति कुछ उस समय ठीक न थी। माता-पिता ने सारी आशायें हम पर

केन्द्रित कर रक्खी थीं, और हम भी बखूबी समझते थे कि अगर पैर फिसला तो आगे के लिए अंधकार ही अंधकार है।

मगर पंडित जवाहरलाल भी तो मनुष्य हैं। कितना बड़ा त्याग किया है उन्होंने! क्या मैं थोड़ा-सा भी त्याग नहीं कर सकता?

एक दिन मोहल्ले में विलायती टोपियों की होली लगाई गई। हम चुपचाप अपनी नई फेल्ट-कैप अग्नि-देवता की भेंट कर बदले में दस पैसे की गांधी-टोपी पहिन कर घर आये।

माता जी ने कहा 'ये क्या स्वांग है? फेल्ट-टोपी कहाँ गई?'

दिल धड़कने लगा। कुछ बोला नहीं।

पिता जी के आने पर अच्छी तरह से मेरी प्रताड़णा की गई।

अब हम गर्व के साथ गांधी-टोपी पहिनने लगे।

× × ×

ठीक से तो स्मरण नहीं, किन्तु सन् १६२६ में लखनऊ में कांग्रेस की एक मीटिंग थी कदाचित।

खद्दर की बात पर ज़ोर देते हुये एक नेता ने श्रोताओं से खद्दर पहिनने की प्रतिज्ञा करने की प्रार्थना की।

एक…दो…तीन…बहुत से हाथ ऊपर उठे। हमने भी हाथ उठा दिया।

घर आकर खद्दर की धोती और कुरते की तलाश प्रारंभ की। कठिनता के साथ दो धोतियाँ और दो कुर्ते मिले।

कपड़ा पहिनने का मुझे बचपन से शौक रहा है—मलमल का कुर्ता, मखमली पाड़ की महीन धोती।

जब पहिले पहल खद्दर पहिना तो कुछ बड़ा बुरा-सा मालूम हुआ। ऊँची सी मोटी धोती और टाट-सा कुर्ता। सोचा यह चकल्लस बुरी लगी, किन्तु फिर जवाहरलाल के निकट कैसे पहुँचेंगे? और फिर जवाहरलाल तो हमसे बढ़िया कपड़ा पहिनते थे और अब………

खद्दर पहिनने की दृढ़-प्रतिज्ञा की। एक बार पं० जवाहरलाल से बात करने को मिल जाय फिर चाहे जन्म भर खद्दर ही क्यों न पहिनना पड़े। उनसे मिलूँगा ज़रूर। कैसे अच्छे लगते हैं वे खद्दर के कपड़ों में!

अपने कमरे में एक बढ़िया-सा पंडित जवाहरलाल का चित्र लगा रक्खा था। क्या मैं भी कभी ऐसा हो सकूँगा? मेरे कपड़े तो पेरिस से धुल कर आते नहीं? और फिर विलायत क्या? अभी तक कानपुर और लखनऊ के अतिरिक्त दूसरा शहर भी हिन्दुस्तान का न देखा था। पंडित नेहरू की बराबरी तो प्राण देकर भी नहीं हो सकती। सोचा बड़े आदमी थे इसलिए जल्दी मशहूर हो गये।

जीवन के बहुत से वर्ष तैर जाने के बाद मेरी समझ में आया कि जो जितना बड़ा त्याग करता है उतना उसको अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। वास्तव में मेरा मलमल का कुर्ता छोड़ कर खद्दर पहिनना उतना ही बड़ा त्याग नहीं हो सकता जितना हज़ारों रुपये के कपड़ों, आनन्द-भवन का आनन्द और लाखों की आय त्याग देने वाले का हो सकता है। हमसे तो हजार-पाँच सौ रुपये छोड़ने का भी त्याग होना कठिन ही नहीं असंभव है। तब तो सचमुच पंडित जवाहरलाल महान और त्यागी पुरुष हैं।

सन् १९३० में लाहौर-कांग्रेस का अधिवेशन पण्डित जवाहरलाल के सभापति होने की बात पढ़ी। हमारे जवाहर सभापति होंगे? मैं उस समय बी० ए० में पढ़ रहा था। जी लाहौर जाने के लिए बेचैन होने लगा। मगर वहां तक पहुँचने का किराया भी तो अपने पास न था। बड़ी दौड़-धूप की, बड़ा प्रयत्न किया किन्तु तड़प कर रह गया। हाय, पण्डित जवाहरलाल सभापति होंगे, उनका जुलूस निकलेगा, कांग्रेस में उनकी गर्जना होगी और हम ये सब कुछ देख न सकेंगे। फिर क्या करें? सब कुछ है किन्तु पैसा नहीं है पास में। मन मार कर रह जाना पड़ा। अपने जवाहरलाल की शान-शौकत, गर्जना और विप्लवकारी प्रस्ताव कुछ आने खर्च करके दैनिक 'वर्तमान' और 'लीडर' में ही देख लिये

स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास हुआ और पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने रण का बिगुल बजाया। नौजवानों से आगे बढ़ कर आने की अपील की। हम भी नौजवान थे और थी पण्डित नेहरू की हम से अपील। आज जवाहर स्वयं पुकार-पुकार कर हमको बुला रहे हैं और हम पीछे रहें, केवल किताबों के कीड़े बने रहें, यह नहीं हो सकता।

किन्तु समस्या कठिन थी। कठिनाइयां मुंह बाये सामने खड़ी हुई थीं। माता-पिता की आशाओं में फल आने वाले थे—और.........

मगर क्या किया जाय? इस समय देश के लिए त्याग करना ही तो महत्वशाली त्याग हो सकेगा, नहीं तो फिर त्याग का मूल्य ही क्या?

सारी आशाओं, महत्वाकांक्षाओं और कालेज को प्रणाम कर हम झंडा लेकर अपने जवाहर की पुकार पर बाहर निकल ही तो आये। और फिर वही हुआ जो होना था—गिरफ़्तारी, मुक़द्दमा और जेल।

हमको संतोष था कि हम 'जवाहर-दिवस' पर भाषण देने के कारण गिरफ़्तार किये गये थे।

× × ×

हम जेल में सोचा करते थे कि अब तो हम पंडित जवाहरलाल नेहरू के निकट आने के अवश्य ही योग्य हो गये हैं। छूटते ही पंडित जी के पास जाऊंगा। वे मिलेंगे क्यों नहीं, उनकी पुकार पर जेल तक तो आगये। मानों मेरे जेल जाने का सारा एहसान पण्डित जवाहरलाल ही पर था।

और सचमुच ही जेल से छूटने के बाद हमको जवाहरलाल नेहरू के बहुत ही निकट आने का स्वर्ण-अवसर मिल गया। कानपुर में तिलक-भवन बनने वाला था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उसका शिलान्यास करना स्वीकार कर लिया।

मैं प्रसन्नता से गद्-गद् होगया। अच्छा मौका मिला।

जिस दिन पण्डित नेहरू शिलान्यास के सम्बन्ध में कानपुर आये उस समय बड़ी भीड़ थी उस स्थान पर। मैं बार बार सब से आगे आने की चेष्टा कर रहा था जिससे मैं जवाहरलाल जी के बिलकुल पास खड़ा हो जाऊं और वे मुझे देख लें। मेरे में थोड़ा सा घमण्ड भी आगया था। क्यों न जवाहरलाल जी मुझे देखेंगे? जेल नहीं हो आया हूँ उनके कहने से? मगर सभी आगे आने की चेष्टा में थे। मैंने किंचित क्रोध के साथ उस भीड़ की ओर देखा जो मुझे ढकेल कर आगे बढ़ना चाहती थी। अरे बापरे! उनमें से एक भी तो ऐसा न था जो मेरी तरह जेल न हो आया हो। अपने बौनेपन का अनुभव हुआ।

फिर भी प्रयत्न करके आगे आ ही गया। पण्डित जवाहरलाल के बिल्कुल निकट आगया और शिलान्यास का सामान उन्हें उठा कर देने लगा। मुझे ऐसा आनन्द आ रहा था मानों पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मेरी गहरी दोस्ती हो गई हो। मैंने सोचा 'पण्डित जी ने मुझे देखा तो अवश्य है कई बार ग़ौर से। अब ज़रूर ही पहिचान लेंगे मुझे जहां कहीं भी मिलेंगे मुझसे'।

यह न सोचा कि मेरे-जैसे व्यक्ति न जाने कितने पण्डित जी को रोज़ मिलते हैं। किन्तु आत्म-संतोष तो हो ही गया था।

× × ×

उसके बाद जितना भी साहित्य पण्डित जी के सम्बन्ध में मिला, मैंने पढ़ा और उसका अध्ययन किया।

हरिपुरा में जब कांग्रेस हुई तो मैं वहां पहुँचा। यहां तो जी भर कर पण्डित जी के दर्शन किये। यू० पी० डेलीगेट कैंप में मैं भाई प्यारेलाल अग्रवाल तथा उनकी पत्नी श्रीमती तारा अग्रवाल के साथ ठहरा था। पण्डित जी अधिकतर यू० पी० के डेलीगेटों के पास ही कांग्रेस अधिवेशन में अपना समय व्यतीत करते हैं। उन्हें अन्य नेताओं की भांति प्रमुख रंग-मंच पर अधिक बैठने की आदत नहीं है। मैंने कांग्रेस के उस खुले अधिवेशन में भी अधिकतर उन्हें अपने ही आस-पास बैठे पाया।

यहां तो निकट से पण्डित जी के खूब दर्शन हुए और कई दिन तक लगातार। उनसे चाहे जितना मिलो किन्तु जी नहीं भरता—हां डर अवश्य लगता है।

× × ×

पंडित नेहरु को आधुनिकता पसंद है, वे व्यर्थ की रुढ़िवादिता से घबराते हैं और झुंझला पड़ते हैं—

कार्य के समय, समय का मूल्य उनकी आंखों में कई गुना अधिक होजाता है। उस समय किसी प्रकार की बाधा उन्हें सहन नहीं है। जब व्याख्यान देने खड़े होते हैं और लाउड-स्पीकर फेल होजाता है तो उनकी अवस्था देखते ही बनती है। उनका चेहरा तमतमा उठता है और उनकी झुंझलाहट कभी-कभी इतनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है कि वे सभा-मण्डप छोड़ कर जाने की बात सोचने लगते हैं।

उनका सर्व श्रेष्ठ गुण देश-भक्ति है। वे उसके सामने प्रत्येक बलिदान को कुछ नहीं समझते। वे देश-द्रोही को कभी क्षमा नहीं कर सकते; देश-द्रोहिता को वे जघन्य पाप और अक्षम्य अपराध समझते हैं। वे इस प्रकार के व्यक्ति से किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते। अन्याय और दमन को वे कभी बरदाश्त नहीं कर सकते; उनके प्रतिकार के लिए उनका रोष विद्रोह-सा करने लगता है। वे उस समय कुछ भी कर बैठ सकते हैं। उन्होंने उस समय की घटना का उल्लेख करते हुये स्वयं लिखा है जब माता स्वरूपरानी नेहरू भी आहत हो गई थीं 'यदि उस समय वहाँ होता तो क्या कर बैठता यह कहा नहीं जा सकता.........'

वे पद लो-लुपों और अवसर-वादियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनकी सूरत देखते ही उन्हें क्रोध आ जाता है। वे उनसे बात भी करना नहीं चाहते।

एक बार वे सन् १९३६ में कानपुर में एसेम्बली के कांग्रेसी उम्मेदवार का समर्थन करने के लिये आये। विराट सभा में भाषण देने के बाद जब वे मंच से उतरने लगे तो कोने में खड़े हुए एक व्यक्ति ने उन्हें आकर प्रणाम किया और कहा 'मैं भी आप से कुछ बातें करना चाहता हूं पंडित जी'।

पंडित जी ने साश्चर्य उसकी ओर देखते हुए कहा 'आप कौन हैं' ?

उस व्यक्ति ने कहा 'मेरा नाम रघुबरदयाल मिश्र है'।

नाम सुनते ही आश्चर्य क्रोध में परिणत हो गये। रघुबरदयाल मिश्र विद्रोही उम्मेदवार थे—वे कांग्रेसी उम्मेदवार के खिलाफ़ चुनाव लड़ने के लिये खड़े हुए थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू क्रोध से त्योरियाँ चढ़ा कर बोले 'मैं आप से क़तई बात नहीं करना चाहता—मैं आप से न तो किसी प्रकार का समझौता ही करना चाहता हूँ और न यह चाहता हूँ कि कांग्रेस के विरुद्ध आप चुनाव न लड़ें। मैं तो लड़ना चाहता हूँ और यह चाहता हूँ—कि आप को इस प्रकार बुरी तरह हराना चाहता हूं कि आप सदा के लिये परास्त होजायं और जीवन भर आपका साहस कांग्रेस से लड़ने का समाप्त हो जाय। जाइये मुझे आप से बात करने की फ़ुरसत नहीं है।

और वे आगे बढ़ गये।

× × ×

एक घटना और है। वे कदाचित् किसी कार्यवश कानपुर के स्टेशन पर थे। कहा जाता है कि उस

ग्रन्थकार

दिन नगर में कलक्टरगंज के पुलिस थाने के पास स्टेशन की ओर आते हुए दो स्वयं सेवक 'गांधी जी की जय' बोलने के कारण वहां के थाना-इन्चार्ज द्वारा पकड़ लिए गए थे।

पण्डित जी को इसकी सूचना मिली। वे फौरन कलक्टरगंज थाने पहुँचे और मेज पर हाथ पटकते हुए ज़ोर से बोले—गांधी जी की जय——आइये दरोगा साहब मुझे गिरफ्तार कीजिये।

इन्सपेक्टर साहब हक्के-बक्के से रह गये।

वे दोनों स्वयंसेवक छोड़ दिये गये। पंडित जी स्टेशन वापिस आगये।

बहुत कम लोगों को मालूम हो सका कि पण्डित जी कहां गये थे?

× × ×

एसेम्बली के चुनाव के सम्बन्ध में पण्डित नेहरू कानपुर आये। परेड के मैदान में विराट सभा का आयोजन हुआ। ऊँचे से रंग मंच पर कुछ नेताओं के साथ मैं भी बैठा हुआ था। काफी भीड़ थी।

पंडित नेहरू बोलने के लिए खड़े हुए। अभी उन्होंने भाषण देना आरम्भ भी न किया था कि किसी ने मंच की ओर जूता फेंक कर मारा। जूता मेरे दाहिने गाल पर आकर लगा। मैने इस बात की सूचना देने के लिए नेहरू जी की ओर देखा। किन्तु उन्होंने सब कुछ पहिले ही देख लिया था; वे मेरी ओर देखते हुए मुस्किरा रहे थे।

उन्होंने मुझ से जूता मांगा। मैं उठ कर उन्हें जूता देने लगा तो वे बोले 'बड़े-बड़े नेताओं के पास घुस कर बैठने से ऐसा ही इनाम मिलता है'।

और वे मुस्किरा दिये।

जनता की ओर संकेत करते हुए वे बोले 'भाइयों अभी-अभी मुझे किसी सज्जन की ओर से एक बहुत बढ़िया इनाम दिया गया है, और वह एक जूता है——'

यह ग्रंथ १४ नवम्बर १९४८ को

श्री देवीप्र

विनोद पुस्तक

प्रथमावृत्ति * १४ न